In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भारत की वैदिक अरण्य संस्कृति एवं वृक्षायुर्वेद पर्यावरण

FOREST FARMING / अरण्य संस्कृति
VAN KHETI / वन्य कृषि

अश्वगन्धा

अदरक

सदाबहार

कनेर

चिरायता

केसर

लेखक :

वैद्य (डॉ.) मायाराम उनियाल, वनौषधि विद्यापति (श्री लंका)

से. नि. निदेशक, आयुर्वेद आयुष, भारत सरकार

प्रो. (डॉ.) तनुजा मनोज नेसरी

निदेशक, अखिल भारतीय आयुर्वेद संस्थान, सरिता विहार, नई दिल्ली–110076

प्रकाशक : यूनिवर्सिटी जनरल आफ फाईटोकैमस्ट्री एण्ड आयुर्वेदिक हाईटस

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उत्तराखण्ड राज्य के प्रतीक चिन्ह

VEDIK KIRSHI
Dr. MAYARAM UNIYAL

BIODIVERSITY

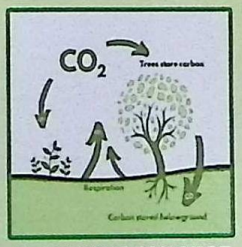

GASEOUS EXCHANGE

BIODIVERSITY

HEALTH & NUTRITION

EDUCATION & TRAINING

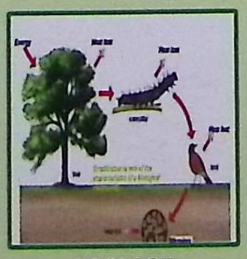

ECOLOGY

LIVELIHOOD

CLIMATE

।।धन्वतरि।।
नमामि धन्वतरिमादिदेवं,
सुरासुरैर्वन्दितपादपाद्यम।
लोके जरारुग्भयमृत्युनाशं,
दातारमीशं विविधौषधीनाम।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

यत्रः द्रुमाः अपिवान्धवों में, तस्मे वदाभ्यः तरूवेगुरूवे नमस्तुते।।
(कालिदासः)

भारत की वैदिक अरण्य संस्कृति एवं पर्यावरण

लेखक :
वैद्य (डॉ.) मायाराम उनियाल
वनौषधि विद्यापति (श्री लंका)
से. नि. निदेशक, आयुर्वेद आयुष, भारत सरकार

प्रो. (डॉ.) तनुजा मनोज नेसरी
निदेशक, अखिल भारतीय आयुर्वेद संस्थान,
सरिता विहार, नई दिल्ली–110076

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भारत की वैदिक अरण्य संस्कृति एवं पर्यावरण

लेखक :
वैद्य (डॉ.) मायाराम उनियाल, मो. : 9953369814
वनौषधि विद्यापति (श्री लंका)
से. नि. निदेशक, आयुर्वेद आयुष, भारत सरकार
के-16 बी, शताब्दी एन्कलेव, सेक्टर-49, बरोला, नोएडा, जिला गौतमबुध नगर, उ.प्र.

प्रो. (डॉ.) तनुजा मनोज नेसरी
निदेशक, अखिल भारतीय आयुर्वेद संस्थान,
सरिता विहार, नई दिल्ली-110076

मुख्य सम्पादक : **डॉ. एस. फारुक**

सम्पादक :
डॉ. शिवानी घिल्डियाल, मो. : 8765363310
(एसोसिएट प्रोफेसर, द्रव्य गुण, अखिल भारतीय आयुर्वेद संस्थान, नई दिल्ली
अखिल भारतीय आयुर्वेद संस्थान, सरिता विहार, मथुरा रोड़, नई दिल्ली

©प्रकाशकाधीन सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य : 500/-

प्रथम संस्करण : अक्टूबर 2024

प्रकाशक :
युनिवर्सिटीज जनरल आफ फाइटो कैमिस्ट्री एण्ड आयुर्वेद हाईटस, इन्दरा रोड़, देहरादून, उत्तराखण्ड

मुद्रक :
लखेड़ा प्रिटिंग प्रैस
''भाना भवन'', ए-18, अवन्तिका, सैक्टर-2, रोहिणी, दिल्ली-110085
मो. 9811278386, 7827320103

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सर्मपण : पद्मभूषण श्री सुन्दरलाल बहुगुणा

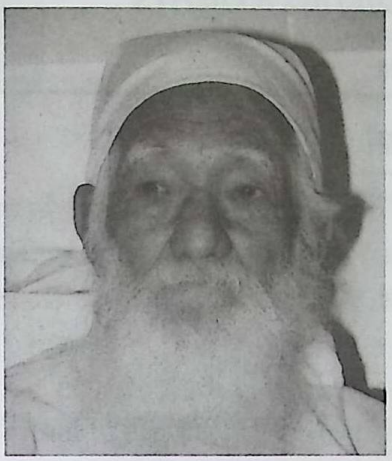

संयुक्त राष्ट्र ने वर्ष 2022 को 'अक्षय विकास के लिए बुनियादी विज्ञान का अंतरराष्ट्रीय वर्ष' (इंटरनेशल ईयर ऑफ बेसिस साइंसेज फॉर सस्टेनेबल डेवलपमेंट) घोषित किया था। अक्षय विकास का मूल मंत्र है पारिस्थितिक विकास। जब इसकी बात चलती है, तो पृथ्वी के भविष्य को संवारने की प्रेरणा देते हुए सुंदरलाल बहुगुणा का पारिस्थितिक योग कर्मी व्यक्तित्व हमारे मस्तिष्क पटल पर उभर आता है। यदि जीवन को ऑक्सीजन की नैसर्गिक आपूर्ति करने वाले वनों के इस प्रहरी ने कोरोना की विषैली लहर में ऑक्सीजन की कमी से अपने जीवन की आहुति न दी होती, तो आज वह अपने जीवन के 95 वसंत पूर्ण कर लेते।

सुंदरलाल बहुगुणा एक ऐसे दार्शनिक हुए, जिन्होंने वनों को ही एक नया आधार दिया है। उनके दर्शन शास्त्र ने पारिस्थितिक पिरामिड के शिखर पर बैठे मानव को उसके अस्तित्व के आधार के दर्शन कराए हैं। पृथ्वी पर जीवन को उसके मूल से जोड़ने वाले बहुगुणा जी ने एक ऐसा दर्शन शास्त्र रचा है, जो स्वयं में कालयजी सिद्ध होगा। उस दर्शन शास्त्र के बिना मानव की जीवन-शून्यता अवश्यंभावी है। इसे प्रकृति के विकास क्रम का लक्ष्य कहें या लाखों अन्य जीव-जंतुओं से चहकती-महकती प्रकृति का अबलापन जबकि आज संपूर्ण प्रकृति पर मानव का आधिपत्य है। मानव अस्तित्व प्रकृति से है, यह एक सनातन सत्य है। लेकिन इस सत्य पर भारी है एक अर्धसत्य, कि संपूर्ण प्रकृति पर मानव का नियंत्रण है।

सुंदरलाल जी का नाम सदैव **''चिपको आंदोलन''** से जोड़ा जाता है। यह सत्य है कि अगर चिपको आंदोलन को उनका नेतृत्व न मिलता, तो मांग पूरी होने के साथ आंदोलन मर गया होता। लेकिन चिपको आंदोलन अमर है। बहुगुणा जी ने चिपको आंदोलन को एक दर्शन में रूपांतरित कर दिया और यह दर्शन संसार में घर कर गया। इस दर्शन के मूल में वह प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से सूर्यदेव पृथ्वी पर उतर आते हैं अपनी प्रकाश ऊर्जा को जीव ऊर्जा में रूपांतरित करने के लिए, पृथ्वी पर जीवन प्रवाह स्थापित करने के लिए। यही प्रकाश संश्लेषण है।

चिपको आंदोलन से विश्व भर के संवेदनशील लोग जुड़ गए, वैज्ञानिकों से लेकर प्रकृति प्रेमियों, योजनाकारों, लेखकों और सामाजिक कार्यकर्ताओं तक ने चिपको आंदोलन को समर्थन दिया और सरकार ने वन कटान पर प्रतिबंध भी लगा दिया। इसके पीछे बहुगुणा जी की ओजस्विता और पर्यावरण दार्शनिकता ही थी, जो जनमानस के मन में अकुंरित होने लगी थी। बहुगुणा जी की सादगी का प्रमाण यह कि उन्होंने कभी चिपको आंदोलन के नेतृत्व का श्रेय नहीं लिया। उन्होंने विनम्रतापूर्वक, खुद को चिपको आंदोलन का एक संदेशवाहक बताते हुए कहा कि इस आंदोलन का नेतृत्व तो पहाड़ की महिलाएं कर रही है।

बहुगुणा जी के दर्शन से जीवन के यश का झरना फूटता है उनके इस कथन से : **'जीवन की जय, मृत्यु का क्षय'** जीवन की जय में उनका केंद्र बिंदु मानव ही नहीं, बल्कि जैव मंडल के सभी जीव-जंतु हैं।

प्रकाशित रचना श्री सुन्दरलाल बहुगुणा जी, पद्मभूषण, पर्यावरणविद की सेवा में सादर समर्पित।

वैद्य (डॉ.) मायाराम उनियाल

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

UNIVERSITIES' JOURNAL OF
PHYTOCHEMISTRY AND AYURVEDIC HEIGHTS
E-mail: dr.sfarooq.him@gmail.com, editor@ujpah.in
Website: www.ujpah.in

शुभकामना संदेश

मैं डॉ. मायाराम उन्नियाल जी को उनकी किताब ''भारत की वैदिक अरण्य संस्कृति एवं पर्यावरण'' के प्रकाशन पर बधाई देता हूँ। ईश्वर ने पृथ्वी को बनाया और उसमें जो भी स्थापित किया वही पर्यावरण है जैसे पेड़–पौधे, जीव–जन्तु, बादल, पानी, पहाड़ आदि। इसके अलावा चाँद, सूरज तथा अन्य ग्रह भी इसी पर्यावरण का हिस्सा हैं।

''पेड़–पौधे दरिया मिट्टी और पत्थर दोसतो हैं यह धरती का लिबास और जेवर दोसतो''

मनुष्य ने अपनी आवश्यकतानुसार प्रकृति को इस्तेमाल करना शुरु किया और उस को विकास का नाम दिया लेकिन यह विकास, धारणीय विकास (Sustainable Development) नहीं था, यह पृथ्वी का दोहन था। आज मनुष्य अपनी इच्छा शक्ति से चाँद और मंगल ग्रह पर जाने में सक्षम है। यह उसके द्वारा विज्ञान की उन्नति का प्रमाण है, लेकिन ग्रहों से उसे कुछ ना मिला।

''चांद की दुनियां में क्या अंधेर है मिट्टी मिली हम ने सोचा था वहां से चांदनी भर लाऐंगे''

समग्र दृष्टिकोण (Holistic Approach) और ट्रिपल बॉटम लाइन (TBL) एक स्थिरता ढाँचा है जो तीन पी के आसपास घूमता है लोग, ग्रह और लाभ (3 Ps : People, Planet and Profit)। इन आधुनिक विचारों को ध्यान में रखते हुए कार्य करना चाहिए।

डॉ. मायाराम उनियाल जी ने इस रचना में तेजी से लुप्त होते हुए जंगल, बढ़ती हुई जनसंख्या पर नियंत्रण, मनुष्य के खान–पान, स्वास्थ्य, शिक्षा और उसकी प्राथमिकताएं आदि विषयों पर विस्तार से लिखा है तथा मनुष्य की अर्थव्यवस्था में जड़ी बूटियों की कृषि का योगदान, भूमि, भूकंप, बाढ़, वृक्षारोपण, ओजोन, कार्बन डाई आक्साइड का बढ़ता स्तर एवं वन संरक्षण आदि सभी विषयों पर विचार व्यक्त किये है। उन्होंने अपनी 89 वर्ष की आयु के तजुर्बे के आधार पर एक अदभुत् ग्रंथ की रचना कर ''गागर में सागर'' भर दिया है। इसके लिए डॉ. मायाराम उनियाल जी बधाई के पात्र है। यह कार्य वे आजीवन करते रहें यही मेरी कामना है।

डॉ. एस. फारुक़
(Chief Editor)

Correspondence Address : 1-Inder Road, Dehradun-248001 (Uk.) India
Phone No. : 0135-2982845, 9358100629

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आयुर्वेद विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र, हरियाणा

निदेशक, आयुष विभाग, पंचकुला, हरियाणा

शुभकामना सन्देश

मुझे जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि वैद्य (डॉ.) मायाराम उनियाल जी द्वारा प्रकाशित रचना **''भारत की वैदिक अरण्य संस्कृति एवं पर्यावरण''** प्रकाशित होने जा रही है। जैसा कि सर्वविदित है कि भारतीय संस्कृति में वृक्षों एवं जड़ी बूटियों का विशेष महत्व है। क्योंकि ये मूक संजीव वृक्ष हमारे समस्त जीवधारियों के प्राण है। सनातन धार्मिक कार्यों, यज्ञ, विवाह शादी में कन्यादान के समय विवाह मण्डप में, आम, पीपल, रूद्राक्ष, विल्व वट, केला, तुलसी, यज्ञसमिधा हवन सामग्री में इन वृक्षों का महत्व है। चरक सुश्रुत में वृक्षों का विस्तृत से उल्लेख है।

संस्कृत साहित्य में वर्णित अनुसंधान का समावेश रचना में देने का प्रयास आदरणीय गुरू जी ने किया है। मुझे पूर्ण आशा है कि यह रचना वृक्षों के अनैतिक विदोहन रोकने में शिक्षाप्रद एवं उपयोगी सिद्व होगी अन्त मैं श्रद्वेय उनियाल जी के आरोग्य जीवन की कामना करती हूँ।

डॉ. संगीता नेहरा
एम.डी.पी.एच.डी. आयुर्वेद

दिनांक : 20.07.2024

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अखिल भारतीय आयुर्वेद संस्थान

All INDIA INSTITUTE OF AYURVEDA (AIIA)

(आयुष मंत्रालय, भारत सरकार के अंतर्गत स्वयात्त संस्थान)

(An Autonomous Organization under the Ministry of AYUSH, Govt. of India)

शुभकामना सन्देश

प्रकृति एवं पर्यावरण की महत्वता भारतीय संस्कृति और परंपराओं में अनंत काल से वर्णित है। हमारी परम्परायें एवं वैदिक साहित्य प्रमाण है कि प्रकृति सदैव पूजनीय एवं संरक्षणीय है। ऋग्वेद के मंत्रो में वृक्षों को देवता स्वरूप मानकर उपासना की गई है, यह दृष्टिकोण हमारी सांस्कृतिक धरोहर का एक अभिन्न हिस्सा है, वास्तव में प्रकृति के साथ सामंजस्य और संतुलन बनाए रखना ही हमारे जीवन का मूलाधार है। भवभूति के शलोक में भी वनस्पतियों की उपासना की गयी है।

''अहोरुषां वरंजन्म सर्व प्राण्युपजीवनम्, एवं धन्या मही सहायेम्यो निराशा नानिय मथिनः॥'' (भवभूतिः)

वृक्षों को जीवनदायिनी कहा गया है तथा इनके संरक्षण हेतु ही पर्व एवं त्यौहारों को भी अनेक वनस्पतियाँ जैसेः तुलसी, पीपल, वट, आंवला, पलाश आदि से सम्बन्धित किया गया है। आज जब पर्यावरण हनन, प्रदूषण जैसी गम्भीर समस्याओं से सम्पूर्ण विश्व आहत है, इस समय हमें अपनी प्राचीन धरोहर तथा ज्ञान का समुचित प्रयोग करते हुए पर्यावरण संरक्षण करना चाहिए। भारतीय संस्कृति में कहा गया है **''वृक्षों रक्षति रक्षितः''** अर्थात् यदि हम वृक्षों की रक्षा करेंगे तो वह हमारी भी रक्षा करेंगे। वृक्ष हमें शुद्ध वायु प्रदान करने तथा जैव विविधता को संरक्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है, तथा आहार एवं औषध द्रव्यों का भी स्त्रोत है।

प्रस्तुत पुस्तक **''भारत की वैदिक अरण्य संस्कृति एवं पर्यावरण''** में वैद्य मायाराम उनियाल जी ने वैदिक संस्कृति एवं वृक्ष आयुर्वेद का गहन अध्ययन प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक में वृक्षों और वनस्पतियों की महत्वता के साथ-साथ उत्तम पर्यावरण पर प्रभाव एवं औषधि गुणों का भी विस्तृत एवं रोचक वर्णन किया है। यह पुस्तक हमारी प्राचीन परंपराओं को समझने और उन्हें पुर्नजीवित करने का मार्ग दिखाती है।

मैं इस शुभ कार्य हेतु विद्यापति वैद्य मायाराम उनियाल जी को हार्दिक बधाई देती हूँ कि आज 88 वर्ष की आयु में भी आपकी विचार शक्ति इतनी प्रखर तथा प्रभावी है, आपकी लेखनी की शन्ति संयम परिश्रम तथा गहन ज्ञान इस पुस्तक में प्रतिविम्बित होता है, इस सराहनीय प्रयास के लिए हृदय से धन्यवाद। मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक पाठकों को वैदिक संस्कृति और आयुर्वेद के महत्वपूर्ण पहलुओं से परिचित कराएगी और पर्यावरण सरंक्षण के प्रति जागरूकता बढ़ाएगी।

प्रो. (डॉ.) तनुजा मनोज नेसरी
निदेशक, अखिल भारतीय आयुर्वेद संस्थान,
सरिता विहार, नई दिल्ली-110076

गौतमपुरी, सरिता विहार, मथुरा रोड़, नई दिल्ली-110076

Gautampuri, Sarita Vihar, Mathura Road, New Delhi-110076

Email : aiianewdelhi@gmail.com **Phone : 011-29948658** **Fax : 011-29948660**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सम्पादकीय

भारत सांस्कृतिक विविधता और प्राकृतिक संपदा के लिए प्रसिद्ध है। इस भूमि के लोग सदियों से प्रकृति के साथ गहरे और आध्यात्मिक संबंध बनाए हुए हैं। औषधीय पौधे और वृक्ष भारतीय जीवन का अभिन्न हिस्सा रहें हैं, और पारंपरिक भारतीय चिकित्सा प्रणाली **"आयुर्वेद"** इसका प्रमाण है। आयुर्वेद में पेड़-पौधों का उपयोग न केवल रोगों के उपचार के लिए, बल्कि संपूर्ण स्वास्थ्य और जीवन रक्षा के लिए किया जाता है।

भारत के प्राचीन ग्रंथों में औषधीय पौधों का विशेष स्थान रहा है। अथर्ववेद में सैकड़ों औषधीय पौधों का उल्लेख मिलता है, जो विभिन्न रोगों के उपचार में सहायक माने जाते थे। महाभारत में संजीवनी बूटी का उल्लेख, भारतीय चिकित्सा ज्ञान की गहराई को दर्शाता है। चरक संहिता और सुश्रुत संहिता जैसे आयुर्वेदिक ग्रंथों में औषधीय पादपों का उपयोग न केवल बीमारियों के उपचार के लिए बल्कि शरीर और मन के संतुलन को बनाए रखने के लिए वर्णित है। तुलसी, पीपल, नीम, आंवला और हल्दी जैसे औषधीय पौधे भारतीय संस्कृति और चिकित्सा पद्धति के लिए महत्वपूर्ण हैं। तुलसी को देवी का रूप माना जाता है, पीपल को पर्यावरणीय संतुलन एवं शुद्धता के लिए आवश्यक समझा जाता है, और नीम को औषधीय गुणों के लिए विश्वभर में सराहा जाता है। भारतीय समाज में इन पौधों का धार्मिक अनुष्ठानों और पूजा विधियों में उपयोग होता रहा है, जिससे यह पता चलता है कि हमारे पुरखों ने पर्यावरण और प्रकृति के साथ एक गहरा संबंध स्थापित किया था। नवरात्रि में नौ दिनों तक नौ विभिन्न पौधों की पूजा की परंपरा भी इस बात का प्रतीक है कि भारतीय संस्कृति में पौधों और पर्यावरण के प्रति जागरूकता सदियों से बनी हुई है।

दुर्भाग्यवश, समय के साथ हमारी यह समृद्ध धरोहर धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है। वृक्षायुर्वेद और आयुर्वेद से संबंधित कई महत्वपूर्ण जानकारियाँ अब अगली पीढ़ियों तक सीमित मात्रा में ही पहुँच पाई हैं। औषधीय पौधों की कई दुर्लभ प्रजातियाँ विलुप्ति की कगार पर हैं, और उनके संरक्षण के लिए ठोस प्रयास न किए जाने से हमारा यह बहुमूल्य ज्ञान धीरे-धीरे समाप्त हो रहा है। आधुनिक जीवनशैली और कृषि पद्धतियों ने पारंपरिक ज्ञान की उपेक्षा की है, जिससे पर्यावरण को भी नुकसान हुआ है और हमारी सांस्कृतिक धरोहर पर भी संकट मंडरा रहा है। आज

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

के समय में वृक्षायुर्वेद और औषधीय पौधों का संरक्षण अत्यंत आवश्यक हो गया है क्योंकि औषधीय पौधों का महत्व केवल वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टि से भी है। पर्यावरणीय संकट, जलवायु परिवर्तन और घटते वनस्पति संरक्षण के इस दौर में, यह जरूरी हो गया है कि हम वृक्षारोपण, औषधीय पौधों की खेती और उनके संरक्षण के प्रति अधिक ध्यान दें।

वृक्षायुर्वेद हमें सिखाता है कि किस प्रकार हम प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन जी सकते हैं और धरती के संसाधनों का संतुलित और सतत उपयोग कर सकते हैं। यह ज्ञान हमें पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने की दिशा में सही कदम उठाने के लिए प्रेरित करता है। हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि हमारी आने वाली पीढ़ियाँ इस अमूल्य धरोहर से लाभान्वित हो सकें।

डॉ. मायाराम उनियाल जी की पुस्तक **''भारत की वैदिक अरण्य संस्कृति एवं पर्यावरण''** प्राचीन भारतीय संस्कृति और पर्यावरण संरक्षण की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास है। इस पुस्तक में डॉ. उनियाल जी ने स्वयं के लेखों के साथ-साथ अन्य विद्वानों के समुचित लेखों का भी संकलन किया है। यह हमारी प्राकृतिक धरोहर और पारंपरिक ज्ञान को समझने और संजोने का मार्गदर्शक भी है।

मुझे इस पुस्तक के सम्पादन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, इस हेतु में परमपिता तथा पूजनीय डॉ. मायाराम उनियाल जी को कोटिशः नमन करती हूँ। आशा है की यह पुस्तक छात्रों, शोधकर्ता एवं अध्यापकों के लिए महत्वपूर्ण साबित होगी एवं वृक्षायुर्वेद और औषधीय पौधों की महत्ता को नवीन दृष्टिकोण से समझने और प्रकृति के प्रति हमारी जिम्मेदारियों को निभाने की प्रेरणा प्रदान करेगी।

शिवानी

सम्पादक

डॉ. शिवानी घिल्डियाल

(एसोसिएट प्रोफेसर, द्रव्य गुण, अखिल भारतीय आयुर्वेद संस्थान, नई दिल्ली)

अखिल भारतीय आयुर्वेद संस्थान, सरिता विहार, मथुरा रोड़, नई दिल्ली

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रस्तावना

डॉ. मायाराम उनियाल, वनौषधि विद्यापति

भारतीय संस्कृति में वृक्षों और जड़ी बुटियों का विशेष महत्व है क्योंकि ये संजीव वृक्ष हमारे एवं समस्त जीवधारियों के प्राण हैं। हमारे सभी धर्म, ग्रन्थों, पुराणों एवं आयुर्वेद में वृक्षों की विशेष जानकारी है। लोकगीतों में भी पवित्र और देवता के समान इनकी पूजा की जाती है और उनके साथ परिवार की तरह जीने का सम्बन्ध बताया है।

वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि पेड़-पौधों में जीवन होता है। इस सन्दर्भ में महाकवि भवभूति का कहना है कि धन्य है पृथ्वी में यें जो वृक्ष दूसरों की भलाई के लिये जीवित हैं। यथा-

अहो एषां वरं जन्म सर्व प्राण्युपजीवन्म्।

अतः गुरूतुल्य इन वृक्षों के संरक्षण संवर्धन, पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है।

ऋग्वेद में वृक्षों को बिना प्रयोजन अनैतिक रूप से काटने या नष्ट करने की निन्दा की गई है। धर्म ग्रन्थों का भी कहना है कि जो मनुष्य वृक्षारोपण करते है, वे वृक्ष परलोक में उनके पुत्र हो कर जन्म लेते हैं। वृक्षों में देवत्व की भावना भारत की संस्कृति सांस्कृतिक विशेषता है। गृहस्थ आश्रम में वृक्षारोपण आवश्यक माना गया है। चाणक्य नीति में कहा गया कि केवल एक फलों वाला वृक्ष लगाना पर्यावरण संरक्षण के लिये ऐसा है कि जैसा एक गुणवान पुत्र कुटुम्ब बना देता है। इसलिये वृक्षों को काटना निन्दनीय माना गया है। मनुस्मृति में बिना प्रयोजन वनों को काटना निन्दनीय माना गया है और उसके लिये दण्ड का विधान किया गया है और उसे अधर्म माना गया है। वन सभी सजीव प्राणियों के प्रति करूणा का स्त्रोत है। भगवान बुद्ध ने कहा फल, पुष्प फल, जड़, छाल, तेल गंन्ध, गोंद के रूप में सभी संसार की सेवा करने वाले वृक्षों से हैं।

ये कुरान-शरीफ में लिखा है कि हरा पेड़ काटने वाले को खुदा कभी माफ नहीं करता। खुदा तुम्हारे लिये खेती और जैतून, खजूर, अंगूर और हर तरह के फल पैदा करता है। (हिन्दी कुरान श्री अहमद वशीर पृ. 272)

बाईबल के अनुसार मनुष्य वृक्षों और पशुओं को अपना मित्र मानता है और उनकी रक्षा में अपने प्राणों को देने के बारे में जानकारी मिलती है। सिख धर्म में गुरू नानक देव जी ने कहा है कि वायु ही जीवनदायी शक्ति है। पृथ्वी में जीवनदायनी शक्ति देने वाले वृक्ष ही है। भारत ने संस्कृति के महत्व को समझते हुए वृक्षों, पर्वतों, नदियों, पशु, पक्षियों को सदैव वन्दनीय और पूजनीय माना है। देवता, खुदा समझ कर उनकी सदैव पूजा की है।

पर्यावरण संरक्षण में भारतीय नारियों का विशेष महत्व है नारियाँ प्रकृति के संरक्षण में सुबह उठकर सूर्य को जल देती है, दोनों समय घर आगंन में तुलसी पर दीप जलाती हैं। कुंआ पूजती है पीपल के पेड़ पर कामना की पूर्ति के लिये जल चढ़ाती है तथा वट वृक्ष पूजा कर अक्षय सुहाग मांगती हैं। गुरूवार के दिन केले के वृक्ष की पूजा करती है। इसके पत्ते पर भोजन करना शुभ मानती है। अशोक अष्ठमी के दिन अशोक वृक्ष की पूजा दुःख निवारण के लिये प्रार्थना करती हैं। आंवले के वृक्ष में भगवान विष्णु का निवास होने से कार्तिक मास में पूजा एवं परिक्रमा कर अपने सुहाग का वरदान मांगती है। यह मान्यतायें वृक्षों के संरक्षण को निर्देशित करती हैं। भारतीय अध्यात्म में यज्ञ, हवन, विवाह, धार्मिक समारोह में आम, पीपल, वट, पलाक्ष, शमी, गूलर, चन्दन, मौलसरी एवं औषधीय वृक्षों के रोपण का विधान हैं।

ज्ञान विज्ञान एवं अध्यात्म हमारे देश के

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

त्रिगुणात्मक पहलू है। इसी में आयुर्वेद और समग्र वांङ्मय सन्निहित है। संस्कृत और संस्कृति दिनों दिन लुप्तः प्राय होने के फलस्वरूप आयुर्वेद विज्ञान को गहरा आघात पहुँच रहा है। स्वार्थवश प्रकृति का अनैतिक विदोहन होने के कारण पर्यावरण सन्तुलन पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है। दिनों दिन वनों का ह्रास, औषधियों की जैविक विविधता का ह्रास होने के कारण जड़ी-बूटियों का मिलना कठिन हो गया है तथा वृक्षों के विनाश के कारण भूमि-प्रदूषण, जल-प्रदूषण, वायु-प्रदूषण का खतरा बढ़ता जा रहा है। अतः यह जरूरी हो गया है कि निरोग समाज के निर्माण में औषधीय पादपों एवं वृक्षों का कृषिकरण, वनीकरण एवं उन्नत किस्म के बीजों को प्रचुर मात्रा में उपलब्ध कराने हेतु वनों का संरक्षण-संर्वधन विस्तृत पैमाने पर किया जाये। वृक्षों की महत्ता का वर्णन करते हुए श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि-

पत्र-पुष्प-फल-छाया-मूल-वल्कल-दारूभिः।
गन्ध र्निंयास भस्मास्थि वौक्मैः कामान् वितन्वते॥

(श्रीमद्भागवत)

अर्थात वृक्ष अपने सभी अवयवों से, पत्तों से, फूलों से, फलों से, छाया से, जड़ों से, लकड़ियों से, गन्ध से, गोंद से, राख से, कोयले से और टहनियों से सबकी कामना पूरी करते हैं। मत्स्य पुराण में वृक्षों की महिमा निम्नानुसार वर्णित है-

दस कूप समावापी, दसवापी समाहदः।
दस हद समः पुत्रो, दस पुत्र समो द्रुमः॥

(मत्स्य पुराण)

"अर्थात् दस कुओं के बराबर एक बावड़ी, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष होता हैं।"

भारतीय आध्यात्म संस्कृति एवं सभ्यता इतनी ऊँची है कि वह विश्व में कहीं भी नहीं है इस सनातन आध्यात्म से सारे विश्व की समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। हमारे ऋषि, मुनियों एवं महापुरूषों ने दीर्घ चिन्तन से "वसुधैव कुटुम्वकम्" ये दो शब्द मन्त्र के रूप में निर्धारित किये है। इन दो शब्दों का भाव है कि समस्त वसुधा (विश्व) परिवार है विश्व ने भारत की महत्ता स्वीकार की है और "वसुधैव-कुटुम्वकम्" का सन्देश समस्त विश्व को भारत ने दिया। भारतीय परम्परा में-

पृथ्वी सगन्धा सरसास्तथाडजः
स्पर्शी च वायु र्ज्वलित च तेज।
नभ सशब्दः महता सहैव,
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥

गन्ध युक्त पृथ्वी, सुस्वादु जल, स्पर्श पूर्ण वायु तेजस्वी अग्नि और शब्द युक्त आकाश ये सभी पञ्च महाभूत तत्व मेरा प्रभात शुभ करें ऐसी प्रार्थना निहित है।

उपरोक्त बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुये। प्रस्तुत कृति में वैदिक और संस्कृत साहित्य में अरण्य संस्कृति, वृक्षायुर्वेद, भारत की पहिचान संस्कृत साहित्य में अरण्य-संस्कृति एवं पर्यावरण, पर्यावरण सन्तुलन, वन संरक्षण आदि कतिपय महत्वपूर्ण जानकारी देने का प्रयास किया गया है।

रचना के प्रकाशन एवं दिशा निर्देश हेतु परामर्शदाता डॉ. एस. फारूख, प्रधान सम्पादक, युनिवरर्सिटीज जरनल आफ फाइटो कैमिस्ट्री एण्ड आयुर्वेदिक हाईटस, इन्दरा रोड़, देहरादून, उत्तराखण्ड का हृदय से आभारी हूँ। जिनकी शुभकामना सन्देश से रचना प्रकाशित हो सकी। रचना तैयार करने में अपने आदरणीय गुरू जनों को प्रणाम करते हुये, अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। उचित प्रस्ताव के लिये प्रो. डॉ. तनुजा मनोज निसारी, निदेशक, अखिल भारतीय आयुर्वेद संस्थान, आयुष, भारत सरकार, नई दिल्ली। रचना में डॉ. संगीता नेहरा, निदेशक, आयुष, हरियाणा का लेखन परामर्श हेतु धन्यवाद, वैद्य डॉ. सुरेन्द्र कुमार मलिक, आयुवैदाचार्य विद्यावारिधी द्वारा फ्रुफ रीडिग व डॉ. शिवानी घिल्डियाल की रचना के संशोधन एवं सम्पादन कार्य हेतु धन्यवाद एवं शुभाशीष। इसमें विद्वान विशेषज्ञों के लेखों एवं अनुभावों का समावेश किया गया है। सभी महानुभावों का आभार प्रकट करता हूँ। अंत में रचना के मुद्रण के कार्य हेतु श्री नारायण दत्त लखेड़ा, अवन्तिका, रोहिणी को बधाई देता हूँ जो बड़ी निष्ठा से इस कार्य को करते है। लेखन कार्य में चि. मधुसूदन उनियाल का सहयोग सराहनीय है।

ओम सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तुनिरामय।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विषय अनुक्रमणिका

क्रम संख्या	विवरण	पृष्ठ संख्या
1.	वैदिक काल से लेकर उपनिषदों पुराण एवं धर्मग्रन्थों में अरण्य संस्कृति	13-24
2.	वैदिक और संस्कृत साहित्य में अरण्य संस्कृति एवं वृक्षायुर्वेद	25-26
3.	अरण्य संस्कृति में वृक्षों की महिमा	26
4.	पर्यावरण सन्तुलन एवं भारतीय संस्कृति में वन संरक्षण की उपादेयता	27-33
5.	प्रदूषण की रोकथाम में उपयोगी वनस्पतियां	33
6.	वेदों एवं संस्कृत साहित्य में वनों का धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व	34-39
7.	वृक्षारोपण का महत्व एवं वराहमिहिर संहिता में वर्णित वृक्षों का महातम्य	40-41
8.	विविध वृक्ष द्वारा भूमिस्थ जल ज्ञानार्थ तालिका	41-46
9.	क्यों जरूरी है वट वृक्ष की पूजा?	47-48
10.	भारतीय साहित्य में वन सम्पदा का महत्व	49-50
11.	नेहरू जी ने कहा था...	50
12.	उत्तराखण्ड की वन सम्पदा एवं जनपद	51-60
13.	पर्यावरणविद् सुंदरलाल बहुगुणा जी के उद्गार	60
14.	वृक्षायुर्वेदान्तर्गत वनौषधि सम्पदा	61-66
15.	वृक्षों में लिंग का वर्णन तथा रूग्ण होने पर रोगोपचार	67
16.	पर्यावरण प्रदूषण, वन विनाश तथा समस्यायें	68-70
17.	कालिदास के काव्यों में अरण्य सम्पदा	71-74
18.	हिमालय क्षेत्र में पर्यावरण क्षरण तथा समस्या समाधान	75-79
19.	भारतीय संस्कृति एवं पर्यावरण संरक्षण में नारी का महत्व	80-82
20.	पर्यावरण का विनाश एवं ईंधन की समस्या में नारी जीवन	83-85

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

क्रम संख्या	विवरण	पृष्ठ संख्या
21.	अलौकिक हिमालय एवं वेदों में वर्णित दिव्यौषधियाँ	86-90
22.	हिमालय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं दिव्यऔषधियाँ	91-100
23.	भारत में औषध द्रव्यों का आयात एवं निर्यात	101-105
24.	उत्तराखण्ड के वन संसाधनों के संरक्षण एवं विकास के कुछ बिन्दु	106-117
25.	उत्तराखण्ड में वन पंचायत आधारित सामाजिक-आर्थिक संसाधन विकास व्यवस्था एवं सुझाव	118-121
26.	वनीकरण रोजगार में उत्तराखण्ड वन विभाग एवं पंचायतों की सहभागिता से सतत विकास एवं वृक्षारोपण	122-125
27.	उत्तराखण्ड में औषधीय पादपों का वनीकरण एवं वृक्षारोपण	126-131
28.	उत्तराखण्ड के वनों का वर्णन व वृक्षों का धार्मिक महत्व	132-134
29.	वृक्ष की महिमा	134
30.	अपुष्पीय पौधे शैवाल, कवक, (फफूंद) फर्न उपयोग	135
31.	सीड बॉल से संवरेगी प्रकृति, हरे-भरे होंगे पथरीले क्षेत्र	136
32.	वनौषधि गवेषक वैद्य मायाराम उनियाल के सन्दर्भ में	137
33.	जड़ी-बूटी से होगा जीवन में उत्थान	137
34.	रूपायन, अमर उजाला-23	138
35.	जड़ी बूटियों के सम्बन्ध में अखबारों द्वारा प्रकाशित जानकारी	139-142
36.	संदर्भ तालिका	143
37.	आयुर्वेद गौरव वैद्य मायाराम उनियाल द्वारा रचित साहित्य	144

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वैदिक काल से लेकर उपनिषदों पुराण एवं धर्मग्रन्थों में अरण्य संस्कृति

पृथ्वी पर मनुष्य की उत्पत्ति के समय से पेड़-पौधों का उपयोग घरेलू पशुओं के चारे के साथ-साथ भोजन, ईंधन तथा गृहस्थी विविध आवश्यकताओं की पूर्ति, सौन्दर्य प्रसाधनों, खिलौनों, सजावट, औजार, दवाइयों तथा धार्मिक उत्सवों व रीति-रिवाजों के लिए किया जाता रहा है। वृक्ष-पूजा, संभवतः प्रारम्भिक युग से अब तक सर्वाधिक प्रचलित धर्म का एक रूप रही है। वृक्ष-पूजा के सम्बन्ध में जेम्स फर्ग्युसन का कथन है-

"हम अपने धार्मिक विचार के सम्पर्क बिन्दु से हट जाते है जब हम पूछते है कि किसी वृक्ष से की गई प्रार्थना कैसे पूरी होना संभव हो सकता है कि प्रारंभ में वृक्षों की शाखाओं में किसी देवता के निवास की कल्पना कर ली गई हो और इसी कल्पित निराकार की शुरू में प्रार्थना की जाती रही हो। लेकिन जब किसी ने भी मूर्ति पूजा पर ध्यान दिया है, उसने अवश्य देखा होगा कि ज्ञान की एक विशेष स्थिति में पहुँच जाने पर मन कल्पित अदृश्य से ऊब जाता है और चेष्टा करके साकार, सगुण वस्तु की पूजा करने लगता है। कोई मूर्ति, कोई मंदिर, कोई पत्थर या कोई पेड़ इस तरह पूजा या तीर्थ की वस्तु बन जाता है और कालान्तर में पवित्र मान लिया जाने पर मानव मन उसी मूर्ति की पूजा करके सन्तोष का अनुभव करने लगता है, जिसकी पूजा करके पिछली पीढ़ियाँ सन्तुष्ट होती रही है।"

(जेम्स फर्ग्युसन : ट्री एंड सर्पेन्ट वर्शिप)

हिन्दू धर्म में वनस्पति

हिन्दूओं में जिस पूजा-भाव का विकास हुआ उसमें उपयोगिता और पारलौकिकता का मेल है। हिन्दू वृक्षों और पौधों को विभिन्न देवी-देवताओं का निवास मानते हैं। परम्परा से वे उनकी रक्षा करने वाली शक्ति से भी परिचित रहे हैं और यह भी जानते हैं कि उनको अविवेक पूर्वक नष्ट करने का परिणाम प्रदूषण होगा। इस प्रकार अनेक पेड़-पौधों के आरोग्यवर्धक गुणों का महत्व और धार्मिक या पारलौकिक-देवी शक्ति के निवास के बारे में बोध होता है। अनेक परम्परावादी हिन्दुओं के घरों के भीतर तुलसी का पौधा रहता था और बाहर नीम का वृक्ष। उनके उद्यान में केला, मौलसरी, बेल, आँवला और कभी-कभी गूलर के वृक्ष होते हैं। स्त्रियाँ इस वृक्ष की पूजा करती है और त्यौहार के अवसरों पर पूरा परिवार पूजा करता है।

वैदिक धारणा

ऋग्वेद् युग में, ऋषियों ने वृक्षों को परमात्मा के विभिन्न गुणों का आभार माना है। ऋग्वेद का एक पूरा स्रोत, वृक्षों की, मुख्यतः उनकी रोगमुक्त और विशेषताओं की, प्रशंसा में रचा गया है। सबसे बढ़कर वृक्षों को यज्ञ संबम्धी उपकरणों का देवता कहा गया है। (ऋग्वेद 10.27) (ऋग्वेद-3.8) सामान्यतः "वृक्षों" तथा "विरूध"

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पदों का प्रयोग ऋग्वेद में और बाद की संहिताओं में भी किया गया है। ऋग्वेद तथा आगे चलकर संहिताओं में सुप्रसिद्ध "सोम वृक्ष का उल्लेख वनौषधि के रूप में बार-बार किया गया है। ऋग्वेद का पूरा नवां मंडल, छह स्रोत इसी पौधे की प्रशंसा में समर्पित है। ऋग्वेद में वर्णित अन्य वृक्ष शाल्मली (या सेमल), खदिर, शिंशपा और विभीतक है। अथर्ववेद तथा बाद की दूसरी संहिताओं में दो अन्य महत्वपूर्ण वृक्ष शमी और प्लक्ष का उल्लेख मिलता है इक्षु अथवा (ईख) भी वैदिक युग में उगाया जाता था। फूल धारण करने वाले वृक्षों में पलाश, कमल, कुन्द और फल धारण करने वाले वृक्षों में उरुमाण, कर्कन्धु, कुवल, उदुम्बर, खजूर तथा दाख का उल्लेख ऋग्वेद और अथर्ववेद में मिलता है।

हिन्दूओं ने सोम की प्रार्थना, सारी गोचर सृष्टि के कर्त्ता और स्वामी कहकर की है-

त्वमिमा औषधीः सोम विवास्त्वमपो अजनयस्त्वंगाः।
त्वमा ततत्योर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ॥

(ऋग्वेद् 1.91-22)

"हे सोम! ये औषधियाँ, वे दुधारू पशु और ये जल प्रवाह तूने उत्पन्न किये हैं। तूने इस असीम आकाश में प्रकाश का विस्तार करके अंधकार को भगा दिया है।"

ऋग्वेद का निम्नलिखित स्रोत इस काल में वृक्षों का महत्व दर्शाता है-

आप औषधीरूप नौडवन्तु।
दयोर्वना गिरयों वृक्षकेशाः॥
श्रृणोतः न ऊर्जा पतिर्गिरः।
स नमस्तरीया इषिरः परिज्मा॥
शृन्वन्त्वापः पुरा न शुभ्राः।
परि स्त्रुचो ववृहाणस्याद्रेः॥

(ऋग्वेद 5.4 1.11-12)

"वनस्पतियां, जलधाराएं, आकाश, वन और वृक्षादित पर्वत हमारी रक्षा करें। ताजगी से भर देने वाला स्वामी, चंचल पवन जो आकाश के बादलों में तेजी से दौड़ता है, हमारे गान सुने और छिन्न-भिन्न पर्वतों में आगे बढ़ती स्फटिक सी स्वच्छ जलधाराएँ हमारी प्रार्थना सुनें।"

अथर्ववेद में वर्णित है कि-

उदितस्त्रयो आक्रमन व्याघ्रः पुरूषों वकः।
हिरुग्धियन्ति सिन्धवों हिरूग् देवो वनस्पतिर्हिस्रू
नमस्तु शत्रवः॥ (अथर्ववेद 3.3.1)

"तीनों-सिंह चोर और भेड़िये यहां से भाग जावें जैसे जलधाराएँ पर्वतों से नीचे भागती है और उतंग (ऊँचे) वृक्षों की जड़ें जैसे गहरे धसती जाती हैं, हमारे शत्रु भी वैसे ही परास्त हो।"

ऋग्वेद् में वनस्पतियों की वृद्धि के लिए प्रार्थना की गई है-

वनस्पते शतवल्शी विरोह।
सहस्वल्शा की वंय रूहेम॥
यं त्वामयं स्वधितिस्तेजमानः।
प्रणिनाय महते सौभगगाय॥ (ऋग्वेद 3.8.11)

अथर्ववेद के अनुसार वृक्ष वनों के स्वामी है और मनुष्य को पाप से बचाते है-

अग्निं बूमो वनस्पतीनोषधीरूधः।
इन्द्रं वृहस्पति सूर्य ते नो मंचन्त्वंहसः॥

(अथर्ववेद)

"हम परमात्मा की शरण में जाते हैं, हम वन देवता, वृक्षों, पौधों और औषधियों की शरण में जाते हैं, हम इन्द्र, वृहस्पति और सूर्य की शरण में जाते है। ये सब हमें पाप से छुड़ावें।"

मधुपतीरोषथीर्द्याव आपो।
मधुमन्वों भवत्वन्तरिक्षम्॥
क्षत्रस्य पतिर्मधुमान्नों।
अस्त्वरिष्यन्तों अन्वैनं चरेम॥ (ऋग्वेद-4.57.3)

"हमारे लिए वनस्पतियाँ और औषधियाँ मधुर हों, अंतरिक्ष जल एवं बीच का क्षेत्र मधुर हों, अन्य व वनस्पतियों को उत्पन्न करने वाला मधुर हों। हर

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तरह के रोग और कष्ट से मुक्त होकर हम तेरा अनुसरण करें।''

वैदिक ऋषि पौधों व औषधियों की आरोग्यदायिनी शक्ति का आह्वान करते है-

वणः सुवर्णा, आंगिरसीर्दिव्या याः रघटो विदुः,
वयासु हंसा या यिदुर्यश्य सर्व पतत्रिणः।
भुगा या विदुरोषधीस्ता अस्मा अवसे हुबे॥

(अथर्ववेद)

''महर्षि अंगिरस ने जिन जड़ी-बूटियों का वर्णन किया है, चील व गरूड़ को जिनका ज्ञान है तथा अन्य सब पक्षी जिनसे परिचित है उन सब औषधियों का इस रोगी के कल्याण हेतु मैं आहवान करता हूँ।''

मनुष्य के दीर्घायुष्य के लिए अथर्ववेद में जड़ी-बूटियों और वनस्पतियों की शक्ति का वर्णन किया गया है-

उज्जिहीध्वं स्तनयत्याधि क्रन्दत्यौषधीः।
यदा वः गृशनिमातरः पर्जन्यों रेतसावति॥
तस्यामृतस्येम वलं पुरुष पाययामसि।
अथो कृणेमि भेषजं यथसच्छतहायनः॥

(ऋग्वेद 4.57.3)

''हे वनस्पति! मेघ गरज रहे है। पर्जन्य की तुझ पर कृपा दृष्टि हो रही है। इस अमृत की शक्ति हम मनुष्य को पीने के लिए देते है और मैं ऐसी औषधि बनाता हूँ जिससे वह शतायु हो।''

उपनिषद्-काल के ऋषियों ने वनस्पतियों में परमात्मा के अस्तित्व के भी दर्शन किये हैं। वे कहते हैं- ''जो परमात्मा इस ब्रह्मांड, जल व अग्नि में व्याप्त है वही वृक्षों और औषधियों में भी निवास करता है।''

काथक उपनिषद् सम्पूर्ण संसार को एक अश्वत्थ वृक्ष मानता है। छान्दोग्य उपनिषद् में उसका उदाहरण एक संजीव सत्ता के रूप में दिया गया है-

अस्य सेमय महतो वृक्षस्य या
मुलेडभ्यान्हयाज्जीवन।
स्त्रवेद्यो मध्ये भ्याहन्याजीवन् स्त्रवेद्योऽ
ग्रेभ्याहन्याज्जीवन स्त्रवेत्॥
से एवं जीवनात्मनानुग्रभूतऽ पपीयमानो
मोदमानस्तिऽष्ठंति।
अस्य यवेक शाखां जं वा जहात्यथ सा शुष्यति॥
तृतीया जहात्यथ सा शुष्यति।
सर्वज्हाति सर्वः शुष्यति॥

(छान्दोग्य उपनिषद्-6-11.1-2)

''जब कोई इस वृक्ष की जड़ को काटता है तो उसमें से रक्त स्राव होता है क्योंकि वह जीवित है। और जब कोई उसके सिर को काटता है तो उसमें से रक्त स्राव होता है क्योंकि वह जीवित है। इस तरह उसमें आत्मा का निवास होने से वह आनन्दपूर्वक खड़ा रहता है। फिर, यदि किसी शाखा से प्राण निकल जाते हैं तो वह सूख जाती है, दूसरी शाखा से प्राण निकल जाते हैं तो वह भी सूख जाती है। यदि पूरे वृक्ष के प्राण निकल जाते हैं तो वह मुरझा जाता है या बिल्कुल सूख जाता है। अतः हे प्रिय, तुम इस पर ध्यान दो।''

एक अन्य उपनिषद में वृक्षों को मनुष्य के समकक्ष माना गया है-

यथा वृक्षा वनस्पतिस्तथेव पुरूषोऽमृष।
तस्य लोमनि पर्णानित्वगस्योस्पाटिका वहिः॥
त्वच एवास्य रूधिरं प्रस्यन्दित्व उत्पट।
तस्मात् तदातृष्णात् प्रेति रसो वृक्षादिवाहतात्॥
मांसान्यस्य शकराणि किनाटं स्नाव तत् स्थिरम्।
अस्थीन्यन्यरतो दारुणि मज्जापमा कृता॥

(बृहदारण्यक उपनिषद् 3.9.28)

''जंगल के राजकुमार वृक्ष के ठीक समान, यथार्थ में मनुष्य है। उसके केश पत्ते है, उसकी त्वचा वृक्ष की छाल के समान है। पेड़ से जैसे रस का स्राव होता है वैसे ही उसकी त्वचा से रक्त बाहर निकलता

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

है। पेड़ के काटे जाने पर और मनुष्य के घायल होने पर ऐसा होता है। मांस की तुलना काष्ठ से की जाती है और स्नायु भीतरी छाल है। काष्ट के भीतर का सार उनकी अस्थियाँ है और मज्जा है पेड़ के भीतर का गूदा या गोंद सार है।''

मुंडकोपनिषद् में परमात्मा को वृक्षों का उत्पन्न करने वाला कहा गया है-

अतः समूद्रा गरयश्य सर्वेड।
स्मात्स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः॥
अतश्च सर्वा औषधयों रसश्च।
येनेषा भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा॥

(मुंडकोपनिषद 2.1.9)

''उसी (परमात्मा) से सब समुद्र और पर्वत उत्पन्न होते है। हर प्रकार की नदियाँ उसी से निकलती हैं। पौधे अपने पोषक रसों सहित उससे ही पैदा हुए हैं जिसके द्वारा वे सब में अन्तरात्मा बन कर रहते है।''

उन्नीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिक चार्ल्स, डार्विन, सर जगदीश चन्द्र बोस और राउल क्राँस द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त, भारतीय ऋषियों को बहुत पहले से ज्ञात थे। उन ऋषियों को पेड़ पौधों से गहरा प्रेम और उन पर गहरी श्रद्धा थी। भारतीय ऋषियों के संबंध में एच.डबल्यू, विल्सन कहते हैं-

''वे पौधे के आन्तरिक एवं बाह्य, दोनों तरह की विशेषताओं का ध्यानपूर्वक अध्ययन करते थे और उन्होंने वनस्पतियों को विस्तृत रूप में सूची-बद्ध किया है जिसमें उन्होंने वनस्पतियों के विशेषता-सूचक नाम दिए हैं और विवेक पूर्वक उनके उपयोग भी बतलाए है।''

(मि. हिस्ट्री ऑफ इंडिया खंड-2 पृ. 97)

सिन्धु घाटी की सभ्यता से पहले का प्राचीन भारतीय इतिहास वनस्पतियों के सम्बन्ध में वैदिक दृष्टाओं के इन विचारों की पुष्टि करता है। दीवालों पर उत्कीर्ण पाये गये वृक्ष इस बात का समर्थन करते हैं कि सिन्धु घाटी की सभ्यता के दौरान वृक्ष-पूजा प्रचलित रही है। उस काल के सिक्कों पर भी पेड़-पौधों की आकृतियाँ चित्रित हैं। सिन्धु घाटी के लोग पीपल वृक्ष की पूजा करते थे और उसके पत्तों को सुख-समृद्धि का दाता समझते थे। यह इस बात को प्रमाणित करता है कि ई.पू. तीसरी या चौथी सहस्त्राब्दि में भी वृक्ष-पूजा प्रचलित थी जबकि उच्च कोटि की हड़प्पा संस्कृति का अस्तित्व था। सिन्धु के लोग वृक्षों को दयामय देवता मानते थे। वे (वृक्ष) उर्वरता के भी प्रतीक माने जाते थे। वासुदेव शरण अग्रवाल कहते हैं- ''हड़प्पा से प्राप्त एक मोहर में एक स्त्री के गर्भ में से पौधे को जन्मते हुए दिखाया गया है जो उर्वरता का स्पष्ट प्रतीक है।''

(वासुदेव शरण अग्रवालः इंडिया आर्ट पृ. 25)

महाकाव्यों और पुराणों की दृष्टि

महाकाव्यों और पुराणों के काल में वनस्पति के संबंध में हिन्दू विचारधारा और विस्तृत हुई। महाभारत में कहा है-

घनानामपि वृक्षाणामाकाशेडस्ति न संशयः।
तेषां पुष्पफलप्यक्तिवित्तर्नित्यम् समुपद्द्यते॥
उष्मतौश्लनायते वर्ण त्वक् फल पुष्पमेव च।
म्लायते शीर्यते चापि स्पर्शस्तेनात्र विद्यते॥
वायुवग्न्यशनि निर्घाषैः फलं पुष्प निशीर्यते।
श्रोत्रेण गुह्यते वृक्षं सर्वतश्चाव गच्छति॥
नः यहष्टश्च माग्रार्तस्त तस्मात्यश्यन्ति पादपाः।
पुण्यापुन्यस्तथा गन्धेंपेश्च विवि धऽपि॥
आरोगाः पुण्पिताः सन्ति तस्मज्जिघ्रन्ति पादपः।

(महाभारत, मोक्ष धर्म पर्व-14.8.10-4)

''वृक्ष यद्यपि ठोस होते हैं किन्तु उनमें आकाश के सद्गुण रहते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है। जीवित होने के कारण वे फूलते और फलते हैं। वे उष्णता का अनुभव करते हैं। उनके फूलों और फलों पर गर्मी का प्रभाव पड़ता है और सूख जाने पर वे नीचे गिर पड़ते हैं। इससे सिद्ध होता है कि उनमें

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्पर्श-ज्ञान भी होता है। हवा, अग्नि, ध्वनि तथा बादलों के गरजने के असर से पेड़ों के फूल झड़ जाते हैं। आवाज तो सिर्फ कान से ही सुनी जा सकती है। इससे सिद्ध होता है कि पेड़ों में सुनने की शक्ति भी होती है। लताएं वृक्षों से लिपट जाती हैं और नीचे से चोटी तक बढ़ जाती हैं। रास्ते को देखे बिना कोई आगे नहीं बढ़ सकता। इससे स्पष्ट होता है कि वृक्षों में देखने की शक्ति होती है। अच्छी और बुरी गंध पेड़ की वृद्धि पर प्रभाव डालती है। सुवास से उनमें फूल खिलते हैं और दुर्गन्ध उन्हें पीड़ित करती है। इससे पता चलता है कि वृक्षों में सूंधने की शक्ति भी होती है।''

ऐसा विश्वास किया जाता है कि वृक्षों को भी दुख और सुख की अनुभूति होती है। पुनः महाभारत कहता है-

पादै सलिलपानाच्च व्याधीनां चापि दर्शनात्।
व्याधि प्रतिकायित्वाच्च विद्यते रसनं दुगें॥
सुखदु खयौच्च ग्रहणाच्छिन्नस्य च विरोहणात्।
जीवं पश्यामि वृक्षाणामचैतन्यां न विद्यते॥

(महाभारत, मोझ धर्म पर्व 18, 15-17)

''वृक्ष जड़ों से जल ग्रहण करते हैं। यदि उन्हें कोई रोग होता है तो उन पर दवा छिड़क देने से ठीक हो जाता है। इससे मालूम होता है कि उनमें रसेन्द्रियता होती है। वृक्ष जीवित है और दूसरों की तरह उनमें भी प्राण हैं, क्योंकि काटने से उन्हें दुख की अनुभूति भी होती है। एक शाखा काट देने से नई शाखा उत्पन्न हो जाती है।''

रामायण में भी अनेक स्थलों पर वनस्पतियों का सौंदर्य और प्राचुर्य बतलाया गया है तथा वृक्षों एवं वनों का कवित्वमय वर्णन मिलता है। वृक्षों को पूजनीय और सौभाग्यदायक माने जाने के प्रमाण मिलते है। सीता हाथ जोड़कर न्यग्रोध वृक्ष की प्रार्थना इस प्रकार करती है-

न्यग्रोघ समुपागम्य वैदेही चाभ्यबन्दत।
नमस्तेऽस्तु महावृक्ष पारयेन्में पतिब्रतम्॥
कौशल्यां चैव पश्येम सुमित्रां चयशस्विनीम्।
इति सीतांजलिं कृत्वा पर्यगच्छन्मनस्विनी॥

(रामायण, अयोध्याकांड 53.24-26)

''हे शक्तिशाली वृक्ष! मैं तुझे प्रणाम करती हूं। मेरे पति का प्रण पूरा कराने की दया करो, जिससे मैं अपनी पूजनीय सास कौशल्या और सुमित्रा के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त कर सकूँ।

वेदादि धर्म ग्रन्थों में पीपल के वृक्ष की पूजा को अत्यधिक महत्व दिया गया है। भगवद्गीता में उसे स्वयं भगवान् कृष्ण का अवतार कहा गया है। कृष्ण कहते हैं-

समस्त वृक्षों में मैं अश्वत्थ (पीपल) हूँ।

(गीता 10.26)

इस संसार की माया की तुलना गीता में पीपल के वृक्ष से की गई है-

अधश्चौर्ध्व प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवद्ध
विषयप्रवालाः।
अधश्च मूला यनुसंततानि कर्मानुबंधीनि
मनुष्यलोके॥ (गीता 15.2)

''इस वृक्ष की शाखाएं ऊपर और नीचे की ओर फैली हैं। त्रिगुणात्मिका माया जिनका पोषण करती हैं और जिनमें विषय भोग रूप कोपलें और वासना रूपी जड़े नीचे और ऊपर फैली हुई मनुष्य को कर्मों के अनुसार बाँधती हैं।''

गोमिल के गृह्य सूत्र में वे स्थान बतलाये गये है जहां विभिन्न पौधों को लगाया जाय या न लगाया जाये। गोमिल के मतानुसार ऐसा करना किसी व्यक्ति के लिए शुभ या अशुभ दोनों हो सकता है-

वर्जयेत् पूर्वताऽश्वस्त्थं प्लक्षं दक्षिणतस्तथा।
न्यग्रोधमपराद् देशादुस्ताराच्चाप्युदुम्वरम्॥
अश्वस्थादग्निमयं विद्यात् प्लक्षद् ब्रूयात् प्रभायुकान्।
न्यूग्रोधाच्छस्त्र सम्पीड़ा भक्ष्यामयमुदुम्बरात्॥

(गोमिल गृह्य सूत्र 4.7.22-23)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

"अपने मकान के पूर्व की ओर पीपल का वृक्ष, दक्षिण की ओर प्लक्ष, पश्चिम में न्यग्रोध और उत्तर में उदुम्बर नहीं लगाना चाहिए। उस दिशा में पीपल जला देता है, प्लक्ष से निवासियों की अकाल मृत्यु हो जाती है, न्यग्रोध शत्रुओं द्वारा सशस्त्र आक्रमण का तथा उदुंबर नेत्र रोग का कारण होता है।"

इसी प्रकार अग्नि पुराण में प्लक्ष वृक्ष को मकान की उत्तर दिशा में, न्यग्रोध को पूर्व दिशा में, गूलर को दक्षिण में और पीपल को पश्चिम में लगाये जाने का निर्देश दिया गया है। ऐसा निवास स्थान उसमें रहने वालों के लिए शुभ माना जाता है। (274. 24) नियम पूर्वक वृक्षों को जल और खाद पहुँचाना एक पुनीत कर्तव्य कहा गया है। कुछ वृक्षों को श्रेष्ठतर माना गया है, उदाहरणार्थ स्कंद पुराण में पीपल को भगवान विष्णु के समान बताया गया है (189.65) किन्तु उसमें यह विश्वास भी व्यक्त किया गया है कि परमात्मा भिन्न-भिन्न स्वरूपों में प्रायः सभी वृक्षों में विद्यमान है-

पार्वती विल्ववृक्षस्थां लक्ष्मी च तुलसीगताम्।
आदौ सर्ववृक्षमयं पूर्व विश्वमजायत॥

(स्कंद पुराण 15.21)

"सृष्टि के समय में, मैं (ईश्वर) समस्त पेड़ पौधों में विद्यमान रहा हूं किन्तु देवी पार्वती बिल्व में तथा देवी लक्ष्मी तुलसी में निवास करती है।"

पद्मपुराण (सृष्टि खंड 59.7) में यह वर्णन किया गया है कि जिस घर में तुलसी का पौधा रहता है उसके निवासी भाग्यशाली होते हैं। ब्रह्मवैवर्त पुराण (प्रकृति खंड 21.37) में कहा गया है कि जिस स्थान पर तुलसी का पौधा लगाया गया है वह स्थान पवित्र एवं प्रायः देवताओं का निवास स्थल माना जाता है। हिन्दू-परिवारों में तुलसी के पौधे की पूजा के अनेक कारण हैं-

"हिन्दू परिवारों में तुलसी के पौधे की पूजा ज्यादातर स्त्रियों के द्वारा की जाती है क्योंकि उस पौधे को पवित्र माना जाता है, वन दाम्पत्य जीवन को दीर्घायु देता है तथा औषधीय गुणों से परिपूर्ण होता है। यह विश्वास भी किया जाता है कि जिस गृह में प्रतिदिन तुलसी की पूजा की जाती है उसमें यमदूत प्रवेश नहीं करते।" (स्कंद पुराण 2166)

तुलसी का पौधा चारों ओर लगाया जाता है और उसकी पूजा की जाती है, विशेषतः कार्तिक के महीने में। तुलसी को देवता का सम्मान मिलता है क्योंकि उसका संबंध विष्णु और लक्ष्मी से माना जाता है। तुलसी का पौधा अपने धार्मिक उपासकों के लिए स्वर्ग के द्वार खोलने वाला है और जो उसे उखाड़ डालते है वे मृत्यु के पश्चात् दंड के पात्र होते हैं। उसके आरोग्यवर्धक महत्व को स्वीकार किया गया है और भारतीय घरों में आज भी मरणोन्मुख व्यक्ति के मुख में (गंगा) जल और तुलसीदल डालने की प्रथा है।

एक दूसरा अत्यंत प्रसिद्ध वृक्ष रूद्राक्ष (इलियोकार्पस गैनीट्रस) है जिसके फलों को अति पवित्र माना जाता है और जिसके बीजों से भजन करने की माला बनती है। उनके अनेक मुख या पक्ष होते हैं जिनमें से प्रत्येक का एक विशेष अर्थ या महत्व है। एक मुखी रूद्राक्ष दुर्लभ है और उसे पाने वाला शक्ति, आनंद और सुख भोगता है।

हिन्दू लोग वृक्षों को ईश्वर के विभिन्न रूपों का निवास-स्थान मानते है। इस विश्वास से जुड़ी अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। पद्मपुराण के उत्तर कांड में एक ऐसी ही कथा है। एक समय भगवान शिव अपनी प्रिया पार्वती के साथ एकांत स्थान में बैठे थे। अन्य सभी देवताओं ने मिलकर अग्नि देवता से कहा कि आप ब्राह्मण का वेश धारण कर उस स्थान पर जाएं। इस तरह बाधा उत्पन्न किये जाने से पार्वती कुपित हो गई और उन्होंने अग्नि को भेजने वाले

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

देवताओं को श्राप दिया- "तुम सब देवता वृक्ष बन कर जन्म लो।" इस श्राप के प्रभाव से भगवान बह्मा ने पलाश वृक्ष के रूप में, भगवान विष्णु ने पीपल के रूप में और रूद्र देवता ने वट वृक्ष के रूप में जन्म लिया।

भगवान महेश्वर भी वट में निवास करते हैं ऐसा माना जाता है। (कूर्म पुराण 36.26) अन्य बहुत से वृक्षों को हिन्दू लोग एक या अनेक देवी-देवताओं से जोड़ते हैं। विविध प्रकार की वस्तुएँ जो वृक्ष से मिलती हैं धार्मिक अनुष्ठान और उत्सव में प्रयुक्त होती हैं। उदाहरण के लिए, त्रिपत्री बेल शिव पर चढ़ाया जाता है और विशाल साल वृक्ष में विष्णु का निवास माना जाता है। भवन निर्माण में साल की लकड़ी का उपयोग भी सुख-समृद्धि देने वाला माना जाता है। वामन पुराण के अनुसार (17.5.8) कुछ वृक्षों को एक न एक विशेष देवी-देवता के अंग-विशेष से उत्पन्न कहा गया है और कुछ वृक्ष एक देवता विशेष से संबधित माने गये हैं जैसे कि धतूरा भगवान शंकर से। (17.1-4)

भारत के लिए वृक्ष-पूजा नई वस्तु नहीं है। मोहन जोदड़ो में इसके प्रमाण मिलते हैं। पहले भी ऐसा था और आज भी आमतौर पर ऐसा ही विश्वास किया जाता है कि प्रत्येक वृक्ष का एक देवता होता है जिसकी पूजा-प्रार्थना जल, फूल, मिठाइयां और अक्सर फूल माला चढ़ा कर या धागा लपेट कर की जाती है। कभी-कभी वृक्ष देवों का आपस में विवाह कर दिया जाता है और स्त्रियों तक से पूरे वैवाहिक अनुष्ठानों के साथ वृक्ष-देवता का विवाह कर दिया जाता है। भारत के अनेक भागों में यह विश्वास प्रचलित है कि वृक्षों द्वारा मनुष्य की आत्मा को खींचा जा सकता है। भारतीय ग्रामों की अस्सी प्रतिशत जनसंख्या वृक्ष-पूजा और ग्राम-देवता की पूजा में भाग लेती है। तुलसी विवाह मुख्य रूप से किया जाता है।

वृक्षारोपण की रीति कम से कम पंद्रह सौ वर्ष पुरानी तो है ही, क्योंकि मत्स्य पुराण के एक अध्याय में इस समारोह के संदर्भ में पूर्ण विधि-विधान बताया गया है। विद्धानों द्वारा कथित वह प्रक्रिया इस प्रकार है-

"सर्वप्रथम पृथ्वी को साफ करो और उसे सींचो। वृक्षों को मालाओं से सजाओं, उनके सामने गुग्गुल की सुगंध जलाओ और प्रत्येक वृक्ष के बाजू में एक-एक जल से भरा घड़ा रखो। प्रार्थना के साथ नेवेद्य अर्पण करो और फिर पवित्र जल उन पर छिड़को। ऋग्वेद, यजुर्वेद् और सामवेद् के मंत्रों का उच्चारण करते हुए यज्ञाग्नि प्रज्जवलित करो। इस तरह पूजा करने के उपरान्त वास्तविक वृक्षारोपण संपन्न करना चाहिये। जो मनुष्य केवल एक वृक्ष भी लगाता है वह सीधा स्वर्ग को जाता है और परम पद प्राप्त करता है।" (मत्स्य पुराण 59.149)

वाराह पुराण में भी वन-महोत्सव या वृक्षारोपण समारोह का वर्णन है-

अश्वत्थमेकं पिचुमिन्दमेकं न्यग्रोधमेकं दशपुष्पजातीः।
द्वे द्वे तथा दाडिममातुलुंगे पंचाम्ररोपी नरके न याति॥

(वाराह पुराण 172.39)

"जो कोई एक पीपल, एक नीम, एक बड़, दस फूलों के पौधे या लताएं, दो अनार, दो नांरगी और पांच आम के वृक्ष लगाता है वह नरक में नहीं जाता।"

एकेनापि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगन्धिना।
वाखितं स्वद् वन सर्वे संपुत्रेन कुलं यथा॥

(चाणक्य नीति दर्पण 3.14)

"गृहस्थ आश्रम में वृक्षारोपण आवश्यक माना गया है। चाणक्य नीति में कहा गया है कि केवल एक फलों-फूलों वाला वृक्ष लगाना पर्यावरण को ऐसा आनंदमय और सुगंधित बना देता है जैसा एक सुपुत्र किसी कुटुम्ब को बना देता है।"

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इस विश्वास से कि देवता वृक्ष में निवास करते हैं जो कि पेड़ में आत्मा है स्वभाविक रीति के वृक्ष काटने को एक अवांच्छनीय कार्य बना दिया। जिस व्यक्ति को यज्ञ में बलि-स्तंभ के लिए वृक्ष काटना एक विवशता है उसको शतपथ ब्राह्मण में यह निर्देश दिया गया है कि वह कुल्हाड़ी और वृक्ष के मध्य दूर्वा का तृण रखकर कहे- "हे दूब! वृक्ष का कवच बन जा" और प्रहार करने के पूर्व चिल्लाए, "हे कुल्हाड़ी चोट न पहुँचाना।"

स्कंद पुराण में ऐसे वृक्षों की एक लंबी सूची दी गई है जो केवल यज्ञ के उद्देश्य के लिए काटे जाने चाहिए और वे भी वर्षा ऋतु में कदापि नहीं-

एतेषा सर्ववृक्षाणा छेदनं नैव कारयेत्।
चातुर्मास्ये विशेषेण बिना यज्ञादिकारणम्॥

(स्कंद पुराण 20.83)

"इन सभी वृक्षों को काटना निन्दनीय है। यज्ञ के उद्देश्य के सिवाय वृक्ष कभी न काटे जाएं और विशेषकर वर्षा ऋतु में तो काटे ही न जाएं।"

पद्म पुराण के अनुसार वृक्षों को काटना नरक में दंडनीय अपराध है। (56, 40-41) अग्नि पुराण कहता है कि वृक्षारोपण और आंनद-वाटिकाओं का निर्माण पाप परिशोधन एवं सुखोपभोग में सहायक होते हैं। ऐसे प्रसंग ऋग्वेद (5.3.8-2) और सांख्यायन वृह्मसूत्र (5.32) में भी मिलते हैं। वृहत्संहिता कहती है यदि मकान के पश्चिमी कोने पर पीपल का वृक्ष लगाया जावे तो वह गृह-स्वामी के लिये सौभाग्य लाने वाला होता है। इन धर्म ग्रंथों में वृक्षारोपण की समानता किसी ब्राह्मण को दिये जाने वाले गोदान या भूमिदान से बताई गई है। "कौटिल्य अर्थशास्त्र" पेड़-पौधों को नष्ट करने के लिए अनेक प्रकार के दंड निर्धारित करता है-

"नगर के पास वाले उद्यानों के फलदायी वृक्षों की, फूलदायी वृक्षों की अथवा छाया देने वाले वृक्षों की कोंपल काटने वाले पर छह पणों का अर्थदंड लगाया जायेगा, उन्हीं वृक्षों की छोटी-छोटी शाखाएं काटने के लिए बारह पण और बड़ी शाखाओं को काटने के लिए चौबीस पणों का अर्थदंड भरना पड़ेगा। उन्हीं वृक्षों के तने काटने वाला निर्धारित अर्थदंड का पात्र होगा और पेड़ों को गिराने वाला माध्यमिक अर्थदंड का।"

(रामशास्त्री: कौटिल्याज अर्थशास्त्र-तीसरा खंड, पृ. 224)

सारणी-दो

वृक्ष 1	सम्बधित देवी-देवता या अन्य अदृश्य शक्ति 2
1. अश्वत्थ	विष्णु, लक्ष्मी, पितृ-पूजा
2. वट	बह्मा, विष्णु, श्री हरि, कुबेर
3. तुलसी	लक्ष्मी, विष्णु, पितृ-पूजा
4. सोम	चन्द्रमा
5. बेल, धतूरा	महेश्वर, भूत, शिव
6. अशोक	बुद्ध, इन्द्र
7. आंवला	लक्ष्मी, कार्तिक प्रजनन शक्ति (उर्वरता)
8. ताल	भूत-प्रेत
9. आम	लक्ष्मी, गोवर्धन, उर्वरता
10. कदव	कृष्ण, उर्वरता
11. नीम	शीतला, भूतवाधाहर, कृमिनाशक
12. पलाश	ब्रह्म, गंधर्व
13. पीपल	विष्णु, पितृ पूजा, कृष्ण
14. महुवा	उर्वरता
15. सेमल	उर्वरता
16. आख (अर्क)	उर्वरता
17. नारियल	उर्वरता
18. गूलर	विष्णु, रूद्र
19. कर्पूर	चन्द्रमा
20. केवड़ा	वन, दुर्गा, लक्ष्मी
21. तमाल	कृष्ण, ज्ञनी-विष्णु

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अपनी संहिता में मनु ने भी वृक्षों को काटने के लिए अनेक दंड निर्धारित किये हैं और उसे अधर्म का कार्य कहा है।

चरक संहिता, वनों के विनाश करने को मनुष्य एवं राष्ट्र के कल्याण के लिए सबसे ज्यादा खतरनाक मानती है-

विगुणेष्वपितु खलुऐतेषु जनपदोध्वंशन करेषुभावेषुकेनोपाय मानानां न भय भवति रोगभ्यशति। (चरक)

"जंगलों का विनाश राष्ट्रों के लिए तथा मनुष्य जाति के लिए सबसे ज्यादा खतरनाक है। समाज के कल्याण से वनस्पति का सीधा संबंध है। प्राकृतिक पर्यावरण के प्रदूषण के कारण और वनस्पति के विनाश के कारण राष्ट्र को बरबाद करने वाली अनके बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं। तब चिकित्सकीय गुणयुक्त वनस्पति ही प्रकृति की अभिवृद्धि करके मानवीय रोगों को ठीक कर सकती है।" (चरक संहिता, विमान स्थान 3.11)

हिन्दुओं की वृक्ष-पूजा का केवल धार्मिक और पौराणिक आधार ही नहीं बल्कि वह पेड़-पौधों की उपयोगिता के विभिन्न तथ्यों पर भी आधारित है। प्रथम तथ्य है सामान्य व्यावहारिक उपयोगिता अर्थात् आहार एवं आशय के लिए सामग्री प्रदान करना। दूसरा तथ्य है, उनका अच्छी और बुरी शक्तियों के आधीन होना। तीसरा तथ्य है, उनकी दवाइयों (जड़ी-बूटियों) वाली विशेषता का मूल्य। तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या, उद्योगीकरण और शहरीकरण में अभिवृद्धि के कारण वनस्पति के लिए उत्पन्न हुए संकट ने उस बुद्धिमत्ता के प्रति सम्मान को अधिक बढ़ा दिया है जिसने हमारी वृक्ष संपदा के संरक्षण पर ध्यान देकर वृक्षों को देश में समाहत बनाया। धीरे-धीरे देश का वन्य क्षेत्र घटता गया है और उद्यान लगाना अब एक पुण्य का कार्य नहीं रह गया है। इस बात ने पर्यावरण को गंभीर रूप से प्रभावित किया है।

श्रीमद्भागवत में वृक्षों के महत्व का वर्णन करते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने कहा-

पश्यतैनान महाभागान् परार्थेकान्त जीवितान्।
वातवर्षातप हिमान् सहन्ते वारयन्ति नः॥

(श्रीमद्भागवत)

"देखो कितने बड़े भाग हैं इन वृक्षों के जो केवल इसलिए जीते हैं कि दूसरों का भला हो। कितनी महानता है उनकी कि वे आंधी, वर्षा और धूप की प्रखरता सहते हुए हमारी रक्षा करते है।"

श्रीमद्भागवत में ही कहा गया है कि-

पत्र-पुष्प-फल-छाया-मूल-वल्कल-दारूभिः।
गन्ध निर्यास भस्मास्थि तौक्मेंः कामान् वितन्वते॥

(श्रीमद्भागवत)

"वृक्ष अपने सभी अवयवों से पत्तों से, फूलों से, फलों से, छाया से, जड़ों से, छाल से, लकड़ियाँ से, गंध से, गोन्द से, राख से, कोयले से और टहनियों से सबकी कामना पूरी करते है।"

श्रीमद्भागवत के अनुसार वृक्षों ने किसी भी याचक को कभी निराश नहीं किया-

अहो एषां वरं जन्य सर्व प्राण्युपजीवनम्,
सुजनस्येव धन्य महीरूहा।
येम्यो निराशा यान्ति नार्थिनः॥ (श्रीमद्भागवत)

"समस्त प्राणियों को जीवन प्रदान करने वाले इन वृक्षों का जन्म कितना उत्तम है। सज्जनों जैसे कि धन्य हैं वे जिसके पास कोई याचक निराश नहीं लौटता।"

विक्रमचरितम् के 65वें श्लोक में वृक्षों को सत्पुरूषों के समान माना गया है-

"वृक्ष तो सज्जनों जैसे परोपकारी हैं। स्वयं धूप में खड़े रहते हुए भी वे दूसरों को छाया देते हैं। उनके फल भी दूसरों के उपयोग के लिए होते है।"

वाराहपुराण (162-4 1-4 2) में वृक्षों के उपकारों का वर्णन किया गया है-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इन्धनार्थ यदानीतं अग्निहोमं तदुच्यते।
छाया विश्राम पथिकैः पक्षिणां निलयेन च॥
पत्र मूल त्वगादिभिर्य औषधार्थ तु देहिनाम्।
उप कुर्वन्ति वृक्षस्य पंचयज्ञः स उच्यते॥

(विक्रमचरितम्)

"वृक्षों के पांच उपकार उनके दैनिक पांच महायज्ञ हैं। वे गृहस्थों को ईंधन देकर, पथिकों को छाया व विश्राम स्थल देकर, पक्षियों के नीड़ का आधार बनकर तथा पत्तों, जड़ों व छालों से समस्त जीवों को औषध देकर उनका उपकार करते हैं।"

भामिनीविलास (प्रा.89) में वृक्षों की वंदना की गई है-

धन्ते मरं कुसुमपत्र फलावनीनां।
धर्मव्यथां वहति शीत भवांरूजं वा॥
योदेहमपर्यति वान्य सुख्यस्य हेतोः।
तस्मै वदान्य गुरवे तरवे नमस्ते॥ (भामिनी विलास)

"हे तरूवर! आप फूलों, पत्तों और फलों का भार वहन करते हैं, लोगों की धूप की पीड़ा हरते हैं और उनके ठंड के कष्ट मिटाते हैं। इस तरह दूसरों के सुख के लिए आप अपना तन समर्पित कर देते हैं। इन्हीं गुणों से आप उदार पुरूषों के गुरु हैं। अतः हे तरूवर! आपको मेरा नमस्कार है।"

उपदेश तरंगिणी में (7, 7, 2) वृक्षों को महान उपकारी माना गया है-

मंजरिमि पिक-निकरं रजोभिरलिनं फलैश्च
पान्थगणम् मार्ग सहकार।
सतत् उपकुर्वन् नन्दति चिरकालम्॥

(उपदेशतरंगिणी)

"पथ के किनारे खड़े हे वृक्ष! तुम युग-युग जीओं और आनन्दपूर्वक रहो क्योंकि तू अपनी मंजरियों से कोकिलों का, पराग से भ्रमरों का तथा फलों से पथिकों का सदा उपकार करते हो।"

मत्स्य पुराण में वृक्षों की महिमा निम्नानुसार वर्णित है-

दस कूप समावापी, दसवापी समाहदः।
दस हद समः पुत्रों, दस पुत्र समो द्रुमः॥

(मत्स्य पुराण)

"दस कुओं के बराबर एक बावड़ी, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष होता है।"

बौद्ध धर्म में वनों का महत्व

वनों की रक्षा का बौद्ध धर्म में महत्व है। महात्मा बुद्ध के निम्नलिखित आशय वाले शब्द ध्यान देने योग्य हैं-

"वन प्रकृति की ऐसी जीती-जागती देन हैं, जिसमें प्राणियों के लिए अपार दया और परोपकारिता का आगार है। वन दूसरों के प्रति करूणा के स्त्रोत हैं एवं बदले में अपने लिए कुछ याचना नहीं करते। वे बड़ी उदारता से जीवनदायक पदार्थ भेंट करते हैं। इससे अधिक और क्या हो सकता है कि जो मनुष्य कुल्हाड़ी लेकर उसको काटने जाता है उसे भी वे सूर्य की गर्मी से बचाते हैं।"

धर्म्मपद में लिखा है-

यथापि भ्रमरो पुष्पं वर्ण गंध अहेठयं।
पलेतिंरसमादाय एवं गामे मुनीचरे॥ (धर्मपद)

"जैसे भ्रमर पुष्प के वर्ण एवं गंध को हानि पहुँचाये बिना रस लेकर चला जाता है वैसे ही मुनि ग्राम में भिक्षाटन करें।"

त्रिपिटिकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित के अनुसार वृक्षों ने विश्व को कृतार्थ कर दिया है-

आमोदैभैरुदो मृगः किसलयोल्लासैस्त्वचा तापसः।
पुष्पैः पटचरण फलैः शकुनयो धर्मादिताश्छायया॥
स्कन्धेर्गन्ध गजास्तवयैय ग्वहिताः सर्वे कृतार्थास्ततः।
त्वं श्विकोष कृतिक्षमोडिस भवता भग्रापदोंऽन्ये द्रमाः॥ (त्रिपिटिकाचार्य)

"प्रकपन से हवा को प्रमुतिद करने वाले,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पत्तों से पशुओं को हर्षित करने वाले, वल्कल से तपस्वियों को आह्लादित करने वाले, पुष्पों से भ्रमरों को उन्मत्त बनाने वाले, फलों से पक्षियों को आनंदित करने वाले, शीतल छाया से धूप पीड़ितों को विश्राम देने वाले एवं तनों तथा गंध से हाथियों को उल्लसित करने वाले हे वृक्षों! तुमने समस्त विश्व को कृतार्थ कर दिया है।''

कुरान में वृक्ष, पशुओं एवं बागों का वर्णन

कुरान-शरीफ में लिखा है कि ''हरा पेड़ काटने वाले को खुदा माफ नहीं कर सकता।''

(हिन्दी कुरान पृ. 62)

''वही है जिसने आसमान से पानी बरसाया जिसमें से कुछ तुम्हारे पीने का है और उससे पेड़ परवरिश पाते हैं। जिनमें तुम अपने मवेशियों को चराते हो। उसी पानी से खुदा तुम्हारे लिए खेती और जैतून-खजूर और अंगूर और हर तरह के फल पैदा करता है।'' (हिन्दी कुरान श्री अहम वशीर पृ. 272)

मुकद्दस कुरान शरीफ में कई जगहों पर कुदरत (प्रकृति की हिफाजत (संरक्षण) और उसे सरसब्जो शादाब (हरा-भरा) रखने का जिक्र आया है। पैगम्बर मुहम्मद साहब प्रकृति के दुश्मनों से त्रस्त होकर मक्का से मदीने जाने के लिए विवश हो गये और जब वहां से इस्लाम धर्म का प्रचार करते हुए पुनः मक्का लौटे तो सबसे पहले अपने अनुयायियों से मुखातिब होकर फरमाया कि ''जब तुम मक्का में दाखिल हो तो पानी में जहर न घोलो, पेड़ न काटो ताकि इन्सानियत उसके साये से महरूम हो जावे और गर्मी की तापिश से इन्सानों के जिस्म झुलस जायें।

बाइबिल एवं अंग्रेजी साहित्य में वृक्षों एवं जीवों का महत्व

बाइबिल के अनुसार ''मनुष्य अपने मित्र'' (वृक्ष एवं वन्य पशुओं) के लिए प्राणों की आहुति दे दे, इससे बड़ा प्रेम का सबूत क्या हो सकता है। पेड़ों के महत्व को महाकवि हैनरी ऐब्बे ने निम्नानुसार वर्णित किया है-

वृक्षारोपण की सार्थकता का बोध हमें होता कितना।
वह जलयान का रोपण है सिंधु-पार है जिसे उतरना।।
वह मस्तुलों का रोपण है जो पालों के सबल होंगे।
वह उन फलकों का रोपण है जो जूझेंगे झंझा से।।
वह रोपण है शीतल का, शहतीरों का, धरणी और योजक का।
वृक्षारोपण जब होता है, जन्म एक जहाज का होता है।। (मूलहेनरी ऐवे)

कवि जार्ज मारिस ने वृक्षों के प्रति मार्मिक शब्दों में निम्नानुसार अपने भाव प्रकट किये हैं-

''हे लकड़हारे उस वृक्ष को मत काटो। उसकी एक शाखा का भी बाल बांका नहीं होना चाहिए। इस वृक्ष ने अपने यौवन काल में मुझे शरण दी, अब मैं उसकी रक्षा करूंगा।''

बाइबिल में वृक्षों के विषय में अनेक सुन्दर कथन मिलते हैं, जो लोकोक्ति के रूप में प्रसिद्ध हो गये हैं-

सिख धर्म का प्रकृति प्रेम

सिख धर्म के प्रवर्त्तक गुरु नानक देव जी ने कहा कि ''वायु ही जीवनदायी शक्ति है, जल ही जनक है, विशाल पृथ्वी ही सब की जननी है।'' गुरु नानक देव जी के इन शब्दों में जीवन के प्रति, जीवनदायिनी शक्ति के प्रति पृथ्वी पर हमारे सुख समृद्धि से स्रोत के प्रति आदर व्यक्त करने की भारतीय परंपरा का सार निहित है। सृष्टि के अनंतकाल से हमने प्रकृति को सर्वोपरि माना है। भारतीय परम्परा में उस पर विजय पाने एवं जीत पर गर्वोक्ति करने का कोई स्थान कभी नहीं रहा।

वृक्ष एवं संत जम्भेश्वर

गुरु जाम्भो जी ने निम्न पद्य पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में अपने शिष्य नाथ जी को सुनाया था-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हरा वृक्ष नहीं काटना, यह सब का मंतव्य।
रक्षा में तत्पर रहे, जान यही कर्त्तव्य॥

जाम्भो जी अनुयायियों के हृदयों को वृक्षों की रक्षा और जीव-दया सम्बन्धी उपदेशों से सदैव आलौड़ित करते रहे एवं पेड़ों की रक्षा हेतु विश्नोइयों ने अपना बलिदान कर दिया। विश्नोई धर्म के उनतीस नियमों में से दो निम्नलिखित हैं-

"जीव दया पालणी, रूख लीला नहीं जावे" अर्थात् हर जीव के प्रति दयाभाव रखना चाहिए और किसी हरे वृक्ष को नहीं काटना चाहिए।

वन एवं वन्य-जीवों के संरक्षण की विश्व स्तर पर घोषणा

सन् 1972 में पर्यावरण पर आयोजित विश्व सम्मेलन में स्टाकहोम (स्वीडेन) में मानवीय वातावरण संबंधी निम्नानुसार घोषणा की गई-

"मानव पर विशेष उत्तरदायित्व है कि वह वन्य-जीवों और उनके निवास स्थान को संरक्षण प्रदान करे और उनका कौशलपूर्ण प्रबंध करे। आज दोनों ही वन एवं वन्य-जीव, कई विपरीत परिस्थितियों के संयोग से घोर संकट में पड़ गये हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि प्राकृतिक संरक्षण के साथ-साथ वन्य-जीवों के संरक्षण की योजनाओं का प्रश्रय मिलना चाहिए।"

आज के भौतिक परिवर्तन युग में यह जरूरी हो गया है कि भारत की प्राचीन वैदिक अरण्य संस्कृति को पुनर्जीवित करने की जरूरत है। हवा, पानी, मिट्टी, तभी प्रदूषण रहित हो सकती हैं। जब हम वनों का विकास संवर्धन पर प्राचीन-ऋषि मुनियों द्वारा प्रदत्त नियमों का पालन करने में कृत संकल्प भावना से कार्य करें, तभी भारत अपना गौरव को पुनः प्राप्त कर सकेगा-

वेदों में ॐ द्यौ शान्तिः पृथ्वी शान्तिः आपः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिः। (अथर्ववेद)

पृथ्वी, वायु, जल सभी जीवन के धारक प्रदूषित न हों। इस प्रकार प्रार्थना की गई है। महाकवि भवभूति में गुरुतुल्य मूक एवं चेतनावान् गुरुतुल्य वनस्पतियों की वन्दना की है। यथा-

अहो एषां वरं जन्म सर्व प्राण्युपजीवनम्,
धन्या मही सहा ययेम्यो निराशाः नान्ति अर्थिनः।
तस्मै वदाम्यःतरुवे गुरुवे नमस्तुतें॥ (भवभूति)

हमने सदियों से पर्वतों, नदियों, वृक्षों, पशु, पक्षियों को वंदनीय माना है। ऐसी गौरवशाली परंपरा के धनी होने के बावजूद हमने तुच्छ स्वार्थवश प्रकृति के साथ खिलवाड़ किया है। वनों की अवैध कटाई से पर्यावरण का संतुलन बिगड़ने लगा है, देश का मौसम अंसतुलित होने लगा है, बर्फ के परतों की मोटाई कम होने लगी है, प्राकृतिक झरने सूखने लगे हैं, सर्दियों में तापमान अपेक्षाकृत अधिक गर्म रहने लगा है, तथा रेगिस्तान का फैलाव बढ़ता जा रहा है।

वन काटने से संकट आने का आभास लोगों को बहुत पहले ही हो गया था। प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने कहा था-

"हमारे जंगल कई मानों में हमारे लिए बहुत जरूरी हैं। हमें उनको बनाये रखना चाहिये। जैसा कि स्पष्ट है, हम इन्हें काफी बरबाद कर चुके हैं। यह सही है कि आबादी के बढ़ने के साथ-साथ हमें ज्यादा अनाज की जरूरत हो रही है। लेकिन यह जरूरत हमें जंगलों को बर्बाद करके नहीं बल्कि खेती को और सघन बनाकर पूरी कर सकते हैं क्योंकि जंगल हमारे राष्ट्र की तरक्की के लिए निहायत जरूरी हैं।"

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वैदिक और संस्कृत साहित्य में अरण्य संस्कृति एवं वृक्षायुर्वेद

भारतीय संस्कृति में वृक्षारोपण एवं वृक्षों की महिमा का विशेष रूप से यत्रं-तत्रं सर्वत्र उल्लेख मिलता है। श्रीमद् भागवत महापुराण में कहा है कि वृक्ष समस्त प्राणियों को जीवन दान प्रदान करते हैं। इन वृक्षों से हमें प्राणवायु (आक्सीजन) मिलती है। ये वृक्ष सभी की मनोकामना पूर्ण करते हैं। इसीलिये प्रकृति (नेचर) और पुरुष इन दोनों का अन्योश्रय सम्बन्ध हैं। भवभूति ने भी इन गुरुतुल्य वनस्पति को सर्वप्रथम प्रणाम किया हैं। यथा-

अहोएषां वरं जन्म सर्वप्राण्युप जीवनम्।
सुजनस्येन धन्य महीरूहा, यम्यो निराशा या नान्ति मर्थिनः।। (श्रीमद्भागवत)

ये वृक्ष धन्य हैं जो दूसरों के लिये इसलिये जीते है कि समस्त प्राणी जगत एवं दूसरों का भला हो। इन वृक्षों की महानता है। कि ये अमूक वृक्ष आंधी, वर्षा, धूप की प्रखरता सहते हुये भी हमारी रक्षा करते हैं। ये वृक्ष पत्तों, फूलों, फलों, जड़ों, छालो, गन्ध गोंद, चारा, लकड़ियों, कोयले, कष्ठा कला, वाद्य यन्त्रों के माध्यम से मानव एवं समस्त प्राणियों की कामना पूर्ण करते हैं। यथा-

पत्ता पुष्प फलं छाया, मूलवल्कल दारुमिः।
गन्ध निर्साल भस्मस्थि, तौक्मेः कामान् वितन्वेत।।
(श्रीमद्भागवत)

ऋग्वेद में भी ऋषियों ने वृक्षों को परमात्मा के विभिन्न गुणों का प्रतीक माना है। वृक्षों को मुख्यतः उनके रोग मुक्त करने की विशेषताओं की प्रशंसा की है। सब बैठ कर यज्ञ सामिध सामिधा, यज्ञकाष्ठ, अष्ठगन्ध, याज्ञिक सामग्री का उल्लेख किया है। ऋग्वेद के काण्ड-5.4 वनस्पतियों के सन्दर्भ में मन्त्र आये हैं। कि वनस्पतियों, जलधारायें आकाश, वन और वृक्षादित्त पर्वत हमारी रक्षा करें। ताजगी शुद्ध हवा प्रदान करें। समस्त जल धारायें प्रदूषण से रहित रहें। इसी प्रकार अथर्ववेद में जड़ी-बूटियों का उल्लेख आया है कि जन वन्य प्राणी चील, गरुड़ आदि वन्य जीव जड़ी-बूटि जानते हैं व उन औषधियों को रोगी के कल्याण हेतु आहवान करते है।

उपनिषदों एवं पुराणों के अनुसार वृक्षों में देवताओं वास है। इसलिये इनकी पूजा अर्चना का विशेष महत्व है। यथा-

"हे वृक्ष राज! तुम्हें नमस्कार है। तुम्हारे मूल में ब्रह्मा, देह में विष्णु, शाखाओं में महेश तथा पत्ते में देवताओं का वास है।"

भारत की सभ्यता एवं संस्कृति में आदिकाल से पेड़-पौधों का महत्व रहा है। प्राचीन ग्रन्थ जैसे वेद, अग्नि पुराण, अर्थशास्त्र इत्यादि में पौधों के बारे में संदर्भ प्रचूर मात्रा में प्राप्त होता है। सिन्धु घाटी की सभ्यता में पादप जन्य पदार्थों के व्यापार का प्रमाण मिला है। पौधों एवं उनसे सम्बन्धित विभिन्न शास्त्रों का सम्भवतः प्राचीनतम ग्रन्थ "वृक्षायुर्वेद" है जिसकी मूल प्रति दुर्भाग्य से आज उपलब्ध नहीं है। इस अनमोल ग्रन्थ की एक मात्र पाण्डुलिपि इंग्लैंड के बोड़लियन पुस्तकालय में है। उपलब्धता के दृष्टिकोण से आन्ध्र प्रदेश के

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

श्रीवैविल्ला रामास्वामी शास्त्री एण्ड सन्स के द्वारा प्रकाशित वृक्षायुर्वेद का तेलगू अनुवाद ही आज प्रमाणिक ग्रन्थ माना जा सकता है। मूल वृक्षायुर्वेद के रचनाकाल के बारे में निश्चित तौर पर कुछ कहना मुश्किल है। कौटिल्य रचित अर्थशास्त्र में ''गुल्मवृक्षायुर्वेद'' तथा धन्वन्तरी निघण्टु में ''भेषजविद्या'' शब्दों का उल्लेख मिलता है। ''वृक्षायुर्वेद'' नामक ग्रन्थ का वर्णन ''अग्नि पुराण'' तथा ''वृहत् संहिता'' में भी हुआ है। इसी प्रकार शार्गिधर संहिता में ''उपवन विनोद'' के अन्तर्गत वनस्पतियों के बारे में की गई व्याख्या वृक्षायुर्वेद से मिलती जुलती है। वृक्षायुर्वेद में पौधों का महत्व, पौधों के लिए उचित स्थान का चुनाव, पौधों का वर्गीकरण, बीजोपचार, वृक्षारोपण के लिए उचित समय, पौधों के रोग एवं उनके उपचार के विषय में विस्तार से चर्चा की गयी है। वृक्षायुर्वेद में उल्लिखित कुछ तथ्य अत्यन्त ही रोचक तथा विस्तृत शोध के विषय हैं। इस ग्रन्थ के अनुसार मनुष्यों की भांति पौधों में भी वात-पित्त एवं कफ प्रकृति होती है तथा तदनुसार अलग-अलग पौधे अलग-अलग प्रकार के होते हैं।

भारत में वनों के प्रकार

रामायण और महाभारत में अरण्य संस्कृति को ध्यान में रखते हुए औषधोपयोगी प्राकृत एवं रोपित वनों का उल्लेख मिलता है। विष्णु पुराण में इन वनों का उल्लेख इस प्रकार से है। तपोवन, अंगिरावन, प्राच्यवन, नैमिषारण्यवन, पंचनद, अमरकण्टक वन, सौराष्ट्रवन, दण्डकारण्य, कलिंग, औषध प्रस्थवन, कुंजवन (धनावन) कंटकवन आदि उल्लेख मिलता है। वृक्षायुर्वेद का उदय उद्यान के विकास एवं वृक्षारोपण के रूप हुआ। इसलिये जंगलों को नष्ट नहीं करना चाहिये। वनों के विनाश के कारण अनावृष्ठि, अतिवृष्ठि, भूस्खलन, जनपदोध्वस, वन्य प्राणियों का नाश एवं पर्यावरण प्रदूषण का अधिक खतरा होता हैं।

अतः भारत में वृक्षारोपण का कार्य 1500 वर्ष पुराना है। मत्स्य पुराण में वन रोपण एवं वन महोत्सव का उल्लेख मिलता है गृहस्थ आश्रम में वृक्षारोपण आवश्यक माना गया है। चाणक्य नीति में कहा गया है कि केवल फूलों वाला वृक्ष लगाना कि पर्यावरण को ऐसा आनन्दमयः और सुगन्धित बना देता है जैसा एक सुपुत्र अपने कुटुम्ब का बना देता है।

अरण्य संस्कृति में वृक्षों की महिमा

अहो एषां वरं जन्म सर्व प्राण्युप जीवनम्।
धन्या मही सहा येभ्योः निराशा यान्तिमर्थिनः॥

जो सर्व प्राणियों का उपजिब्य है, (भवभूति) जीवन है, जिनका जन्म अन्य जीवों के उपकार के लिये है, जो किसी भी याचक को निराश नहीं करते ये वनस्पतियां धन्य है-

धन्ते भरं कुसुम पत्र फलावलीनां धर्मव्यथा सहति शीतभयां सगंच।
यो देहमर्थयति चान्य सुखस्य हेतो, तस्मै बदाभ्य गुरुवे तरुवे नमस्तेः॥ (भवभूति)

जो ये वनस्पति पत्र, पुष्प, फल को धारण करते है, धर्मार्थ हेतु ही जो शीत, ताप व व्याधि को सहते हैं। जिनके शरीर का अर्थ ही दूसरों के सुख और परपकार्थ है। ऐसे गुरूतुल्य मूक वृक्षों को हमारा नमस्कार हैं।

वैदिक काल से ही संसार के प्राणियों का जीवन वनस्पतिमय औषधिमय था।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पर्यावरण सन्तुलन एवं भारतीय संस्कृति में वन संरक्षण की उपादेयता

संसार में जो भी प्राकृतिक एवं मनुष्य द्वारा प्रदत्त वस्तुयें हैं, वे सभी मिल कर पर्यावरण बनाती हैं। पारिभाषिक रूप में पर्यावरण से अभिप्राय जीवों की अनुक्रियाओं को प्रभावित करने वाली समस्त भौतिक, रासायनिक तथा जैविक परिस्थितियों का योग है। प्रकृति अनादि काल से ही मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करती आ रही है, परन्तु आज विश्व की अबाध गति से बढ़ती हुई जनसंख्या एवं भौतिकवादी प्रवृत्ति से आज प्रकृति द्वारा प्रदत्त व्यवस्था में अवांछित विदोहन के फलस्वरूप पर्यावरण प्रदूषण विश्वव्यापी समस्या बन गई है। पर्यावरण दो कारणों से मिलकर बना है :

1. जैविक कारक, 2. अजैविक कारक–

1. जैविक कारक :

(अ) पेड़-पौधे, (ब) जीव-जन्तु, (स) मनुष्य।

2. अजैविक कारक :

(अ) वायु, (ब) जल, (स) मिट्टी।

जब दोनों कारक वातावरण में सन्तुलित रहते हैं तो पर्यावरण स्वच्छ एवं नियन्त्रित रहता है। परन्तु जब वातावरण असन्तुलित हो जाता है तो यही प्रदूषण कहलाता है। वर्तमान जगत में यह एक जटिल समस्या हो गई है जो कि भयावह रूप में मानव सभ्यता को निगल जाने के लिये अपने पञ्जे बढ़ा रही है परिणाम स्वरूप प्रदूषण बढ़ता चला जा रहा है। जब कोई भी कारक इन सीमाओं का अतिक्रमण कर जाता है तो जनपदोध्वंस होने का खतरा रहता है।

वर्तमान में पर्यावरण मुख्य रूप से प्रदूषित हो रहा है जिसका मुख्य कारण प्रज्ञापराध है। प्रज्ञापराध के कारण :

1. जल प्रदूषण
2. वायु प्रदूषण
3. भूमि प्रदूषण
4. ध्वनि प्रदूषण
5. ताप प्रदूषण

यह जटिल समस्या विश्व के समक्ष है। यदि हम गंभीरता से विचार करें तो उपरोक्त सभी पर्यावरण प्रदूषण के मुख्य कारक चरक संहिता में विद्यमान अध्याय 8 में वर्णित हैं जनपदोध्वंस के मुख्य कारकों पर विचार करना होगा। चरक में भगवान आत्रेय ने अग्निवेश से कहा, ''हे अग्निवेश! प्रकृति स्थित भावों के भिन्न होते हुये भी मनुष्यों के अन्य भाव सामान्य हैं।'' प्रकृति स्थित जल, वायु, मिट्टी आदि भावों के विकृत होने से एक ही समय में एक ही समान लक्षण वाले रोग उत्पन्न होकर जनपदोध्वंस में वायु, जल, देश, काल सामान्य रूप से विकृत होते हैं। यथा–

तमुवाच भगवानात्रेयः एवमसामान्यानेमिटप्यग्निवेश प्रकृत्यादिमिभाष्वै र्मनुष्याणां येऽन्यभावाः सामान्यास्त द्वैगुण्यात् समानकालाः समान लिङ.गाश्च ब्याधयोऽभिनिर्वर्तमाना जनपद मुद् ध्वंत्सयन्तिः ये ते खल्विये भावा सामान्या जनपदेषु भवन्तिज तद्य वायुः रूदकं देशः कालइति।।

(चरक वि. अ. 3/8 प्र. सं.)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विकृत वायु प्रदूषण के लक्षण

आयुर्वेद में सामान्य एवं विशेष के सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुये उपरोक्त अजैविक कारकों- वायु, जल एवं देश (भूमि) में असन्तुलन होने से क्रमशः ऋतु विपरीत वायु चलने के कारण अत्यन्त वेग वाली वायु (हवा) अतिकर्कश, अतिशीत, अतिऊष्ण, अतिरुक्ष, अभिष्यन्दी, अतिशब्द करने वाली हवा आपस में टक्कर खाती हुई कुण्डली युक्त (भौंरों के रूप में) बुरी दुर्गन्ध युक्त वाष्प, दूषित हो जाती है।

वायुमंडल में पायी जानी वाली समस्त गैसें एक निश्चित अनुपात में होती हैं एवं उपरोक्त कारणों से इस अनुपात में असंतुलन आ जाता है। जिसके फलस्वरूप वायु प्रदूषित होकर जीवधारियों के लिये वायु घातक हो जाती हैं। हवा को प्रदूषित करने वाले पदार्थ कार्बन, विषैली गैस एवं खनिज लवण आदि हैं। कतिपय किस्मों के औद्योगिक कारखानों से निकलने वाला धुंआ जिसमें सल्फर डाई आक्साइड, ओजोन आदि मुख्य विषैली गैस एवं खनिज लवण आदि हैं। इसके अतिरिक्त मानव के दैनिक उपयोग की वस्तुयें, स्वचालित यान आदि से भी वायु प्रदूषित होती रहती है। इस प्रकार की वायु के शरीर में प्रवेश करने पर दमा, खांसी, फेफड़े के रोग, श्वास सम्बन्धी रोग एवं त्वचा के रोग हो जाते हैं। इस प्रकार दिन प्रतिदिन वातावरण में कार्बन डाई आक्साईड की मात्रा विश्व में बढ़ती जा रही है जिसके फलस्वरूप औसतन तापमान भी बढ़ता जा रहा है। यथा-

तत्र वातमेवं विविध मनोरोग्य करं विद्यात्।

(च.वि.अ. 3)

इस औद्योगीकरण युग के कारण जहाँ एक ओर मानव के लिये अनेक प्रकार की सुविधायें उपलब्ध हैं। वहीं दूसरी ओर औद्योगीकरण प्रदूषण एवं अन्य व्यावसायिक रोगों की समस्या बढ़ती जा रही हैं। विश्व की बढ़ती हुई जनसंख्या एवं उद्योगीकरण के कारण आज ऊर्जा का संकट उत्पन्न हो गया है। पेट्रोलियम पदार्थ पृथ्वी में एक सीमित मात्रा में है। आज सभी राष्ट्रों के सामने यह प्रश्न चिन्ह लगा हुआ है कि इस प्रकार के प्रकृति विदोहन से एक दिन ऐसा आ सकता हैं कि जीवकाश्मई घन, (पेट्रोलियम, कोयला) ईंधन आदि पदार्थ पृथ्वी में समाप्त होने लगेंगे जिससे मानव का जीवन अति संकटमय हो जायेगा। इस प्रकार वायु में बढ़ती हुई कार्बन डाई आक्साईड की मात्रा के कारण सन् 2030 तक धरती का तापमान 1.5 से 4.5 सेल्सियस डिग्री तक पहुँच सकता है। समुद्र का जल स्तर 1.4 से 2.2 मीटर ऊपर उठ जायेगा और फलस्वरूप जनपदोध्वंस एवं महाप्रलय हो सकता है।

जल प्रदूषण

औद्योगिक कारणों एवं बढ़ती हुई जनसंख्या के फलस्वरूप जल के विकृत होने पर जल का स्वरूप विकृत गन्ध, वर्ण, रस, स्पर्श एवं क्लेदयुक्त होने से जलचर (पानी में रहने वाले जीवधारी मछली आदि) व जलाशयों के विकृत होने पर जलीय पक्षी या तो मर जाते हैं या जलाशयों को छोड़कर भाग जाते हैं। जलाशयों का स्तर घट जाने के कारण या प्राकृतिक जलस्त्रोतों में पानी कम होने के कारण पानी पीने युक्त नहीं रहता जो कि कतिपय घातक रोगों का कारण होता है। आज देश को जल प्रदूषण का सबसे बड़ा खतरा है। भारत की कतिपय पावन नदियाँ एवं जलाशय गंगा, यमुना, काबेरी, नर्मदा आदि नदियों का जल प्रदूषण के कारण पीने योग्य नहीं समझा जाता है। हमारे देश में पानी के मुख्य साधन कुऐं, तालाब, झरने और नदियों हैं। गंगा-यमुना, गोदावरी, सरस्वती आदि नदियाँ धार्मिक रूप से पवित्र मानी गई है। इन नदियों में स्नान करने एवं जल सेवन से शारीरिक एवं मानसिक कष्ट दूर होते हैं। ऐसी हमारी मान्यता हैं यही कारण है। कि

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विशाल कुम्भ पर्व इन पावन नदियों के सङ्गम स्थलों पर होता है-

गंङ्गेश्च यमुनेश्चैव गोदाम्वरी सरस्वती।
नर्मदा सिन्धु सावित्रीकुरु में सदा॥

महर्षिचरक ने जन्मेस्त्रीन् (कर्म काण्ड) जनपदोध्वंस में जल प्रदूषण मुख्य कारण लिखा है जैसा कि उपरोक्त प्रसंग में निर्दिष्ट किया गया है। यथा-

उदकंतु खलु अत्यर्थ विकृति गन्ध वर्ण रसस्पर्श व क्लदेवहुल मनक्रान्त जल चरविहडगमुपक्षीण जलाशयमप्रीतिकर गुणंविद्यात्॥

(च.वि.अ. 8)

जल को प्राण कहा गया है, परन्तु आज 70 प्रतिशत इन पवित्र नदियों, झरनों, तालाबों एवं कुओं का पानी दिन प्रतिदिन विकृत हो रहा है जो कि स्वास्थ्य के लिये घातक है। इस दूषित जल के कारण पेचिस, मोतीझारा, हैजा, अतिसार, मलेरिया, आन्त्रशोथ, कोलाईटिस, गैस्टयाईटिस एवं वृक्क रोग होते जा रहे हैं। अनुमानतः इन बीमारियों से प्रति वर्ष लाखों की संख्या में अकाल मृत्यु होती है। जल में ये अशुद्धियां, विभिन्न लवणों जैसे सोडियम, पोटेशियम, कैल्सियम, मैग्नेशीयम, कार्बोनेट, बायोकार्बोनेट तथा सल्फेट आदि हैं। कभी-कभी जीवधारियों के मलों द्वारा विसर्जित मल मूत्र, शवदाह, उद्योगों द्वारा विसर्जित पदार्थो को नदियों में बहाने से जल प्रदूषित हो जाता है। इस प्रकार वायु एवं जल प्रदूषण के कारण अम्लीय वर्षा का भय रहता है इसमें सल्फरडाई ऑक्साईड एवं नाईट्रोजन पर आक्साईड की वृद्धि बढ़ जाती है इन दोनों गैसों का जब आक्सीकरण होता है तब अम्ल एवं नाईट्रिक एसिड बनता है। दोनों गैसों के नम हवा के सम्पर्क में आने पर अम्लीय वर्षा होती है तथा तालाबों, झीलों में रहने वाले जीव-जन्तु मुख्य रूप से मरने लगते हैं। दिन-प्रतिदिन हमारे देश में जल प्रदूषण की एक भयावह स्थिति पैदा होती जा रही है। पर्यावरणविद् आज इसके निदान खोजने एवं हल करने के उपायों के लिये चिन्तित हैं। हमें इसके निराकरण हेतु धरती पर मिट्टी और जल के स्तर को विकसित करना होगा। इसके लिये वनों को विनाश से बचाना होगा। सघन वनों की सुरक्षा एवं वृक्षारोपण क्रार्यक्रमों में तेजी लानी होगी। पर्वतीय भूभाग में जलस्रोतों की व्यवस्था की जा सके।

भूमि प्रदूषण

उद्योगीकरण के कारण एवं खानों की खुदाई के कारण पर्वतीय क्षेत्रों में सड़क निर्माण में डायनामाईट का अत्यधिक प्रयोग के कारण, बड़े-बड़े (बांध) निर्माण के कारण, भूकम्प, अति-वृष्टि एवं अनावृष्टि के कारण भूमि प्रदूषण बढ़ता जा रहा है। जिसके फलस्वरूप मृदा-क्षरण व संदको का बनाना, भूमि का रासायनिक प्रदूषण एवं उसरभूमि का निर्माण होना औद्योगिक कचरा द्वारा भूमि की उत्पादकता का नष्ट होना स्वाभविक है, लकड़ी, चारा एवं टिम्बर आदि की पूर्ति के लिये वनों का अवैध रूप से कटान करने के कारण पहाड़ों के ढलान अस्थिर हो जाने से मिट्टी का कटाव व बहाव बढ़ जाने के कारण करोड़ों टन उपजाऊ मिट्टी पानी के साथ बह जाती है। भूमि का वर्ण, गन्ध स्पर्श, विकृत होता जा रहा है। सभी थल-चर जीव जन्तु मृग, पक्षी घबड़ाकर भागने लगते हैं जोकि जनपदोध्वंस के सूचक हैं। हमें इन सभी दूरगामी विषयों पर विचार करना होगा। यथा-

देशं पुनः प्रकृति विकृत गन्धं, रसस्पर्श
क्लेदबहुल एवं क्रन्ति शब्दबहुल चाहितं विद्यात्।

(च.वि.अ. 8)

पर्यावरणविद् सुन्दरलाल बहुगुणा का कहना है कि पर्यावरण सन्तुलन के लिये धरती पर जब

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मिट्टी, जंगल और पानी बढ़ेगा तभी सही विकास कहा जायेगा। इसके लिये पृथ्वी को वनों से आच्छादित करना होगा। पूरे क्षेत्र में वनस्पतियाँ उगा कर शस्यश्यामला हरित क्रान्ति लानी होगी। जल के स्रोतों को पुनर्जीवित कर एवं मिट्टी के क्षरण को रोक कर उपजाऊ भूमि को बढ़ावा देना होगा। आयुर्वेद में वर्णित जांगल, आनूप एवं साधारण देश भूमि के अनुसार साधारण देश के विकास पर ध्यान देना होगा। जिस देश में छोटे-छोटे वृक्ष हों, वनस्पतियों का प्राचुर्य हो, छोटी-छोटी पहाड़ियाँ हो, जल स्वच्छ, निर्वाध रूप से बहने वाली नदियाँ हो, सूर्य की धूप प्रचुर मात्रा में पड़ती हो, स्वच्छ, सुगन्धित वायु निर्वाध गति से बहती हो, वह जांगल देश कहलाता है। यथा-

दशोऽल्पवारि दुर्गमनो, जांगला अल्परोगदः।
आनूपोविपरीतोऽस्मात्, समः साधारण यतः॥ (अ.हृ.)
प्रचुरोदक वृक्षों, यो निवासो दुर्लभातपाः।
आनूपो वहुदोषस्य, समा साधारणोमतः॥

(च.वि.अ. 8)

ध्वनि प्रदूषण

ध्वनि प्रदूषण जीवन के लिये निकट भविष्य में मानव का सबसे बड़ा शत्रु है। सारा विश्व इस ध्वनि प्रदूषण से चिन्तित एवं रोगग्रस्त होता जा रहा है। ध्वनि प्रदूषण से बचने के लिये ठोस उपाय करने होंगे। कल-कारखानों में कार्यरत कर्मचारियों के लिये उचित उपाय करने होंगे। मोटर वाहनों के लिये आधुनिक साइलैन्सरों की व्यवस्था पर जोर देना होगा।

ताप प्रदूषण

दिन प्रतिदिन विषैली गैसों के कारण एवं वायु प्रदूषित होने के कारण ऋतुओं में परिवर्तन एवं तापमान की धुरी में अन्तर आना ताप प्रदूषण के कारण हैं।

इसके अतिरिक्त निम्न कारणों से पर्यावरण प्रदूषण देख गया है :

1. वनों का विनाश।
2. कतिपय पेड़-पौधों की प्रजातियों का समाप्त होना।
3. प्रलयकारी बाढ़ का आना या सूखा पड़ना।
4. बंजर भूमिका प्रसार के कारण उत्पादकता में कमी आना।

भारतीय संस्कृति एवं वन सम्पदा

प्रकृति स्थित संजीव एवं निर्जीव किसी भी इकाई की कमी एवं वृद्धि से सम्पूर्ण पर्यावरण के स्वरूप में विषमता आ जाती है। भारतीय संस्कृति का प्रादुर्भाव उत्तुंग पर्वत श्रेणियों के वन प्रान्तों, हरित हिमाच्छादित घाटियों, सुरभ्य नदियों के स्वच्छ तटों एवं विशाल सागर के वनाच्छादित प्रदेशों से हुआ है मन्त्रदृष्ट्रा ऋषियों एवं साधु-सन्तों ने अपने जीवनोत्कर्ष एवं जनकल्याण की कामना से सतत चिन्तन एवं मनन कर लोक कल्याण की कामना की है। प्रकृति को ईश्वर मान कर इसकी पूजा, अर्चना एवं स्तुति का विधान बनाया है। इस प्रकार के कतिपय मंत्र वेदों, उपनिषदों एवं धर्म ग्रथों में मिलते हैं। यथा-

अहोएषां वरं जन्म, सर्वप्राण्युपजीवनम्।
धन्या मही सहायेम्यो निराशायान्तिनार्थिनः॥
आँ द्यो शान्तिः पृथ्वी शान्तिः औषधयः।
शान्तिः वनस्पतयः शान्तिः सर्वारिष्ठः शान्ति हिः॥

(अथर्ववेद)

धत्ते कुसुमपत्र फलावनीनां, धर्मब्यथा वहति
शीतमथांरुजंच यो देहमथयति चान्यसुखस्यहेतो,
तस्मैवदान्य गुरुवे तरुवे नमस्ते॥ (भवभूति)

ये चेतनावान् भूकपूण्यां वनस्पतियां सभी प्राणियों का जीवन हैं। भारतीय संस्कृति में वट (बड़), अश्वत्थ (पीपल), बिल्व (बेल), बृन्दा (तुलसी), अपराजिता, पद्म (कमल), कदली (केला), देवदारु, दूर्व्वा (दूब), कुश, शमी, अरणी, आम्र, (आम) आदि वृक्षों एवं पादपों को देव संज्ञा

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रदान की गई है। धार्मिक उत्सवों पूजा-पाठ में ये वनस्पतियां हमारे जीवन की अंग हैं। तुलसी का पौधा भारत में ही नहीं पश्चिमी देशों में भी प्रसिद्ध है। ईसाई लोग तुलसी को देव स्वरूप मानते हैं। ऐसी मान्यता है कि ईसा की कब्र पर यह पौधा उगा था। वृक्षों की महिमा को ध्यान में रखते हुये हमारे ऋषि-मुनियों ने कतिपय सुरम्य काननों, उद्यानों एवं वनों, पर्वत शैलों का उल्लेख किया है जिनके नाम इस प्रकार से हैं :

1. अंगिरावन, 2. नैमिज़ारण्यवन, 3. तपोवन, 4. गन्धमादन, 5. पंचनदवन, 6. कंटकवन, 7. दण्डकारण्यवन, 8. सौराष्ट्रवन, 9. कलिंगवन।

इन वनों-उपवनों के कटान एवं विदोहन करने पर अनावृष्टि एवं अकाल पड़ने की अधिक सम्भावना बनी रहती है। अग्नि पुराण में ऐसा उल्लेख आया है कि वृक्षों के अनैतिक रूप से कटान करने पर अतिवृष्टि एवं अनावृष्टि होकर अकाल पड़ जाता है। यथा-

क्रियते पत्र विच्छेदः सपुष्प फलनिस्तये।
अनावृष्टि भयं घोरं, तस्मिन्देशे प्रजायते॥

(अग्नि पुराणः)

भौगोलिक एवं जलवायु के आधार पर हम इनको सदाहरित वन, पर्णपाती वृक्षवन, उष्णकटिबन्धीय कण्टकितवन कह सकते हैं। कतिपय वनस्पतियों के नाम देश विशेष के आधार पर रखे गये हैं। जैसे कलिंग (कुटज), मागधी (पिप्पली), वाह्लीक (केसर), यवानी (अजवायन) सौराष्ट्री (फिटकरी), मलयज (चन्दन), केदारज (पद्माख), चीनाक (कर्पूर) आदि वनस्पतियों के नाम से हैं। वनस्पतियों का जीवधारियों से गहरा एवं अन्योन्याश्रय सम्बन्ध हैं।

ये वनस्पतियां मानव द्वारा किये गये प्रदूषण को अपनी श्वसन क्रिया से शोषण कर शुद्ध आक्सीजन प्रदान करती हैं। जब हम पेड़-पौधों को काटते हैं तो तब हम नहीं सोचते कि हम अपना जीवन नष्ट कर रहे हैं। उन असंख्य प्राणियों का जीवन नष्ट कर रहे हैं जिन पर स्वयं हमारा जीवन निर्भर करता है। पेड़-पौधे नष्ट हो गये तो जंगली जानवर और पक्षी भी नष्ट हो जाते हैं। हमारे पालतू पशु, गाय, भैंस, बैल, बकरी सभी चारे पर निर्भर करते हैं और ये जीव-जन्तु भी प्रकृति के सन्तुलन को बनाये रखने में सहायक होते हैं। आज मानव को यह सोचना होगा कि अपनी सुख सुविधा के लिये प्रकृति को विनाश से बचाना होगा। प्रकृति में एक-एक जीव, अणु, एक-एक वनस्पति प्रकृति तन्त्र के आवश्यक घटक हैं। एक भी घटक यदि बिगड़ गया तो प्रकृति स्थित पर्यावरण का सन्तुलन बिगड़ जाता है। वनस्पतियों के नष्ट कर देने से हवा, पानी, भूमि एवं नदियों का सन्तुलन बिगड़ जाता है। भूमि के क्षरण से बाढ़, आंधी, भूचाल आदि कतिपय समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं।

इसलिए वनों का हमारे जीवन से शाश्वत सम्बन्ध है। मनुष्य के आगमन से पूर्व ये वनस्पतियां विश्व के धरातल पर विद्यमान थीं। यह भी कहा जाता है कि पादप के जीवन का प्रारम्भ समुद्र से हुआ। सम्भवतः हजारों वर्ष पहले ये पौधे समुद्र में रहे होंगे। बाद में जब पृथ्वी का धरातल उनके लायक बन गया तो पौधे जमीन की ओर अग्रसर हुये। जैसी-मृदा रही व मौसम और जमीन के अनुरूप घास, पेड़-पौधे और वनस्पतियों ने अपना स्थान ग्रहण किया। इसी कारण इस औषिमिद सृष्टि मानव जीवन के धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में पूर्ण सहायक हैं। इतना ही नहीं वनस्पति विश्व में उस निराकार प्रभु का साकार रूप भी है। ये पेड़-पौधे ही मनुष्यत्व एवं देवत्व के मध्य सम्बन्धों का प्रमुख माध्यम रहा है। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने वनस्पतियों के बीच बैठकर ईश्वर का साक्षत्कार किया। हमारे सभी

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

धार्मिक कार्यक्रम यज्ञ, पूजा-विवाह, जन्म-मरण आदि कार्यों में तुलसी, बड़, पीपल, आम, चन्दन, बेल आदि कतिपय वृक्षों की महिमा वर्णित है। यही कारण है कि शस्यश्यामला हरियाली सुख एवं समृद्धि का द्योतक है।

वैदिक काल से ही भारतीय लोकोपचार एवं सांस्कृतिक परम्पराओं को मूर्तरूप देने में नदियों एवं वनों के महत्व के विषय में पूर्ण भूमिका रही है। ऋग्वेद में बारम्बार मौसम के नियंत्रण पाने, भूमि को उपजाऊ बनाने तथा मानव जीवन की एक सत्ता बढ़ाने में वनसम्पदा व वन्य जन्तुओं का महत्व दर्शाया गया है। धार्मिक ग्रन्थों में भी कतिपय ऋषि-मुनियों के आश्रमों में इस प्रकार सुरम्य प्रकृति संरक्षण एवं वन सम्बर्द्धन के उदाहरण मिलते हैं। वैदिक भारत में अधिक वृक्ष रोपण कर एक नारा ही नहीं, अपितु धर्म द्वारा अनुमति प्राप्त करना जीने की उत्तम पद्धति हैं, वेदों के अनुसार जो व्यक्ति वृक्ष लगाता है, वह सीधा स्वर्ग जाता है उपनिषदों में भी वृक्ष मनुष्य के तुल्य माना गया है। इसी कारण उपनिषदों में देव स्थान, जलस्रोतों के समीप, नगरों एवं वनों से पेड़ों के काटने पर दण्ड देने का विधान बताया है। वनों के विकास एवं रोपण संबंधी विस्तृत उल्लेख वृक्षायुर्वेद में वर्णित है। आयुर्वेदिक संहिता ग्रंथों एवं पुराणों में वन सम्पदा को एक दूसरे का पूरक और सहायक माना गया है। मनुष्य जीवन पर्यन्त स्वास्थ्य की रक्षा, रोगों की चिकित्सा, खाद्य सामग्री, रेशे, लकड़ी, पेट्रोलियम पदार्थ, काष्ठकला, वाद्य सामग्री, कृषि उपकरणों, भवन निर्माण, सेतु निर्माण, रेल-यातायात आदि के लिए विविध रूप में इन वनस्पतियों का उपयोग करता है आज विज्ञान इन प्राकृतिक ऊर्जा के अन्य स्रोतों की खोज में लगा हुआ है जिसके फलस्वरूप अन्य उपयोगी सामग्री इन पौधों से प्राप्त की जा रही है। नवीन ऊर्जा के स्रोतों की खोज में विश्व का ध्यान आकृष्ट हुआ है ब्राजील कुछ समय पूर्व से अपने वाहनों में गैसोलिन के स्थान पर एलकोहल प्रयोग करने लगा है, वहाँ पर गन्ना और कसावा की खेती बड़े पैमाने पर होती है। इन पौधों के किण्वन द्वारा इथेनोल बनाया जा रहा है जिससे वाहन चलते हैं। गन्ना, चुकन्दर, मक्का, ज्वार, गेहूँ एवं समस्त प्रकार के जैव कचरा, (और्गेनिकवेस्ट) का उपयोग इथेनोल बनाने में हो सकता है। आस्ट्रेलिया के मैनवाल्ट विश्वविद्यालय में भी इस दिशा में अनुसन्धान चल रहा है, वहाँ के वैज्ञानिकों का ध्यान यूफोर्वियालेथा, यानि सेहुण्ड नामक पौधे के सदृश हैं जिसके काण्ड से सफेद दूध सदृश तरल निकलता है इस पौधे का हाईड्रोकार्बन अंश कच्चे तेल की तरह होता है। दुनियाँ भर में यूफोर्विया की 6000 प्रजातियाँ पाई जाती हैं। इन पौधों से ईंधन के अलावा लुब्रिकेन्ट के रूप में तेल बनाया जा सकता है। इसलिये भारत में इस प्रकार नवीन उर्जा के स्रोतों की खोज में इस वन सम्पदा का उपयोग किया जा सकता है। अतः प्रत्येक नागरिक का पुनीत कर्तव्य है कि गांवों, नगरों, स्कूलों, घर, आंगनों में जीवनदायिनी वनस्पतियों को लगाना चाहिये तथा स्वयंसेवी संस्थाओं के माध्यम से वनों के महत्व के विषय में प्रत्येक नागरिक को जानकारी देनी चाहिये। इन वनस्पतियों का हमारे एवं प्राकृतिक जीवन में विशेष स्थान है।

वनस्पतियों का दैनिक एवं प्राकृतिक उपयोग

दैनिक उपयोग

1. वनस्पतियों द्वारा शुद्ध एवं स्वच्छ जलवायु प्रदान करना।
2. हवा, पानी एवं भूमि के प्रदूषण को रोकना तथा पर्यावरण को संतुलित रखना।
3. जलस्रोतों की प्रचुरता और निरन्तरता को बनाए रखना।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

4. भूमि को क्षरण मरुस्थल व बंजर से बचाये रखना।
5. ऋतुओं का प्राकृतिक संतुलन बनाये रखना।
6. वन्यजीवों की प्राण रक्षा व वंश वृद्धि को बनाये रखना।
7. वन, उपवन, नदी, तालाब, सरोवर के सुन्दर आशयों को स्थायी रखना।
8. प्रकृतिक संतुलन को बनाये रखना।

प्राकृतिक उपयोग

1. जीवन के लिए खाद्यान्न फल-शाक और पौष्टिक पदार्थ प्रदान करना।
2. अर्क, मसाले, इत्र व स्वादमय पदार्थ को प्रदान करना।
3. औषधि, विटामिन्स (जीवनीयतत्व) प्रोटीन।
4. प्राणवायु (आक्सीजन) प्रदान करना।
5. खाद्य तेल, ईंधन सुगंधित तेल, घृत, वसा आदि प्रदान करना।
6. मादक, उत्तेजक, वेदनाशामक पदार्थो को प्रदान करना।
7. पूजापाठ-हवन, यज्ञ एवं कृषि के साधनों को प्रदान करना।
8. गृह निर्माण सामग्री व वस्तु-निर्माण के साधनों को प्रदान करना।
9. कुटीर उद्योग सामग्री, पटसन, रेशम आदि वस्तुओं को सुलभ कराना।

प्रदूषण की रोकथाम में उपयोगी वनस्पतियां

1. शुद्ध हवा प्रदान करने वाले वृक्ष

(क) बट, पीपल, नीम, पाकड़, जामुन, मौलसरी एवं पञ्चक्षीरी वृक्ष ।

(ख) नीम पत्र, सफेद सरसों एवं साल के गोंद का धूपन देने से वातावरण स्वच्छ होता है।

2. प्रदूषण को रोकने वाले पादप

(क) नीम, फरहद, मौलसरी, कपूर, तुलसी, भरवा, गन्धतृण, सीतावनी, नैरपत्ती, इनके रोपण एवं धूपन से प्रदूषण में लाभ होता है।

(ख) जटामांसी, तगर, मुरामांसी, वचा कूंठ, गुग्गुलू, सर्ज, चम्पा, नागरमोथा, कर्पूर, तुलसी आदि। पत्तियाँ वायु में मिले प्रदूषण पदार्थों के सूक्ष्मकणों को सोख लेती हैं। इसलिए वृक्षारोपण का महत्व है।

(ग) पत्थर के कोयले से उत्पन्न प्रदूषण को रोकने के लिये जंगल जलेवी नामक वृक्षों का रोपण लाभदायक है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वेदों एवं संस्कृत साहित्य में वनों का धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व

हिन्दू धर्म में वनस्पति

हिन्दूओं में जिस पूजा-भाव का विकास हुआ उसमें उपयोगिता और पारलौकिकता का मेल है। हिन्दू वृक्षों और पौधों को विभिन्न देवी-देवताओं का निवास-मात्र नहीं मानते। परम्परा से वे उनकी रक्षा करने वाली शक्ति से भी परिचित रहे और यह भी जानते है कि उनको अविवेक पूर्वक नष्ट करने का परिणाम प्रदूषण होगा। अनेक पेड़-पौधों के आरोग्य वर्धक गुणों का महत्व समझा गया है तो दूसरे पौधों को धार्मिक या पारलौकिक देवी शक्ति के निवास के रूप में अनेक परम्परावादी हिन्दूओं के घरों के भीतर तुलसी का पौधा रहता है और बाहर नीम का वृक्ष। उनके उद्यान में केला, आंवला, पीपल, वट और कभी-कभी गूलर के वृक्ष होते है। स्त्रियां इस वृक्ष की पूजा करती हैं और त्यौहार के अवसरों पर पूरा परिवार पूजा करता है।

वैदिक धारणा

ऋग्वेद युग में, ऋषियों ने वृक्षों को परमात्मा के विभिन्न गुणों का प्रतीक माना है। ऋग्वेद का एक पूरा स्रोत, वृक्षों की, मुख्यतः उनकी रोगमुक्त करने की विशेषताओं की, प्रशंसा में रचा गया है। सबसे बढ़कर, यज्ञ संबंधी उपकरणों को देवता कहा गया है। (ऋग्वेद 10.17) इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण बलि-स्तंभ है जिसकी प्रशंसा एक श्लोक में गाई गई है। (ऋग्वेद 3.8) सामान्यतः 'वृक्षाः' तथा 'विरूद' पदों का प्रयोग ऋग्वेद में और बाद की संहिताओं में किया गया है। ऋग्वेद तथा आगे चल कर संहिताओं में सुप्रसिद्ध ''सोम वृक्ष'' का उल्लेख वनस्पति के रूप में बार-बार किया गया है। ऋग्वेद का पूरा नौवां मंडल के छह स्रोत इसी पौधे की प्रशंसा में समर्पित है। ऋग्वेद में वर्णित अन्य वृक्ष शाल्मली या सेमल, खदिर, शिंशपा और विभीतक है। अथर्ववेद तथा बाद की दूसरी संहिताओं में दो अन्य महत्वपूर्ण वृक्ष शमी और प्लक्ष का उल्लेख मिलता है। इक्षु अथवा ईख भी वैदिक युग में उगाया जाता था। फूल धारण करने वाले वृक्षों में पवन या पलाश, कमल व कुमुद और फल धारण करने वाले वृक्षों में अर्वरूक, कर्कन्दु, कुवल, उदुम्बर, खजूर तथा बिल्व का उल्लेख ऋग्वेद और अथर्ववेद में मिलता है। थियोडोर गोल्डस्टकर के अनुसार ''वैदिक स्रोतों में सोम भगवान् को इस पौधे और वैदिक काल के एक अत्यन्त लोकप्रिय देवता के रूप में प्रस्तुत किया गया है।''

(थियोडोरा गोल्डस्टकरः संस्कृत एंड कल्चर पृ. 21)

हिन्दूओं ने सोम की प्रार्थना, सारी गोचर सृष्टि के कर्त्ता और स्वामी कहकर की है-

त्वमिमा औषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वंगाः।
त्वमा ततन्योर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो बवर्थ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

"हे सोम! ये औषधियाँ, वे दुधारू पशु और ये जल प्रवाह तूने उत्पन्न किये हैं। तूने इस असीम आकाश में प्रकाश का विस्तार करके अंधकार को भगा दिया है।"

ऋग्वेद का निम्नलिखित स्रोत इस काल में वृक्षों का महत्व दर्शाता है-

आप औषधीरूप नोडवन्तु दयौर्वना गिरयों वृक्षकेशाः श्रृणोत न ऊर्जा पतिर्गिरः स नमस्तरीयां इषिरः परिज्मा शृन्वन्त्वापः पुरा न शुभ्राः परि स्त्रुचो बवृहाणस्याद्रे।

"वनस्पतियां, जलधाराएं, आकाश, वन और वृक्षादित पर्वत हमारी रक्षा करें। ताजगी से भर देने वाला स्वामी चंचल पवन जो आकाश के बादलों में तेजी से दौड़ता है, हमारे गान सुने और छिन्न-भिन्न पर्वतों में आगे बढ़ती स्फाटिक सी स्वच्छ जलधाराएं हमारी प्रार्थना सुने।"

(ऋग्वेद 5.41, 11-12)

अथर्ववेद वन्य पशुओं से रक्षा के लिए प्रार्थना करता है-

उदितस्त्रयों आक्रमन व्याघ्रः पुरूषों वकः।
हिरूग्धियन्ति सिन्धवों हिरूग् देवो वनसपतिर्हिस्रू नमन्तु शत्रवः॥

"तीनों-सिंह, चोर ओर भेड़िये यहां से भाग जावें जैसे जलधाराएं पर्वतों से नीचे भागती हैं और उतंग (ऊँचे) वृक्षों की जड़े जैसे गहरे धंसती जाती है, हमारे शत्रु वैसे ही परास्त हों।"

(अथर्ववेद 4.31)

ऋग्वेद में वनस्पतियों की वृद्धि के लिए प्रार्थना की गई है-

वनस्पते शतवल्शी विरोह सहस्रवल्शा वि वयं रूहेम।
यं त्वामयं स्वाधितिस्तेजमानः प्रणिनाय महते सौभगाया॥

"पैनी धारवाली कुल्हाड़ी से कल्याण हेतु लाई गई, हे वनस्पति! तू अपनी सैकड़ों शाखाओं से ऊपर की ओर चढ़ जिससे हम भी सहस्रों शाखाओं में बढ़ सकें।" (ऋग्वेद 3.8.11)

अथर्ववेद के अनुसार वृक्ष वनों के स्वामी है और मनुष्य को पाप से बचाते है-

अग्निं बूमो वनस्पतीनोषधीरूत वीरूधः।
इन्द्रं वृहस्पति सूर्य ते नो मुंचन्त्वंहसः॥

"हम परमात्मा की शरण में जाते हैं, हम वन देवता, वृक्षों, पौधों और औषधियों की शरण में जाते है, हम इन्द्र, वृहस्पति और सूर्य की शरण में जाते हैं। ये सब हमें पाप से छुडावें।"

(अथर्ववेद 11.6.1)

वेद कालीन दृष्टाओं ने पौधों और जड़ी-बूटियों के मधुर एवं शक्तिवर्धक होने के लिए परमात्मा की स्तुति की है-

मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नों भवत्वन्तरिक्षम्
क्षत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तों अन्वैनं चरेम॥

(ऋग्वेद 4.57.3)

"हमारे लिए वनस्पतियां और औषधियां मधुर हों, अंतरिक्ष जल एवं बीच का क्षेत्र मधुर हो अन्न व वनस्पतियों को उत्पन्न करने वाला मधुर हों। हर तरह के रोग और कष्ट से मुक्त होकर हम तेरा अनुसरण करें।"

वैदिक ऋषि पौधों व औषधियों की आरोग्यदायिनी शक्ति का आह्वान करते हैं-

वणः सुवर्णा, आंगिरसीर्दिव्य याः रधटो विदुः,
वयासु हंसा या विदुर्यश्य सर्व पतत्रिणः।
भुगा या विदुरोषधीस्ता अस्मा अवसे हुबे॥

(अथर्ववेद 8.7.24)

"महर्षि अंगिरस ने जिन जड़ी-बूटियों का वर्णन किया है, चील व गरूड़ को जिनका ज्ञान है

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तथा अन्य सब पक्षी जिनसे परिचित हैं उन सब (औषधियों) का इस रोगी के कल्याण हेतु मैं आह्वान करता हूँ।''

मनुष्य के दीर्घायु के लिए अथर्ववेद में जड़ी-बूटियों और वनस्पतियों की शक्ति का वर्णन किया गया है-

उज्जिहीध्वं स्तनयत्याधि क्रन्दत्यौषधीः।
यदा वः गृशनिमातरः पर्जन्यो रेतसावति॥
तस्यामृतस्येमं बलं पुरूषं पाययामसि।
अथो कृणोभि भेषजं यथासच्छतहायतः॥

(अथर्ववेद 8.7.21.22)

''हे वनस्पति! मेघ गरज रहे हैं। पर्जन्य की तुझ पर कृपा दृष्टि हो रही है। इस अमृत की शक्ति हम मनुष्य को पीने के लिए देते हैं और ऐसी औषधि बनाता हूँ जिससे वह शतायु हो।''

उपनिषद काल के ऋषियों ने वनस्पतियों में परमात्मा के अस्तित्व के भी दर्शन किये हैं। वे कहते हैं-

''जो परमात्मा इस ब्रह्माण्डं, जल व अग्नि में व्याप्त है वही वृक्षों और औषधियों में भी निवास करता है''।

''ब्राह्मण ज्ञान-चक्षुओं से उसी एक मात्र (परमात्मा) के दर्शन ब्राह्मण से लेकर वनस्पतियों तक में सर्वत्र करता है।''

(चुलिका उपनिषद 6.11.1-2)

काथक उपनिषद् सम्पूर्ण संसार को एक अश्वत्थ वृक्ष मानता है। छान्दोग्य उपनिषद में उसका उदाहरण एक संजीव सत्ता के रूप में दिया गया है-

अस्य सोमय महतो वृक्षस्य यो मुलेडभ्यान्हन्याज्जीवन स्त्रवेद्यो मध्ये भ्याहन्याज्जीवन् स्त्रवेद्योऽ ग्रेभ्याहन्याज्जीवन स्त्रवेत्।
से एषं जीवनात्मनानुग्रभूत पपीयमानो मोदमानस्तिष्ठंति॥
अस्य यवेकांशाखां जीवो जहात्यथ सा शुष्यति।
द्वितीयां जहात्यथ सा शुष्ययति॥
तृतीया जहात्यथ सा शुष्यति।
सर्व ज्हाति सर्वः शुष्यति॥

''जब कोई वृक्ष की जड़ को काटता है तो उसमें से (रक्त) स्राव होता है क्योंकि यह जीवित है। जब कोई इसके मध्य को काटता है तो उसमें से (रक्त) स्राव होता है क्योंकि वह जीवित हैं। जब कोई उसके सिर को काटता है तो उसमें से (रक्त) स्राव होता है क्योंकि वह जीवित हैं। इस तरह उसमें आत्मा का निवास होने से वह आनन्द पूर्वक खड़ा रहता है। फिर, यदि किसी शाखा से प्राण निकल जाते हैं तो वह सूख जाती है, दूसरी शाखा से प्राण निकल जाते है तो वह भी सूख जाती है। यदि पूरे वृक्ष के प्राण निकल जाते हैं तो वह मुरझा जाता है या बिल्कुल सूख जाता है। अतः हे प्रिय, तुम इस पर ध्यान दो।'' (छांदोग्य उपनिषद 6.11.1-2)

एक अन्य उपनिषद् में वृक्षों को (जैसा कि नीचे बताया गया है) मनुष्य के समकक्ष माना गया है-

यथा वृक्षा वनस्पतिस्तथैव पुरूषोऽमृषा।
तस्य लोमानि पर्णानित्वगस्योस्पाटिका बहिः॥
त्वच एवास्य रूधिरं प्रस्यन्दित्व उत्पटः।
तस्मात् तदातृष्णात् प्रेति रसो वृक्षादिवाहतात्॥
मांसान्यस्य शकराणि किनाटं स्नाव तत् स्थिरम्।
अस्थीन्यन्यरतो दारूणि मज्जा मज्जोपमा कृता॥

''जंगल के राजकुमार वृक्ष के ठीक समान, यथार्थ में, मनुष्य है। उसके केश पत्ते हैं, उसकी त्वचा वृक्ष की छाल के समान है। पेड़ से जैसे रस का स्राव होता है वैसे ही उसकी त्वचा से रक्त बाहर निकालता है। पेड़ के काटे जाने पर और मनुष्य के घायल होने पर ऐसा होता है। मांस की तुलना काष्ठ से की जाती है और (स्नायु) भीतरी छाल है। काष्ठ

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

के भीतर का सार उनकी अस्थियाँ है और मज्जा है पेड़ के भीतर का गूदा या गोंदा।''

(बृहदारण्यक उपनिषद् 3.9.28)

मुंडकोपनिषद में परमात्मा को वृक्षों को उत्पन्न करने वाला कहा गया है-

अतः समूद्रा गरयश्च सर्वेड।
स्मात्स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः॥
अतश्च सर्वा औषधयो रसश्च।
येनेषा भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा॥

(मुंडकोपनिषद 2.1.9)

''उसी (परमात्मा) से सब समुद्र और पर्वत उत्पन्न होते है। हर प्रकार की नदियां उसी से निकलती हैं। पौधे अपने पोषक रसों सहित उससे ही पैदा हुए हैं जिसके द्वारा वे सब में अन्तरात्मा बनकर रहते हैं।''

उन्नीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिक चार्ल्स, डार्विन, सर जगदीश चंद्र बोस और राउल फ्रांस द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त, भारतीय ऋषियों को बहुत पहले से ज्ञात थे। उन ऋषियों का पेड़ पौधों से गहरा प्रेम और उन पर गहरी श्रद्धा थी। भारतीय ऋषियों के संबंध में एच. डब्लू. विल्सन कहते है-

''वे (हिन्दू) पौधे के आन्तरिक एवं बाह्य, दोनों तरह की विशेषताओं का ध्यान पूर्वक अध्ययन करते थे और उन्होंने वनस्पतियों को विस्तृत रूप में सूचि-बद्ध किया है जिसमें उन्होंने वनस्पतियों के विशेषता-सूचक नाम दिये हैं और विवेक पूर्वक उनके उपयोग भी बतलाए है।''

(मिलः हिस्ट्री ऑफ इंण्डिया खंड-2 पृ. 97)

सिन्धु घाटी की सभ्यता से पहले का प्राचीन भारतीय इतिहास वनस्पतियों के सम्बन्ध में वैदिक के इन विचारों की पुष्टि करता है। दीवालों पर उत्कीर्ण पाये गये वृक्ष इस बात का समर्थन करते है कि सिन्धु घाटी की सभ्यता के दौरान वृक्ष पूजा प्रचलित रही है। उस काल के सिक्कों पर भी पेड़-पौधों की आकृतियां चित्रित है। सिन्धु घाटी के लोग पीपल वृक्ष की पूजा करते थे और उसके पत्तों को सुख-समृद्धि का दाता समझते थें यह इस बात को प्रमाणित करता है कि ई.पू. तीसरी या चौथी सहस्त्राब्दि में भी वृक्ष पूजा प्रचलित थी जबकि उच्च कोटि की हड़प्पा संस्कृति का अस्तित्व था। सिन्धु के लोग वृक्षों को दयामय देवता मानते थे। वृक्ष उर्वरता के भी प्रतीक माने जाते थे। वासुदेव शरण अग्रवाल कहते है-

''हड़प्पा से प्राप्त एक मोहर में एक स्त्री के गर्भ से पौधे को जन्मते हुए दिखाया गया है जो उर्वरता का स्पष्ट प्रतीक है।''

(वासुदेव शरण अग्रवालः इंडियन आर्ट पृ. 25)

महाकाव्यों और पुराणों की दृष्टि

महाकाव्यों और पुराणों के काल में वनस्पति के संबंध में हिन्दू विचारधारा और विस्तृत हुई। महाभारत में कहा है-

धानानामपि वृक्षाणामाकाशोडस्ति न संशयः।
तेषां पुष्पफलप्यक्तिर्नित्यम् समुपपद्यते॥
उष्मतौश्लायते वर्ण त्वक् फलं पुष्पमेव चे।
म्लायते शीर्यते चापि स्पर्शस्तेनात्र विद्यते॥
वाय्वग्न्यशनि निर्घाषैः फलं पुष्पं निशीर्यते।
श्रोत्रेण गुह्यते वृक्षं सर्वतश्चाव गच्छति॥
नः यहष्टश्च माग्रार्तस्त तस्मात्यश्चन्ति पादपाः।
पुण्यापुन्यस्तथा गन्धेंपैश्च विधि धअपि॥
आरोगाः पुष्पिताः सन्ति तस्माज्जिघ्रन्ति पादपः।

''वृक्ष यद्यपि ठोस होते हैं किन्तु उनमें आकाश के सद्गुण रहते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है। जीवित होने के कारण वे फूलते और फलते है। वे उष्णता का अनुभव करते है और सूख जाने पर वे नीचे गिर पड़ते है। इससे सिद्ध होता है कि उनमें

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्पर्श ज्ञान भी होता है। हवा, अग्नि, ध्वनि तथा बादलों के गरजने के असर से पेड़ों के फूल झड़ जाते है। लताएं वृक्षों से लिपट जाती हैं और नीचे से चोटी तक बढ़ सकता। इससे स्पष्ट होता है कि वृक्षों में देखने की शक्ति होती है। अच्छी और बुरी गंध पेड़ की वृद्धि पर प्रभाव डालती है। सुवास से उनमें फूल खिलते हैं और दुर्गन्ध उन्हें पीड़ित करती है। इससे पता चलता है कि वृक्षों में सूंघने की शक्ति भी होती है।''

(महाभारत, मोक्ष धर्म पर्व 1.4.8. 10-4)

ऐसा विश्वास किया जाता है कि वृक्षों को भी दुःख और सुख की अनुभूति होती है। पुनः महाभारत कहता है-

पादैः सलिलपानाच्च व्याधीनां चापि दर्शनात्।
व्याधि प्रतिकयित्साच्च विद्यते रसनं द्रुमें।।
सुखदुःखयोच्च ग्रहणच्छिन्नस्य च विरोहणात्।
जीवं पश्यामि वृक्षाणामचैतन्यां न विद्यते।।

''वृक्ष जड़ो से जल ग्रहण करते हैं। यदि उन्हें कोई रोग होता है तो उन पर दवा छिड़क देने से ठीक हो जाता है। इससे मालूम होता है कि उनमें रसेन्द्रियता होती है। वृक्ष जीवित हैं और दूसरों की तरह उनमें भी प्राण हैं, क्योंकि काटने से उन्हें दुःख की अनुभूति भी होती है। एक शाखा काट देने से नई शाखा उत्पन्न हो जाती है।

(महाभारत मोक्ष धर्म पर्व 18, 15-17)

रामायण में भी अनेक स्थलों पर वनस्पतियों का सौन्दर्य और प्राचुर्य बतलाया गया है तथा वृक्षों एवं वनों का कवित्वमय वर्णन मिलता है। वृक्षों को पूजनीय और सौभाग्यदायक माने जाने के प्रमाण मिलते हैं। सीता हाथ जोड़ कर न्याग्रोध वृक्ष की प्रार्थना इस प्रकार करती है-

न्याग्रोध समुपागम्य वैदेही चाभ्यवन्दत।
नमस्तोऽस्तु महावृक्ष पारयेन्मे पतिर्व्रतम्।।
कौशल्यां चैव पश्येम सुमित्रां चयशस्विनीम्।
इति सीतांजलि कृत्वा पर्यगच्छन्मनस्विनी।।

''हे शक्तिशाली वृक्ष! मैं तुझे प्रणाम करती हूं। मेरे पति का प्रण पूरा कराने की दया करो, जिससे मैं अपनी पूजनीय सास कौशल्या और सुमित्रा के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त कर सकूँ।''

(रामायण, अयोध्याकाण्ड 53.24-26)

वेदादि धर्म ग्रंथों में पीपल के वृक्ष की पूजा को अत्यधिक महत्व दिया गया हैं। भागवद्गीता में उसे स्वयं भगवान् कृष्ण का अवतार कहा गया है। कृष्ण कहते हैं-

समस्त वृक्षों में मैं अश्वत्थ (पीपल) हूँ।

(गीता 10.26)

इस संसार की माया की तुलना गीता में पीपल के वृक्ष से की गई है-

अधश्चोर्ध्व प्रसृतास्तस्य शाखा ग्रणप्रबन्द्ध विषय प्रवालाः।
अधश्च मूलान्यतुसंततानि कर्मानुबंधीनि मनुष्यलोके।।

''इस वृक्ष की शाखाएं ऊपर और नीचे की ओर फैली हैं। त्रिगुणात्मिका माया जिनका पोषण करती है और जिनमें विषय भोग रूप कोपलें और वासना रूपी जड़े नीचे और ऊपर फैली हुई मनुष्य को कर्मो के अनुसार बाँधती है।'' (गीता 15.2)

गोभिल के गृह्य सूत्र में वे स्थान बतलायें गयें हैं जहां विभिन्न पौधों को लगाया जाय या न लाया जाय। गोभिल के मतानुसार ऐसा करना किसी व्यक्ति के लिए शुभ या अशुभ दोनों हो सकता है-

वर्जयेत् पूर्वतोऽश्वयं प्लक्षं दक्षिणतस्तथा।
न्यग्रोधमपराद् देशादुस्ताराच्चाप्युदुम्बरम्।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अश्वस्थादग्निमयं विद्यात् प्लक्षद् ब्रूयात् प्रभायुकान्।
न्यूग्रोधाच्छस्त्र सम्पीड़ाभक्ष्यामयमुदुम्बरात्॥

(गोभिल गृह्य सूत्र 4.7.22-22)

"अपने मकान के पूर्व की ओर पीपल का वृक्ष, दक्षिण की ओर प्लाक्ष, पश्चिम में न्याग्रोध और उत्तर में उदुम्बर नहीं लगाना चाहिए। हमें कहना चाहिए कि पीपल जला देता है, प्लाक्ष से निवासियों की अकाल मृत्यु हो जाती है, न्याग्रोध शत्रुओं द्वारा सशस्त्र आक्रमण का तथा उदुंबर नेत्र रोग का कारण होता है।"

पद्म पुराण (सृष्टि खंड 59.7) में यह वर्णन किया गया है कि जिस घर में तुलसी का पौधा रहता है उसके निवासी भाग्यशाली होते है। ब्रह्मवैवर्त पुराण (प्रकृति खंड 21.37) में कहा गया है कि जिस स्थान पर तुलसी का पौधा लगाया गया है वह स्थान पवित्र एवं प्रायः देवताओं का निवास स्थल माना जाता है। हिन्दू परिवारों में तुलसी के पौधे की पूजा के अनेक कारण हैं-

तुलसीयस्य भवने प्रत्यहं परिपूज्यते।
तद्गृहंनोसर्पन्ति कदाचिद्यमकिङ्कराः॥

"हिन्दू परिवारों में तुलसी के पौधे की पूजा ज्यादातर स्त्रियों के द्वारा की जाती है क्योंकि उस पौधे को पवित्र माना जाता है, वन दाम्पत्य जीवन को दीर्घायु देता है तथा औषधीय गुणों से परिपूर्ण होता है। यह विश्वास भी किया जाता है कि जिस गृह में प्रतिदिन तुलसी की पूजा की जाती है उसमें यमदूत प्रवेश नहीं करते।" (स्कंद पुराण 21.66)

तुलसी का पौधा चारों ओर लगाया जाता है और उसकी पूजा की जाती है, विशेषताः कार्तिक महीने में। तुलसी को देवता का सम्मान मिलता है क्योंकि उसका संबंध विष्णु और लक्ष्मी से माना जाता है। तुलसी का पौधा अपने धार्मिक उपासकों के लिए स्वर्ग के द्वार खोलने वाला है और जो उसे उखाड़ डालते है वे मृत्यु के पश्चात दंड के पात्र होते है। उसके आरोग्यवर्धक महत्व को स्वीकार किया गया है और घरों में आज भी मरणोन्मुख व्यक्ति के मुख में गंगा जल और तुलसीदल डालने की प्रथा है।

एक दूसरा अत्यन्त प्रसिद्ध वृक्ष रूद्राक्ष है जिसके फलों को अति पवित्र माना जाता है और जिसके बीजों से भजन करने की माला बनती है। उनके अनेक मुख या पक्ष होते हैं जिनमें से प्रत्येक का एक विशेष अर्थ या महत्व होता है। एक-मुखी रूद्राक्ष दुर्लभ है और इसे पाने वाला शक्ति, आनन्द और सुख भोगता है।

हिन्दू लोग वृक्षों को ईश्वर के विभिन्न रूपों को निवास-स्थान मानते है। इस विश्वास से जड़ी अनेक कथाएं प्रचलित हैं। पद्म पुराण के उतर कांड में एक ऐसी ही कथा है। एक समय भगवान शिव अपनी प्रिय पार्वती के साथ एकांत स्थान में बैठे थे। अन्य सभी देवताओं ने मिल कर शनि देवता से कहा कि आप ब्राह्मण का वेश धारण कर इस स्थान पर जाएं। इस तरह बाधा उत्पन्न किये जाने से पार्वती कुपित हो गई और उन्होंने अग्नि को भेजने वाले देवताओं को श्राप दिया- "तुम सब देवता वृक्ष बन कर जन्म लो।" इस श्राप के प्रभाव से भगवान ब्रह्मा ने पलाश वृक्ष के रूप में, भगवान विष्णु ने पीपल के रूप में और रूद्र देवता ने वट वृक्ष के रूप में जन्म लिया।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वृक्षारोपण का महत्व एवं वराहमिहिर संहिता में वर्णित वृक्षों का महातम्य

पद्म पुराण (सृष्टिखंड वृषायुवेर्दः) में भीष्म एवं विष्णु संवाद के प्रसंग में अश्वत्थ रोपण से पुत्र सहस के लाभ प्रदर्शित हैं। अश्वत्थ वृक्ष के लगाने से व्यक्ति धनी होता है। अशोक शोक का नाश करने वाला है। प्लक्ष वृक्षों के रोपण से यज्ञ करने का फल मिलता है। क्षीरी वृक्षों के रोपण से आयु बढ़ती है जो व्यक्ति जम्बु वृक्ष का रोपण करता है उसे कन्यादान का फल मिलता है। दाडिम के रोपण करने वाले को भार्या प्राप्ति होती है अश्वत्थ रोगनाशक है। पलाश ब्रह्म को प्राप्त करने वाला है। जो विभीतक का रोपण करता है वह परातत्व को प्राप्त करता है। अंकोल के लगाने से कुल की वृद्धि होती है। खदिर लगाने से रोग दूर होता है। निम्ब-प्ररोहण से सूर्य का तेज प्राप्त होता है। श्री वृक्ष (बिल्व) में शंकर एवं पाटला में पार्वती निवास माना जाता है। शिंशपा में अप्सरायें तथा कुन्द में गन्धर्व, तिन्तिडीक में दास वर्ग तथा दस्यु रहते हैं। चन्दन एवं पनस पुण्यप्रद एवं श्री चम्पक सौभाग्य को देने वाला एवं द्राक्षा सर्वाग सौर्य माना गया है।

तुलसी के अद्यतनीन विज्ञान द्वारा वाताणुनाशक (एन्टीविरल एक्टीविटी) का ज्ञान प्राचीनों को पूर्णतया था इसी हेतु प्रत्येक गृह में तुलसी नौ प्रकार से पूजित रही है-

दृष्टा स्पृष्टाऽधता ध्याता कीर्तिता नाभतः स्तुता।
रोपिता सेचिता नित्यं पूजिता तुलसी शुभा॥
नवधा तुलसी भक्ति ये कुर्वन्ति दिने दिने।
युगेकोटि सहस्त्राणि तावन्ति सुकृतं मुदे॥

इस प्रकार वृक्षारोपाण का पर्यावरण शुद्धि में प्राचीन एवं नवीन दोनों दृष्टिकोण से परम महत्व है।

वराहमिहिर ने घर के समीप निम्ब, अशोक, पुन्नाग, शिरीष एवं प्रियंगु के वृक्षों के रोपण की अभिशंसा की है। अजात शाखा वाले वृक्षों को शिशिर में जात-शाखा को हेमन्त में, सुगन्ध वृक्षों को वर्षा में लगाने का विधान है। रोपित वृक्षों को ग्रीष्म ऋतु में सायं-प्रातः शीत में एक दिन पश्चात् और वर्षा ऋतु में भूमि सूखने पर सिंचन करना चाहिये।

आनूप (जल भूयिष्ठ) देशज वृक्ष

वराहमिहिर (54/10.11) ने 29 आनूप देशज अन्तर्गत जम्बू, वेतस, वानीर, कदम्ब, उदुम्बर, बिजौरा, नीम्बू, लकुच, दाडिम, वन्जुल, तिलक, पनस, तिमिर एवं आम्रातक की गणना की है।

भूमिस्थ जल-ज्ञानार्थ वृक्षों का महत्व

पर्यावरण विज्ञान के मुख्य घटकों में जल का अप्रतिम महत्व है। वराह-मिहिर ने अपनी बृहत्संहिता (अध्याय 54) में "दकार्गल विज्ञान (हायड्रोलाजी)" की चर्चा की है। इसके प्रवर्त्तक सारस्वत मुनि कहे गये हैं। यह वह विज्ञान है जिसके द्वारा भूमिगत जल का ज्ञान किया जाता है। जिस प्रकार पुरुषों के अंगों में सिराये होती हैं उसी तरह भूमि में ऊँची-नीची सिरायें हैं। आकाश से केवल एक स्वाद वाला जल पृथ्वी पर गिरता है। किन्तु वही जल पृथ्वी की विशेषता से तत्तव स्थान में अनेक प्रकार के रस एवं स्वाद वाला हो जाता है। इसी प्रकार भूमि के वर्ण एवं रस के समान जल के रस एवं वर्ण परीक्षणीय हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जल की स्वायत्ता के परिचायक विविध वृक्ष

वराहमिहिर ने वेतस, जम्बू, उदुम्बर, अर्जुन, निर्गुण्डी, बदरी, पलाश, बिल्व, काकोदुम्बरिका, श्योनाक, विभीतक, सप्तपर्ण, कोविदार, करञ्ज, मधूक, तिलक, कदम्ब, ताल, नारिकेल, कपित्थ, अश्मन्तक, हरिद्रतरु, वीरण, दूर्वा, त्रिवृत, दन्ती, सूकरपादी, आम्रातक वरुण, भल्लातक, तिन्दुक, अंकोल, पिण्डार, शिरीष, भजन, परुषक, अशोक, अतिबला, कण्टकारी, खर्जूर, कर्णिकार श्वेतपुष्प, पीलु, करीर, रोहीतक, पीपल, धत्तूर, शमी, न्यग्रोध, कमल, गोक्षुर, उशीर गुन्द्रा, मालझन काश, कुश, नलिका, नल, छत्र, हस्तिकर्णी, शतपत्र, नीप, नक्तमाल, सिन्दुवार, मोक्षक, शर, निम्ब वांझ आदि के द्वारा भूमिस्थ जल के जानने की विधि का निर्देश किया है।

विविध वृक्ष द्वारा भूमिस्थ जल ज्ञानार्थ तालिका

1	2	3	4
वृक्ष	**दिशा**	**जल प्राप्ति की गंभीरता का प्रमाण**	**स्तरक्रम (उत्तरात्तर)**
1. वेतल	तीन हाथ पश्चिम	आंधा पुरुष गहराई (पुरुष प्रमाण -120 अंगुल)	पाण्डु वर्ण मण्डूक-पीत, मृतिका-पाषाण-जल
2. जम्बू	पूर्वस्थ बांगी से तीन हाथ दक्षिण	दो पुरुष नीचे जल (चिरकालस्थायी बहुतोय)	ऊर्ध पुरुष पर मत्स्य-पारावतसद्दश पाषाण-नील मृत
3. उदुम्बर	तीन हाथ पश्चिम	ढाई पुरुष नीचे	अर्द्ध पुरुष पर श्वेत सर्प अजनोपम अश्म-सुजला सिरा
4. अर्जुन	तीन हाथ उत्तर में वल्मीक	साढ़े तीन पुरुष नीचे (अमित जल)	अर्द्ध पुरुष पर गोधा-धूसर-कृष्णमृत-पीत-सित सिकता
5. निर्गुण्डी	वल्मीक युक्त तीन हाथ दक्षिण दिशा में	सवा दो पुरुष नीचे (अशोष्य जल)	अर्द्ध पुरुष पर रोहित मत्स्य-कपिला-पाण्डुरा मृत-सिकता शर्करा
6. बदरी	पूर्ण वल्मीकता पर तीन हाथ पश्चिम दिशा में	तीन पुरुष नीचे	अर्द्ध पुरुष पर गृहगोधिक
7. सपलाश बदरी	तीन हाथ पश्चिम दिशा में	तीन पुरुष नीचे	एक पुरुष पद दण्डुभ (निर्विष सर्प)
8. सबिल्व उदुम्बर	तीन हाथ दक्षिण दिशा में	तीन पुरुष नीचे	अर्द्धपुरुष पर कृष्ण मण्डूक
9. काकोदुम्बर	समीपस्थ वल्मीक के सवा तीन पुरुष नीचे पश्चिम दिशा में	साढ़े तीन पुरुष नीचे	आपाण्डु पीत मृत्गोरसवर्ण पाषाण आधा पुरुष पर कुमुदाम मूषक

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

1	2	3	4
10. कम्पिल्लक	तीन हाथ पूर्व दिशा में	सवा तीन पुरुष नीचे दक्षिण सिरा	नील उत्पलवर्ण मृत्-कपोताभ मृत्-एक हस्त नीचे अजगंध मत्स्य सक्षार जल
11. विभीतक	समीप दक्षिण दिशा में वल्मीक से 2 हाथ पूर्व से पश्चिम दिशा में वल्मीक हो तो उस वृक्ष से	डेढ़ पुरुष नीचे उत्तर दिशा में सवा चार पुरुष नीचे सिरा	एक पुरुष नीचे-श्वेत विश्व भरक-कुंकुमाभ अश्म पश्चिम दिग्वाही सिरा (वर्षत्रय में जलनारा)
12. कोविदार	ईशान कोण में कुशायुक्त श्वेत वल्मीक	दोनों के मध्य में साढ़े पांच पुरुष नीचे	एक पुरुष नीचे कमलवर्ण सर्प/रक्तमृत-कुरुविन्द पाषाण (प्रभूत जल)
13. सप्तपर्ण	वल्मीक से युक्त वृक्ष से एक हाथ उत्तर	पांच पुरुष नीचे (जल)	आधा पुरुष नीचे हरित मण्डूक-हरितालाभ भू-मेघवत् पाषाण-उत्तर-वाहिनी सिरा (मधुर जल)
14. करंज	दक्षिण दिशा में वल्मीक से दो हाथ दक्षिण	तीन पुरुष नीचे	आधा पुरुष नीचे कच्छप-पूर्ववाहिनी सिरा-उत्तर-वाहिनी सिरा-हरित अश्म-जल
15. मधूक	उत्तर वल्मीक हो तो वृक्ष से 5 हाथ पर पश्चिम दिशा में	साढ़े आठ पुरुष नीचे (जल)	एक पुरुष नीचे पर सर्प धूम्राभ पृथ्वी-कुलत्थवर्ण पाषाण-सफेना पूर्ववाहिनी सिरा
16. तिलक	वृक्ष के दक्षिण कुश एवं दूर्वायुक्त स्निग्ध वल्मीक हो तो उस वृक्ष से 5 हाथ पश्चिम	पांच पुरुष (नीचे)	पूर्ववाहिनी सिरा
17. कदम्ब	वृक्ष से पश्चिम में वल्मीक हो तो वृक्ष से 3 हाथ दक्षिण	पौने छह पुरुष नीचे (जल)	उत्तरवाहिनी सिरा-1 पुरुष नीचे स्वर्णनिम मण्डूक-पीत मृत्
18. ताल	छः हाथ पश्चिम दिशा	चार पुरुष नीचे (जल)	दक्षिण वाहिनी एक सिरा
19. नारिकेल			

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

1	2	3	4
20. कपित्थ	वृक्षसे दक्षिण वल्मीक हो तो उसे 7 हाथ उत्तर दिशा में	पांच पुरुष नीचे (जल)	1 पुरुष पर कुर्वुरक सर्प-कृष्ण मृत्-पश्चिम वाहिनी सिरा-उत्तरवाहिनी सिरा
21. अश्मन्तक	वृक्ष के वाम में बदरीवृक्ष या वल्मीक हो तो उस वृक्ष से 6 हाथ पर उत्तर दिशा में	तीन पुरुष नीचे (जल)	1 पुरुष नीचे कच्छप-धूसर पाषाण-ससिकता मृत-दक्षिण सिरा-ईशान कोण की सिरा
22. हरिद्र	वृक्ष के वाम और वल्मीक और उस वृक्ष से हाथ पूर्व दिशा में	साढ़े पांच पुरुष नीचे (जल)	1 पुरुष नीचे नीलसर्प पीतमृत् मरकताभ अश्म, कृष्णा भू-पश्चिम सिरा-दक्षिण सिरा
23. वीरण एवं	जल रहित देश में	एक पुरुष नीचे (जल)	-
24. मृदु दूर्वा			
25. भार्गी, त्रिवृत् दन्ती	दो हाथ पर दक्षिण दिशा में	तीन पुरुष नीचे (जल)	-
26. सूकरपादी, लक्ष्मणा, नवमौलिका			
27. तिलक, आम्रातक वरुण	वल्मीक से युक्त होने पर	साढ़े चार पुरुष नीचे (जल)	-
28. भल्लातक, बिल्व तिन्दुक, अंकोल पिण्डीर, शिरीष, ऊंजन, परूषक, वन्जुल अतिबला	इनसे 3 हाथ उत्तर दिशा में		
29. खर्जूरी (द्विशिरस्का)	वृक्ष से दो हाथ पश्चिम दिशा में	तीन पुरुष नीचे (जल)	

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

1	2	3	4
30. कर्णिकार (यवेतपुष्प)	वृक्ष से दो हाथ दक्षिण दिशा में	दो पुरुष नीचे (जल)	
31. पलाश			
32. पीलु	ईशानकोण में वल्मीक हो तो उस वृक्ष से साढ़े चार हाथ पश्चिम दिशा में	पांच पुरुष नीचे उत्तरवाहिनी सिरा	1 पुरुष नीचे दर्दुरक मृत्-हरिताभू अश्मक जल
	पूर्व दिशा में वल्मीक हो तो वृक्ष से साढ़े चार हाथ दक्षिण दिशा में	सात पुरुष नीचे (जल)	1 पुरुष नीचे 1 हस्त लम्बा कर्बुर सर्प-जल-(दक्षिण सिरा)
33. करीर	वृक्ष की उत्तर दिशा में वल्मीक हो तो वृक्ष से साढ़े चार हाथ पर दक्षिण दिशा में	दस पुरुष नीचे (स्वादु जल)	1 पुरुष नीचे पीतम
34. रोहीतक	वृक्ष के पश्चिम में वल्मीक हो तो उसे वृक्ष के 3 हाथ दक्षिण दिशा में	बारह पुरुष नीचे (खारा जल)	पश्चिम वाहिनी सिरा
35. अर्जुन	वृक्ष के पूर्व में वल्मीक हो तो उससे 1 हाथ ऊपर पश्चिम दिशा में	चौदह पुरुष नीचे सिरा	1 पुरुष नीचे कपिला गोधा
36. धत्तूर	वृक्ष के उत्तर वल्मीक हो तो 2 हाथ दक्षिण दिशा में	पन्द्रह पुरुष नीचे (खारा जल)	आधा पुरुष नीचे नकुल, ताम्राभ पाषाण-स्क्ताभ, दक्षिण सिरा-प्रवाह
37. बदरी एवं रोहीतक	वल्मीक के न होने पर वृक्ष के 3 हाथ ऊपर पश्चिम दिशा में	सोलह पुरुष नीचे (मधुर जल)	आधा पुरुष नीचे वृश्नि दक्षिण सिरा-उत्तरासिक पिष्टनिभ पाषाण-श्वेत
38. (संयुक्त)			

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

1	2	3	4
39. करीर एवं बदरी	वृक्षों से 3 हाथ पर पश्चिम दिशा में	अठारह पुरुष नीचे	ईशानकोण में बहने वाली बहुजला सिरा
40. (संयुक्त)			
41. अर्जुन, करीर या बेल	वृक्षों से 2 हाथ पर पश्चिम दिशा	पचीस पुरुष नीचे (जल)	–
42. (संयुक्त)			
43. पीलु एवं बदरी	वृक्षों से 3 हाथ पर पूर्व दिशा में	बीस पुरुष नीचे (अशोष्य खारा जल)	–
44. (संयुक्त)			
45. कदम्ब एवं दूर्वा	वल्मीक के साथ या उसके ऊपर दूर्वा	25 पुरुष नीचे (जल)	–
46. (संयुक्त)	दृष्टिगत हो तो कदम्ब से दक्षिण दो हाथ पर		
47. रोहीतक	तीन वल्मीक के मध्य में विजा तीय तीन प्रकार के वृक्षों से युक्त वृक्ष के उत्तर 4 हाथ 16 अंगुल पर	चालीस पुरुष के नीचे	पाषाण-अधः शिरा
48. श्वेत रोहीतक	वल्मीक वृत वृक्ष से पूर्व दिशा में 1 हाथ पर	सत्तहर पुरुष नीचे (जल)	–
49. शमी (ग्रन्थियुक्त)	वल्मीक की उपस्थिति में पश्चिम पांच हाथ पर	पचास पुरुष के नीचे (जल)	–
50. शमी (श्वेत)	इस वृक्ष से दक्षिण एक हाथ पर	पचहत्तर पुरुष नीचे (जल)	आधा पुरुष नीचे सर्प, सबालुका पीतमत्
51. शमी एवं पलाश	वृक्षों से पश्चिम 5 हाथ पर	साठ पुरुष नीचे (जल)	
52. (संयुक्त)			
53. जम्बू, त्रिवृत मूर्वा, शिशु-मारी, सारिवा	वल्मीक के ऊपर हो तो	तीन पुरुष नीचे (जल)	–

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

1	2	3	4
54. शिंबी	उससे उत्तर तीन हाथ पर	(जल)	
55. श्यामा, वाराहा, ज्योमिष्मती, गरुड़वेणा, सूकरिका, माषपर्णी एवं व्याध्रपदी			
56. न्यग्रोध, पलाश, उदुम्बर (एकत्र या बट एवं पीपल)	इन वृक्षों के तीन हाथ खोदने पर	जल	उत्तर सिरा मिलती है
57. स्निग्ध, छिद्ररहित पत्रयुक्त वृक्ष	तीन पुरुष नीचे (जल)	–	नोट–छिद्ररहित पत्र से तात्पर्य उन पत्तो के तल से जिनमें स्टोमेटा (जलीय छिद्र) अत्यल्प होते हैं।
58. पद्म, क्षुर, उशीर, कुल	तीन पुरुष नीचे (जल)	–	–
59. गुन्द्रा, काश, कुश, नलिका, नल, खर्जुर, जम्बू, अर्जुन, वेतस, धीरिवृक्ष, छत्री, हस्तिकर्णी, शतपत्र, नीप, नक्तमाल, सिन्दुवार, विभीतक एवं मदयन्तिका			

साभार उद्धत :

प्रो. ज्योति मित्तल आचार्य

गांधी नगर, नारिया, वाराणासी

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

क्यों जरूरी है वट वृक्ष की पूजा?

भय, अनिश्चितता, बीमारी, फेफड़ों की समस्या से जूझ रही दुनिया के लिए अपनी परंपराओं का निर्वाह करते हुए पेड़, प्रकृति और पर्यावरण को पूजना भी जरूरी है।

हमारी संस्कृति में पर्यावरण के प्रतीकों को पूजने की परंपरा रही है। प्रदूषण का बढ़ता स्तर, महामारी का खतरा, खान-पान में मिलावट, बाढ़, सूखा और लोगों की घटती प्रतिरोधक क्षमता ने हमें पर्यावरण के प्रति सजग रहने और पेड़-पौधों के प्रति सम्मान व्यक्त करने की सीख दी है। ऐसे में तीज-त्योहारों पर वृक्षों और वनस्पतियों की पूजा का खास महत्व है। पर्यावरण रक्षा हेतु गली-मुहल्लों और चौराहों पर बरगद के पेड़ को धागों से घेर कर किया जाने वाला वट-सावित्री व्रत और जरूरी हो गया है। जो कि पर्यावरण के रक्षक वट वृक्ष की सुरक्षा का द्योतक है।

महामारी में प्रदूषण

कोरोना महामारी ने पूरी दुनिया में सेहत के लिए मुश्किलें खड़ी की हैं। इन परेशानियों में पर्यावरण प्रदूषण ने न केवल समस्याओं को बढ़ाया है, बल्कि समाज को अंतहीन बीमारियों की ओर अग्रसर किया है। प्रदूषण से कमजोर हुए फेफड़ों पर कोरोना की दोहरी मार ने निमोनिया और फेफड़ो के गंभीर संक्रमण तक पहुंचा दिया है, जिससे लोग अथाह कोशिशों के बावजूद जीवन की जंग हार गये। इस बीमारी ने लोगों की प्रतिरोधक क्षमता पर सीधा प्रहार किया, जो जहरीली हवा के कारण पहले से ही खराब हालत में थी। ऐसे में सांस लेने में तकलीफ और शरीर में ऑक्सीजन की कमी जैसी मुश्किलों से लोग परेशान हो गए। अतः यह जरूरी है कि शारिरिक प्रतिरोधक क्षमता तथा स्वस्थ्य फेफड़ों के लिए शुद्ध वातावरण आवश्यक है, जो न केवल हमें शारीरिक स्वास्थ्य प्रदान करता है, बल्कि चिंतन को भी परिष्कृत करता है।

धर्म और प्रकृति का संबंध

मानव के अस्तित्व को कायम रखने के लिए प्रकृति को पूजना आवश्यक है, क्योंकि मनुष्य खुद को बनाए रखने के लिए प्रकृति और पर्यावरण पर निर्भर रहता है। भारत में प्राचीन काल से ही धर्म और पर्यावरण में संबंध देखा गया है। पुराण, वेद और उपनिषद में पर्यावरण को विशेष तौर पर महत्व दिया गया है। भारतीय संस्कृति में वट, पीपल, आंवला, बेल, कदम, पलाश, नीम और तुलसी को पवित्र मानकर इनकी पूजा-अर्चना किए जाने की लंबी परंपरा रही है। यही नहीं, घर-घर में आंगन की शोभा तुलसी को स्त्री रूप माना जाता है, जिसकी आराधना का सौभाग्य वृद्धि में खास महत्व है।

पेड़ों को पूजने की परंपरा

अपनी धरोहर को बनाए रखने और इस परंपरा को अगली पीढ़ी तक पहुंचाने के लिए ही

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सजगता के साथ वट-सावित्री व्रत मनाया जाता है। वट-सावित्री व्रत हर साल ज्येष्ठ महीने की कृष्ण पक्ष की अमावस्या तिथि को मनाया जाता है। इसे स्त्रियां अखंड सौभाग्य और संतान-प्राप्ति की कामना से रखती हैं। इस व्रत को उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड और अब उत्तराखंड में भी महिलाएं बहुत श्रद्धा से वट वृक्ष के चारों तरफ धागा बांधती और परिक्रमा करते हुए मनाती हैं। राष्ट्रीय वृक्ष बरगद प्राचीन शक्तिशाली वृक्ष के रूप में माना जाता है। यह वृक्ष बड़ी मात्रा में आक्सीजन उत्सर्जन के लिए जाना जाता है। घर के आस-पास इस तरह के पेड़ न केवल वातावरण को शुद्ध करते है, बल्कि कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा को भी कम करते हैं। ऐसी मान्यता है कि बरगद का वृक्ष रात में ऑक्सीजन का उज्सर्जन करता है, क्योंकि यह एक प्रकार के प्रकाश संश्लेषण से गुजरता है, जिसे क्रसुलेसियन एसिड मेटाबॉलिज्म कहा जाता है।

पूरी धरती के लिये बरगद

शुद्ध वातावरण न केवल मानव को शारीरिक स्वास्थ्य प्रदान करता है, बल्कि उसके चिंतन को परिष्कृत भी करता है। चिंतन के शुद्धिकरण से आचार शुद्ध होता है और मानव जाति का कल्याण होता है। बरगद का पेड़ न केवल मानव जाति बल्कि धरती पर मौजूद अनेक जीव-जंतुओं का पोषण करता है। ऐसे में इस पेड़ के अस्तित्व से धरती पर मौजूद अनेक प्रजातियों का भरण-पोषण होता है। इसलिए मानव कल्याण की उन्नति के लिए भी वट वृक्ष का बहुत महत्व है।

अच्छे मानसून की कामना

मौसम की मार आज दुनिया के सभी देश झेल रहे हैं। प्रकृति अपना स्वरूप क्रमशः बदल रही है। वह संरक्षक और पोषक होने के साथ-साथ विनाशक के रूप में भी दिखाई दे रही है। इस तरह मानूसन का समय से न आना और पर्याप्त वर्षा का न होना अकाल तथा भुखमरी जैसे समस्याओं को न्योता देता है। ऐसे में मानसून से पहले महिलाओं द्वारा वट वृक्ष की पूजा करना अच्छे मानूसन की कामना भी होती है, जो वर्तमान परिदृश्य में बहुत आवश्यक है।

दीर्घायु, सौभाग्य और ज्ञान का प्रतीक

बौद्ध धर्म के प्रवर्तक महात्मा बुद्ध को वट वृक्ष के नीचे ही ज्ञान प्राप्त हुआ था। साथ ही जैन धर्म के प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव ने भी वट वृक्ष के नीचे ही प्रार्थना की थी। बरगद का पेड़ न केवल आध्यात्मिक, बल्कि वैज्ञानिक कारणों से भी बहुत महत्वपूर्ण है। यह हमारे आस-पास मौजूद हानिकारक गैसों को नष्ट कर पर्यावरण को शुद्ध करता है और औषधीय जड़ी-बूटियों के मुख्य स्त्रोतों में से एक है। अपनी विशालता के लिए प्रसिद्ध इस वृक्ष को दीर्घायु, सौभाग्य और ज्ञान का प्रतीक माना जाता है, एक वट वृक्ष की आयु 150 साल मानी जाती है, इसलिए मनोवैज्ञानिक रूप से यह सशक्त, शांत और दृढ़ता का प्रतीक है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

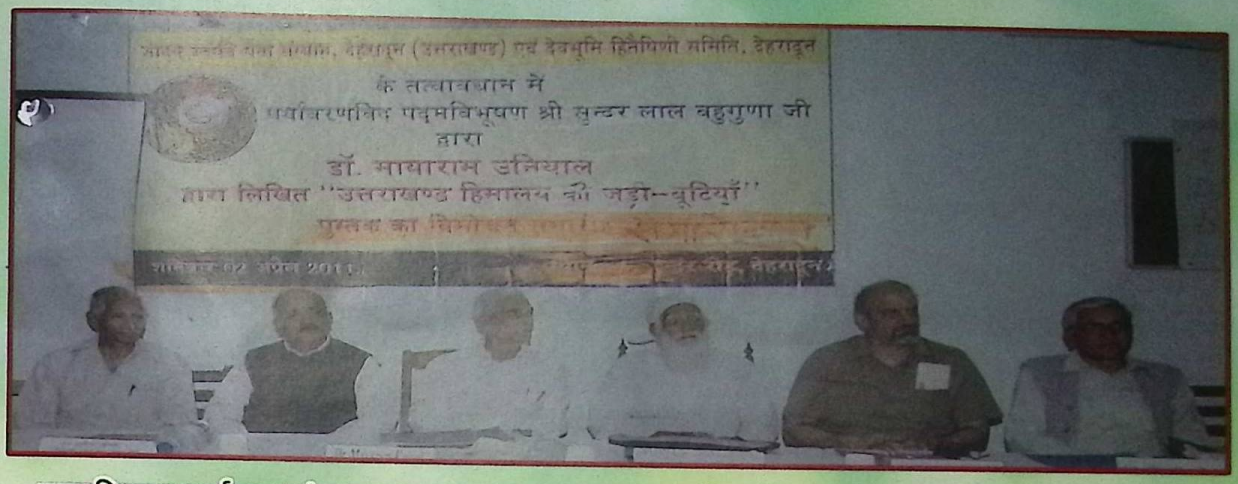

पद्मविभूषण पर्यावरण संरक्षण नायक सुन्दर लाल बहुगणा जी, डॉ. एस. फारुख, डॉ. मायाराम उनियाल, डॉ. भगवती प्रसाद मैठाणी आदि अतिथि परिलक्षित।

मा. स्वास्थ्य मंत्री श्री सुरेन्द्र सिंह नेगी, पूर्व मुख्यमंत्री श्री नित्यानन्द स्वामी, उत्तराखण्ड, आयुर्वेद विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. मिश्र जी, वनौषधि विद्यापति डॉ. मायाराम उनियाल अभिनन्दन ग्रन्थ के लोकार्पण के अवसर पर।

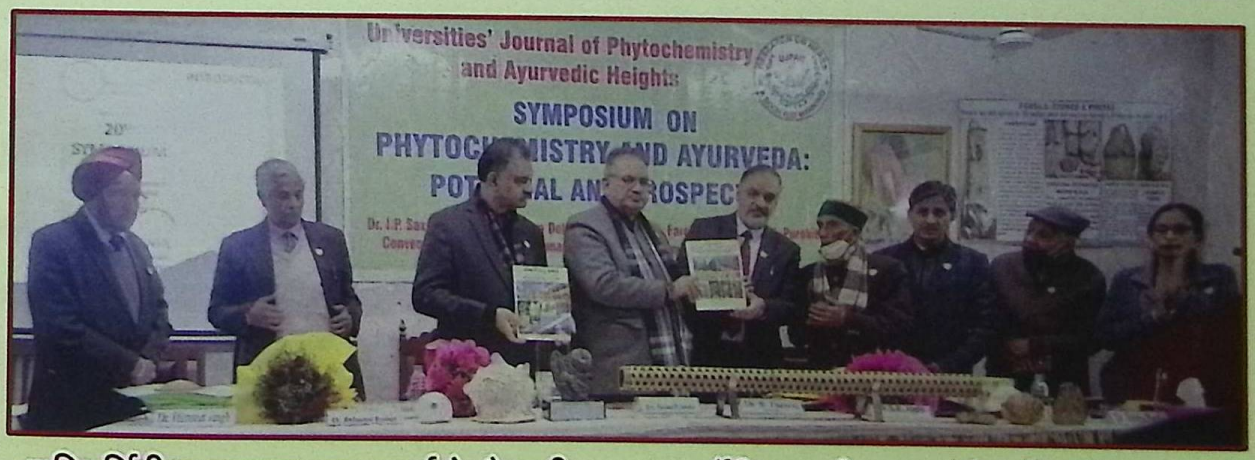

युनिवर्सिटीज जनरल आफ फाईटो कैमस्ट्री एण्ड आयुर्वेदिक हाईटस व मंत्री, श्री गणेश जोशी, डॉ. एस. फारूख, डॉ. मायाराम उनियाल व विशिष्ट अतिथि परिलक्षित।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उत्तराखण्ड की पावन धरती नैसार्गिक अरण्य संस्कृति को निहारते हुये। डॉ. मायाराम उनियाल

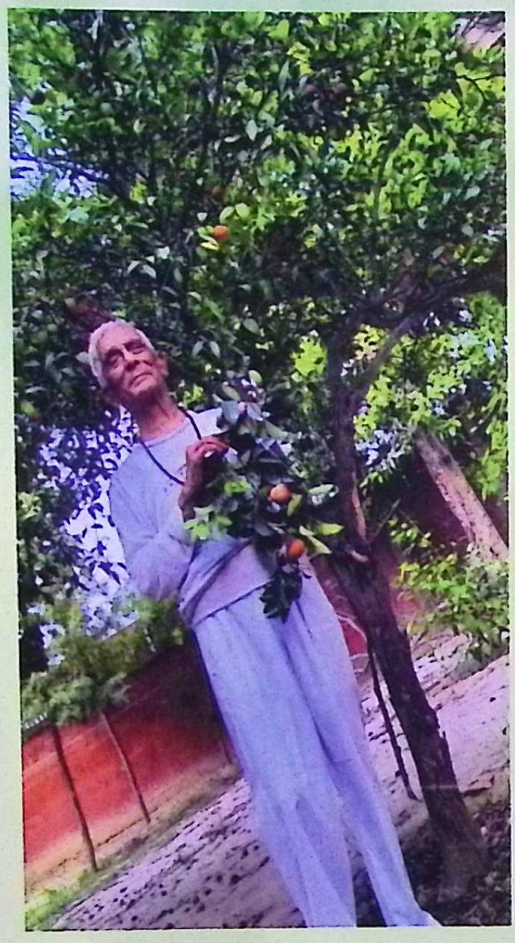

शिग्रु–शोभाञ्जन सहिंजना
Moringa oleifera

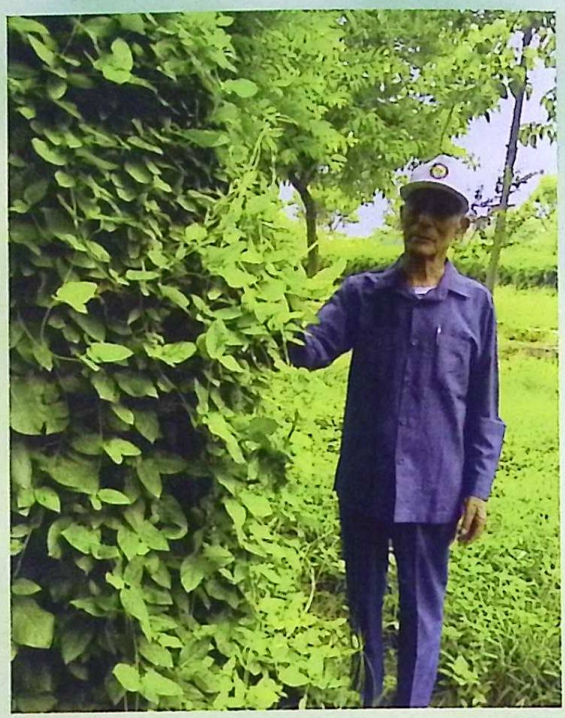

शोभाञ्जन (सहिंजना) के बहुशाखीय सदा हरित वृक्ष होते है यह वनों ग्रमीण क्षेत्रों एवं शहरों में रोपित घर आंगन का वृक्ष है। इसको मीठा सा हिजज कहते है। इसका उपयोग भोजन सामग्री में पत्र, पुष्प, फली के रूप में प्रयोग किया जाता आयुर्वेद चिकित्सा बीज को श्वेत मारिच कहते है बीज तैल का प्रयोग जोड़ो के दर्द में बीज, दीपन रोचन, छाल का भी प्रयोग होता है।

अरण्य संस्कृति का देव वृक्ष वट रक्तफल
Ficus benghalensis Linn.

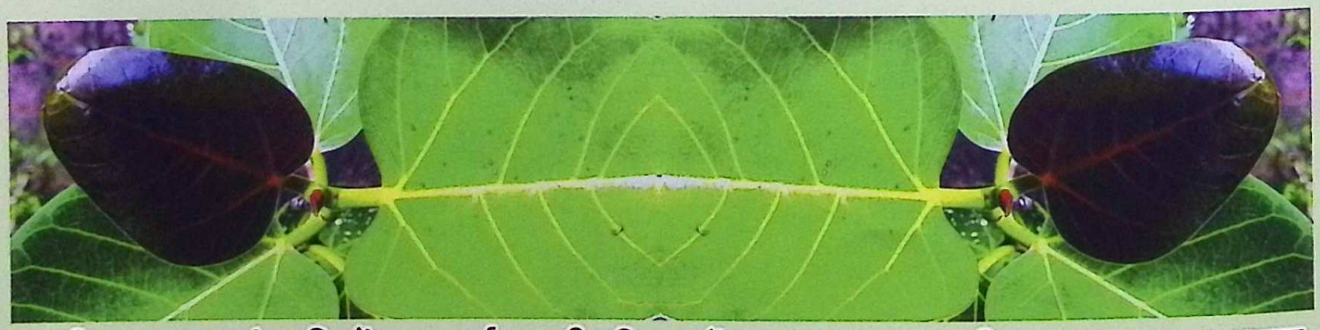

भारतीय अध्याम संस्कृति में यज्ञ, पर्व, शादी–विवाह में पञ्चपल्लव, वट, पिपल, आम, प्लक्ष, गूलर, कदली आदि देव वृक्षों का विशेष महत्व है ये वृक्ष ग्राम, शहर, वनों की शोभा एवं पर्यावरण संरक्षण के आधार है। भारतीय नारी वट सावित्री का व्रत रख कर मनोकामना हेतु पूजा करती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

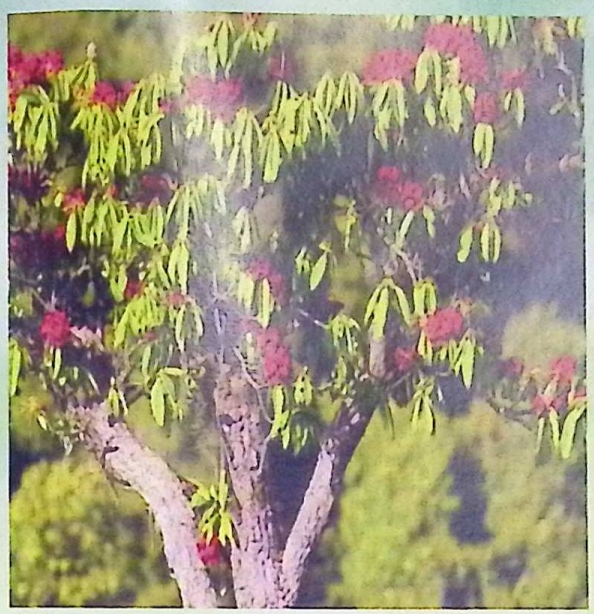

उत्तराखण्ड का राजवृक्ष बुरांस (कुरुवक:)
Rhododendron Arboreum

संस्कृत साहित्य में कुरुवक (बुरांस) वृक्ष का उल्लेख दोहद वृक्षों में आया हैं। कवि का कहना है कि सुन्दरियों के आलिंगन मात्र से ही बुरांस के फूल खिलने लगते है। आयुर्वेद में इसने पुष्पों का उपयोग हृदय एवं स्त्री रोगों में वर्णित है :

वोठा करुवक रजसां किसलय पुट भेद शीकरानुगत:
(मा. वि. 3/5)

''रक्तशोक रूचा विशेषति गुणों विम्वाधरास्तक:''
अर्थात् रक्तपुष्प कुरुवक (बुरांस) की शोभा सुन्दरियों के ओठों की शोभा सघृश मिठास पैदा करती है।

पद्राख, पईयां पद्रकाष्ठम्
Prunus cerasoides D. Don

उत्तराखण्ड के प्रकृति प्रेमियों का पईयां की पाती पवित्र मानी जाती है हरैला के पावन पर्व एवं वसन्तोत्सव में सुख समृद्धि के लिये पंईयां की पाती पर गोबर लगाकर घर द्वार पर लगाई जाती है आयुर्वेद में दाहशामक रक्तविकार त्वगदोष (चमड़ी के खुजली व्रण (घाव) में प्रयोग किया जाता हैं।

कदली केला
Musa sapientum Linn.

हिन्दू संस्कृति में एवं ज्योतिष शास्त्र में कदली केले का विशेष महत्व है। धार्मिक कार्यो विवाह, यक्ष आदि कार्यो में पञ्चपलव वृक्षों में केला रोपण एवं पूजा कदली फल सुफल माना जाता है मनोकामना एवं पति के आरोग्य के लिये केले के वृक्ष की पूजा करती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सुगन्ध से तुलसी समृद्धि

पार्वती विल्व वृक्षम्याम् लक्ष्मी तुलसी प्रिया। (स्कन्द पुराण)

पार्वती को विल्व वृक्ष एवं लक्ष्मी को तुलसी प्रिय है। हिन्दू परिवार में तुलसी का पौधा पूजा जाता है। जिस स्थान पर तुलसी का पौधा होता है। वहां देवताओं का निवास माना जाता है। नारी दामपत्य जीवन की दीर्घायु के लिये तुलसी विवाह व्रत रखकर प्रार्थना करती है। जिस घर में तुलसी की पूजा होती उसमें यमदूत प्रवेश नहीं करते। इसका पौधा पर्यावरण संरक्षण में उपयोगी हैं। धन्य हैं वनस्पितियां जो समस्त प्राणियों का जीवन है, ऐसे गुरुतुल्य वनस्पतियों को प्रणाम।

अहो एषां वरं जन्म सर्व प्राण्युप जीवनम्। (श्रीमद् भागवत)

कायफल का फल Myrica Nagi Thumb

उत्तराखण्ड का लोक प्रचलित स्वास्थ्य वर्धक का फल है। देवभूमि उत्तराखण्ड के अरण्य संस्कृति में पद्म (पंयां) वांझ, बुरांस, देवदार, थुनेर, तालीस एवं चीड़ के जंगलों से वनों की शीतल पावन से सैलानियों का आकर्षण का केन्द्र हैं। वन्य फलों में हिंसर, काशमल, किनगोड़, तिमला, वेडू, खैणां, बमोर, मेहल, जगलीच्यूं, मंशरूम, तैल्ड, लिंगड़ा आदि वन्य पारम्परिक खाद्य सम्पदा हैं।

भारत की अरण्य संस्कृतिः
वृक्ष सम्वर्धितानां सुतनिर्विन शेषम्।।

यत्र द्रुमा अपि वान्धवो में तस्मै बदाम्य
गुरूवे नमस्तुते।। (कालिदास)

महाराजा दिलीप सारथी के साथ वन भ्रमण करते हुये वृक्षों की कुशलता पूछते हुये कहते हैं कि तेज आंधी के कारण वृक्षों को कोई क्षति तो नहीं हुई ये वृक्षों की मधुर कम्पन संगीत की ध्वनि से वन देवता इनका पूजन कर रहे है। रघुवंश महाकाव्य में कालिदास ने प्रकृति का प्रत्यक्ष अनुभव किया।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भारतीय साहित्य में वन सम्पदा का महत्व

महाकवि कालिदास प्रकृति प्रेम के पुजारी है। इनको संस्कृत-साहित्य की शैली उपमा प्रधान माना गया है। कहा भी है-

उपमा कालीदासस्य मारण्डर्थ गौरवम्।

रघुवंश महाकाव्य में उल्लेख आया है कि महाराज दिलीप अपने सारथी के साथ रथ में सवार होकर मार्ग में वृक्षों के नामों क्षेम कुशल पूछते हुये पीली बासों के पोले पर्वो से वायु जाने के कारण अनुपम संगीत, ध्वनि जब उत्पन्न होती और साज बजा कर राजा के वंशो का गुणगान करते है तो राजा दिलीप ने यह सुनकर वृक्ष देवताओं को प्रणाम किया। यथा-

आधारबन्धः प्रमुखैः प्रयत्नैः सम्बर्धितानांसुत निर्बिशेषम्।
क्वचिन्त वाय्वादिरुप प्रवोवः श्रमच्छिदाश्रम पादपानाम्।। (रघुवंश)

महाराजा दिलीप वन भ्रमण काल में अतिथियों की कुशलता के साथ वनसम्पदा की जानकारी में ध्यान देते थे। यथा-

हैयङ्गवीनमादाय घोष, वृद्धान पस्थिताम्।
नाम धेयानी पृच्छन्तों, वन्यानां मृगशालिनाम्।। (रघुवंश)

इसी प्रकार वाल्मिकी रामायण में कतिपय सन्दर्भ स्थल में श्री राम एवं सीता जी के वनवास के समय मानव विहीन वनों के संजीव सृष्ठी वार्तालाप के उदाहरण दृष्टि गोचर हैं।

रामायण-महाभारत में भी वनों के नैसर्गिक सम्पदा का विस्तृत रूप से उल्लेख मिलता है। श्री राम बनवास के समय स्वयं कहते हैं कि-

यत्तद्रुमा अपि मृगा अपि वान्धवों में

वनों के वृक्ष, हिरण-जीव-जन्तु सभी हमें मित्रों के समान लगते हैं। राम सीता जी के हरण के समय वृक्षों, पर्वतों से पूछते हैं। कि सीता जी का हरण किसने किया है मार्ग में क्या तुमने देखा है-

रे रे वृक्षा पर्वस्था गिरिगहनलता।
हा सीते केन गृहीता मम हृदय व्यग्रता।।

रामायण में संजीव चेतना वनस्पतियों की भी पुष्ठी होती है।

भारतीय संस्कृति एवं नारी के जीवन में पर्यावरण का महत्व

वाल्मिकी रामायण में उल्लेख मिलता है कि सीता जी कहती है-

"हे शक्तिशाली वृक्ष मैं तुझे प्रणाम करती हूँ मेरे पति का प्रण पूरा कराने में दया करो, जिससे मैं अपनी पूजनीया सास कौशल्या एवं सुमित्रा के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त का सकूं।"

न्यूग्रोधे समुपागम्यः वैदेही चाम्यवन्दतः नमस्तेऽसु महावृक्षः पारयेन्में पतीवुतम्।
कौशल्यां चैव पश्चये सुमित्रांच यशश्विनी।
इति सीतांजलीं कृत्वा पर्यगन्छन् मनश्विनी।। (रा.अ. काण्ड)

वनवास के समय सीता जी माता कौशल्या व सुमित्रा आदि की कुशलता के लिये वट-पीपल आदि वृक्षों से जानकारी लेती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ब्रह्म पुराण एवं बाराह पुराण

जो कोई एक पीपल, एक नीम, एक बड़ एवं दश फूलों के पौधे या लतायें, दो अनार, दो नारंगी और पांच आम के वृक्ष लगता है। व नरक को नहीं जाता है। यथा-

अश्वत्थमेके पिचुमन्द भवे न्यग्रोधमेवां दश पुष्पजानीः।
द्वे द्वे तथा दाडिम भातुलुगें पञ्चाम्र रोपी नरके न यामि॥ (बाराह प्राण) श्रीमद्भागवत

पश्मैतान् महाभागान् परार्थैकान्त जीवनम्।
वातवर्षातपहिमान् सहन्तेः वारयन्तिनः॥

देखो कितने बड़े भाग हैं इन वृक्षों के जो केवल इसलिए जीते हैं कि दूसरों का भला हो कितनी महनता है उन की वे आंधी, वर्षा, धूप की तेजी को सहते हुये हमारी रक्षा करते है-

परोपकाराय फलवत्तीवृक्षा, परोपकाराय बहन्ती।
नद्या, परायेकाराम ददाति अन्त्र, परापेकाराम मिंद शरीरम्॥

सन्त पुरुष भी वृक्षों के समान दूसरों के हित के लिये जन्म लेते है।

कुरान में लिखा कि हरा पेड़ काटने वाले और जानवर को मारने वालों को कभी माफ नहीं करना।

बाईबल में वृक्षों के महत्व पर विशेष प्रकाश डाला है।

स्कन्ध पुराण में भगवान् विष्णु स्वयं कहते है। सृष्टि के समय मैं (ईश्वर) समस्त पेड़-पौधों में विद्यमान हूँ। किन्तु देवी पार्वती विल्ब में तथा देवी लक्ष्मी तुलसी में निवास करती है-

पार्वती विल्ब वृक्षाम्यां लक्ष्मी तुलसीगताम्।
आदौसर्व वृक्ष मर्य पूर्व विश्व मजायतः॥

(स्कन्ध पुराण)

नेहरू जी ने कहा था...

हे वृक्ष राज! तुम्हें नमस्कार है। तुम्हारे मूल में ब्रम्हा, देह में विष्णु, शाखाओं में महेश तथा पत्ते पत्ते में देवताओं का वास है।

बढ़ता हुआ पेड़ एक प्रगतिशील राष्ट्र का जीता जागता प्रतीक है। हमारे वन हमारे लिए अनेक दृष्टियों से निहायत जरूरी है। हमें उन्हें बनाए रखना होगा। इस समय हमने उन्हें बहुत ज्यादा बरबाद कर दिया है। यह सच है कि आबादी बढ़ने पर उसके लिए अधिक भोजन पैदा करने की जरूरत भी आवश्यक हो जाती है। परन्तु उसे गहन खेती करके पूरा किया जाना चाहिए जंगलों का विनाश करके नहीं, क्योंकि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में वनों को महत्वपूर्ण भूमिका मिली हुई है।

हमारे वन एक बड़ी राष्ट्रीय धरोहर हैं जिसकी हमें रक्षा करनी है और देश के फायदे के लिए उसका उपयोग करना है। हमारे वनों की विविध प्रकार की उपज भी सवार्धिक महत्व की है।

हम पेड़ क्यों लगाये और अधिक संख्या में अच्छे पेड़ अपने यहाँ क्यों रखें, इसके बहुत से कारण है। उनकी जरुरत हमें आर्थिक कारणों से है और मिट्टी का बचाव करने के लिये भी। किन्तु मैं तो उन्हें मानवीय कारणों से पसन्द करता हूँ और उन्हें अपना दोस्त समझता हूँ क्योंकि वे मुझे तसल्ली देते हैं। इधर-उधर तथा पहाड़ी ढलानों पर लगे हुए सुन्दर वृक्षों ने मुझे जितना अधिक प्रभावित किया है इतना किसी दूसरी चीज ने नहीं।

-जवाहरलाल नेहरू

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उत्तराखण्ड की वन सम्पदा एवं जनपद

राष्ट्रीय वन नीति 1998 के अनुसार देश के कुल क्षेत्रफल के 33 प्रतिशत (पर्वतीय क्षेत्रों में कम से कम 60 प्रतिशत और मैदानी क्षेत्रों में कम से कम 25 प्रतिशत) भाग पर वन होना आवश्यक है। भारत में वनों की स्थिति पर केन्द्रीय वन एवं पर्यावरण मंत्रालय के 12वें द्विवार्षिक रिपोर्ट 2011 जो फरवरी, 2012 में जारी किया गया, के अनुसार राज्य में वन की स्थिति निम्न प्रकार हैं-

11वें वन रिपोर्ट के अनुसार राज्य के कुल क्षेत्रफल के 45.79 प्रतिशत भाग (24,495 वर्ग किमी.) पर वनाच्छादन व 1.23 प्रतिशत भाग (658 वर्ग किमी.) पर वृक्ष आच्छादन था, जबकि 12वें रिपोर्ट के अनुसार 45.80 प्रतिशत भाग (24,496 वर्ग किमी.) पर वनाच्छादन व 1.20 प्रतिशत भाग पर (642 वर्ग किमी.) पर वृक्ष आच्छादन है।

इस प्रकार 12वें रिपोर्ट के अनुसार राज्य के कुल क्षेत्रफल के 47 प्रतिशत भाग (25,138 वर्ग किमी.) पर वनाच्छदन वृक्ष आच्छादन है।

12वें वन रिपोर्ट के अनुसार राज्य के कुल वन क्षेत्रफल (24,496 वर्ग किमी.) में से 19.44 प्रतिशत भाग (4,762 वर्ग किमी.) पर अति सघन वन, 57.83 प्रतिशत भाग (14,167 वर्ग किमी.) पर मध्यम सघन वन व 22.72 प्रतिशत भाग (5,567 वर्ग किमी.) पर खुले वन हैं।

12वें रिपोर्ट के समय राज्य में रिकॉर्डेड वन का क्षेत्रफल 34,651 वर्ग किमी. है जो कि राज्य के कुल क्षेत्रफल का 64.79 प्रतिशत है। रिकॉर्डेड वन क्षेत्र के अन्तर्गत तीनों प्रकार के वनों को अधोलिखित चार्ट में देखें-

श्रेणी	क्षेत्रफल (वर्ग किमी.)	सम्पूर्ण राज्य के सन्दर्भ में प्रतिशत
आरक्षित वन	2,4,43	71.11
संरक्षित वन	9,885	28.30
अवर्गीकृत वन	123	0.35
योग	34,651	64.79

रिकॉर्डेड वन-क्षेत्र से तात्पर्य ऐसे क्षेत्र से है, जिन्हें राज्य सरकार वन-क्षेत्र घोषित कर चुकी होती है, चाहे उस पर वन हो या न हों।

10वें वन रिपोर्ट के अनुसार राज्य के जिलों में वन की स्थिति-

जिला	वन का क्षेत्र एवं (प्रति.)
- उत्तरकारशी	3,144 (39.22)
- चमोली	2,698 (33.60)
- पिथौरागढ़	2,077 (29.29)
- पौढ़ी गढ़वाल	3,271 (61.38)
- नैनीताल	3,088 (72.64)
- टिहरी गढ़वाल	2,138 (58.70)
- अल्मोड़ा	1,577 (50.24)
- देहरादून	1,593 (51.59)
- ऊद्यम सिह नगर	564 (22.19)
- हरिद्वार	630 (26.69)
- बागेश्वर	1,380 (61.44)
- रूद्रप्रयाग	1,120 (56.45)
- चम्पावत	1,162 (65.80)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

राज्य में सर्वाधिक और सबसे कम वन क्षेत्रफल वाले जिले क्रमशः पौढ़ी और ऊद्यम सिह नगर हैं।

राज्य में सर्वाधिक वन क्षेत्र वाले 4 जिले घटते क्रम में क्रमशः पौढ़ी (3271 वर्ग किमी.), उत्तरकाशी (3,144), नैनीताल (3,088) व चमोली (2,698) हैं।

जिले के कुल क्षेत्रफल में वन क्षेत्र के प्रतिशत की दृष्टि से राज्य में सर्वाधिक और सबसे कम प्रतिशत वाले जिले क्रमशः है। नैनीताल (72.64 प्रतिशत) व ऊ.सि.न. (22.19 प्रतिशत)।

सर्वाधिक वन प्रतिशत वाले 4 जिले घटते क्रम में क्रमशः नैनीताल (72.64 प्रतिशत) चम्पावत (65.80 प्रतिशत), बागेश्वर (61.44 प्रतिशत) व पौढ़ी (61.38 प्रतिशत)।

राज्य में सबसे अधिक सघन वन नैनीताल (548 वर्ग किमी.) में है। फिर क्रमशः देहरादून (487) व पिथौरागढ़ (470) में है।

राज्य में सर्वाधिक मध्यम सघन वन पौढ़ी (2,065) में, फिर क्रमशः उत्तरकाशी (2,062), नैनीताल (1,936) व चमोली (1,558) में है। सबसे कम ऊ.सि.न. (246) में है।

राज्य में सर्वाधिक सघन (अति+मध्यम) वन क्रमशः पौढ़ी (2,515 वर्ग किमी.), नैनीताल (2,484), उत्तरकाशी (2,470) व चमोली (1,964) में है।

राज्य में सर्वाधिक खुले वन क्रमशः पौढ़ी (756), चमोली (734), उत्तरकाशी (674) व टिहरी (656) में हैं। सबसे कम ऊद्यम सिह नगर में है।

राज्य में सर्वाधिक झाड़ी क्रमशः टिहरी, पिथौरागढ़, पौढ़ी व देहरादून में है।

राज्य के कुल वन क्षेत्र का 59.70 प्रतिशत गढ़वाल मण्डल में और शेष 40.30 प्रतिशत कुमाऊँ मण्डल में है।

गढ़वाल मण्डल के कुल वन क्षेत्र में से 22.41 प्रतिशत (सर्वाधिक) पौढ़ी में है। जबकि कुमाऊं मण्डल के कुल वन क्षेत्र में से 31.35 प्रतिशत (सर्वाधिक) नैनीताल में है।

राज्य के नदी बेसिनों के कुल क्षेत्र में वनों के प्रतिशत की दृष्टि से देखें तो सर्वाधिक प्रतिशत वन टौंस बेसिन (76.6 प्रतिशत) में फिर क्रमशः कोसी (69.0 प्रतिशत), यमुना (56.7 प्रतिशत), काली गंगा (शारदा) (45.4 प्रतिशत) व रामगंगा (41.5 प्रतिशत) में हैं। भागीरथी बेसिन में 34.9 प्रतिशत व अलकनन्दा बेसिन में 32.1 प्रतिशत है।

ऊँचाई के क्रम में वन प्रतिशत

राज्य में ऊँचाई बढ़ने के साथ-साथ वनों का कुल क्षेत्र तथा उनका प्रतिशत पहले बढ़ता है फिर एक निश्चित ऊंचाई के बाद पुनः घटने लगता है।

300 मीटर से नीचे ऊंचाई वाले भागों में वनों का प्रतिशत 12.8 है।

300-600 मीटर के मध्य 12.3 प्रतिशत है।

600-1200 मीटर वाले क्षेत्रों में 16.3 प्रतिशत है।

1200-1800 मीटर की ऊँचाई वाले क्षेत्रों में 22.3 प्रतिशत है।

1800-3000 मीटर की ऊँचाई वाले क्षेत्रों में सर्वाधिक वन (28.8 प्रतिशत) है।

3000 मीटर से अधिक ऊँचाई पर केवल 7.5 प्रतिशत है।

वनों के प्रकार :

उपोष्ण कटिबन्धीय वन

ये वन 750 या 1200 मीटर से कम ऊँचाई वाले क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इसमें उत्तराखण्ड का पूरा उप-हिमालय क्षेत्र आता है। साल इन वनों का प्रमुख वृक्ष हैं। दक्षिणी ढालों पर 750 मीटर तथा उत्तरी ढालों पर 1200 मीटर पर ये वन पाये जाते हैं। कन्जू, सेमल, हल्दू, खैर, सीसू तथा बांस अन्य प्रमुख वृक्ष हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उष्ण कटिबन्धीय शुष्क वन

इन वनों की मुख्य प्रजातियाँ बाक, सेमल, गूलर, जामुन व बेर आदि हैं। ये वन 1500 मी. से कम ऊँचाई वाले उन क्षेत्रों में पाये जाते है, जहाँ कम वर्षा होती है।

उष्ण कटिबन्धीय आर्द्र पतझड़ वन

इन्हें मानसूनी वन भी कहा जाता है जो किसी एक मौसम में अपनी पत्तियाँ गिरा देते हैं। उत्तराखण्ड में 1500 मी. की ऊँचाई तक ऐसे वन शिवालिक श्रेणियों तथा दून घाटी में पाये जाते हैं। सागौन, शहतूत, पलाश, अंजन, बहेड़ा, बांस और साल के मिश्रित वन इसके उदाहरण हैं।

कोणधारी वन

उत्तराखण्ड में ऐसे वन 900 से 1800 मीटर की ऊँचाई पर पाये जाते हैं। अर्थात् ये उष्ण कटिबन्ध तथा शीतोष्ण कटिबन्ध के बीच के वन हैं। चीड़ इनका प्रमुख वृक्ष है। इन वनों में शुष्कता रहती है और ये चट्टानी धरातल पर भी उग जाते हैं। कहीं-कहीं बीच में घासें भी उगती हैं।

पर्वतीय शीतोष्ण वन

यहां पर ये वन 1800 से 2700 मीटर की ऊँचाई तक पाये जाते हैं। निचले भागों में चीड़ पाया जाता है। स्प्रूस, सिलवर, फर, देवदार तथा साइप्रस ऊँचाई पर उगते है। दक्षिणी ढालों पर बांज की प्रधानता रहती है। पापुलर, बर्च, नीली चीड़ के वृक्ष भी इसी श्रेणी में आते हैं। ओक की तीन मुख्य प्रजातियाँ हैं। बाज, मोरू तथा खर्सू।

उप-एल्पाइन तथा एल्पाइन वन

ये 2700 मीटर से अधिक की ऊँचाई पर मिलते हैं। जिनमें सिल्वर फर, ब्लू पाइन, स्प्रूस, देवदार, बर्च आदि प्रमुख हैं। बुराँस तथा कम्पानुलाटस अन्य मुख्य प्रजातियाँ हैं। ये वृक्ष तेल युक्त होते हैं तथा कच्चे भी जल जाते हैं।

एल्पाइन झाड़ियां तथा घास के मैदान

ये वनस्पतियाँ 3000 से 3600 मीटर की ऊंचाई में पाई जाती हैं। झाड़ियों के साथ स्थान-स्थान पर एल्पाइन वनस्पति भी बिखरे रूप में पायी जाती हैं। इन ऊंचाइयों पर जूनिपर, विलो, रिब्स आदि प्रमुख रूप से उगते हैं जो वृक्ष रेखा से भी ऊपर तक पाये जाते हैं। इससे अधिक उंचाई पर घास के मैदान मिलते हैं, जिन्हें बुग्याल, पयार, मीडो या अल्पाइन पाश्चर कहा जाता है। गर्मी के दिनों में हिमानी क्षेत्रों की बर्फ पिघलने से कहीं-कहीं दलदल भी बन जाते हैं और यहाँ कई प्रकार के फूल (अतीस, वत्सनाम, शालमपंजा, सोम, निरविषी, रूद्रवंती, विषकंडार, फेनकमल, कस्तूरा कमल, बह्मकमल, पंजा आदि) तथा जड़ी-बूटियां (गुग्गल, बिल्ल, जटामासी, कुठ, ममीरी, रतनज्योति व प्रिभुलास आदि) उग जाती है। जून से सितम्बर तक इन मैदानों में उगने वालो पशुचारण हेतु उपयुक्त मखमली घाँसे मोहक लगते हैं। इन बुग्यालों में पशुचारण कराने वाले पशुचारकों को चलघुमंतू, अन्वात, पालसी, बकरखाल, ल्वड़या, गूजर व गद्दी आदि नामों से जाना जाता है।

टुण्ड्रा तुल्य वनस्पतियां (झुकी हुई घास) बुग्याल

3600 से 4800 मीटर तक की ऊंचाई वाले क्षेत्रों में तुण्ड्रा तुल्य वनस्पतियां (घास, काई, लिचेन आदि) उगती हैं, जबकि इससे अधिक उंचाई पर सदैव बर्फाच्छादन रहता है। एलपाईन बुग्याल।

वनों का प्रशासनिक विभाजन

राज्य में वनों का प्रबन्ध/नियंत्रण कुल चार तरीके से होता है, जो अधोलिखति हैं :

वन विभागाधीन

राज्य के कुल वन क्षेत्र के 70.46 प्रतिशत वन इस श्रेणी में आते हैं। पर्यावरणीय और आपदाओं की दृष्टि इन वनों पर पूर्णतः सरकारी नियंत्रण रहता हैं।

राजस्व विभागाधीन

राज्य के कुल वन क्षेत्र का 13.76 प्रतिशत वन इस श्रेणी में आते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

राज्य के प्रमुख बुग्याल

सतोपंथ, घसतोली, रताकोण, लक्ष्मीवन-ये सभी बुग्याल चमोली के अंतिम गांव माणा से ऊपर हैं।

नंदनकानन-यह फूलों की घाटी के ऊपर हैं।

फूलों की घाटी-चमोली (जोशीमठ-बद्रीनाथ मार्ग पर), यह नर एवं गंध मादन पर्वतों के मध्य के भ्यूंडार घाटी में स्थित है, भ्यूंडार गंगा पार्क तथा स्माइय पार्क इसके अन्य नाम है, ब्रिटिश पर्वतारोही फ्रैंक स्माइय ने इसकी खोज 1931 में की थी।

औली-चमोली (जोशीमठ से 15 किमी. दूर), साहसिक पर्यटन के लिए विश्व प्रसिद्ध, नंदादेवी, कामेट, माणा, द्रोणागिरि, नीलकंठ तथा हाथी-गौरी पर्वत श्रृंखलाओं से घिरा, यह बुग्याल एशिया का सुन्दरतम ढाल वाला स्कीइंग केन्द्र है, यहाँ स्कीइंग हेतु विदेशी लोग भी आते हैं।

गुरसो-औली के पास, यहाँ हाथी पर्वत है।

चित्रकांठा-चमोली।

क्वारी-चमोली (विरही के ऊपर)।

चौफिट शिखर-चमोली (मलारी के पास)।

कल्पनाथ-चमोली (बद्रीनाथ मार्ग पर)।

केला-यह बुग्याल बद्रीनाथ के चारों ओर फैला है।

बगजी-चमोली, पिंडर और कैल के बीच, यहाँ से हिमालय का सबसे भव्य दर्शन होता है।

रूपकुण्ड-चमोली, यहाँ फेणकमल पुष्प अधिक मिलते है।

बेदिनी-सबसे बड़ा बुग्याल, चमोली (रूपकुण्ड के पास), इसे वेदों का प्रणयन स्थल माना जाता है, यह सुन्दर मखमली घासों के लिए भी प्रसिद्ध है।

अली-चमोली-रूद्र प्रयाग (ओखीमठ व गोपेश्वर के बीच)।

केदार कांठा-उत्तरकाशी, मखमली घास।

मानेग-उत्तरकाशी (सरताल के पास)।

हर का दून-उत्तरकाशी, बंदरपुंछ ढाल पर, टोन्स उद्गम, मखमली घास।

सोनगाड़ (छायागाड़)-उत्तरकाशी।

देवदामिनी-यमुनोत्री के पास।

दयारा-उत्तरकाशी, शीतकाल में स्कीइंग प्रशिक्षण केन्द्र, पर्वतरोही चन्द्रप्रभा संतवाल ने इसे पर्यटन मानचित्र पर लाया।

कुश कल्याण-उत्तरकाशी, सुरम्य बुग्याल, कोटालों की हारी नाम।

पंवाली कांठा-उत्तरकाशी, 17 वर्ग किमी. में कई प्रकार की जड़ी-बूटियों के कारण इसे सुरक्षित जैव पार्क घोषित किया गया है।

तपोवन-गोमुख के पास उत्तरकाशी।

केदार खर्क-गोमुख के निकट।

मासरताल-सहस्त्रताल-टिहरी (बूढ़ाकेदार से चढ़ाई पर)।

जौराई-टिहरी (सहस्त्रताल के आगे)।

अप्सराओं (कोटली)-टिहरी (कुश कल्याण के आगे पांडवों की चोटी के पास)।

खतलिंग-टिहरी (खारसोली से पहले, रीह के पास)।

मदमहेश्वर-रूद्रप्रयाग, कसनी खर्क नाम भी।

चोपता-रूद्रप्रयाग में।

बर्मी-रूद्रप्रयाग के निकट।

कफनी-बागेश्वर (पिण्डारी ग्लेशियर के पास)।

पिण्डारी-नामिक, जोहार, खलिया, छिपलाकोट, रहाली, लड़पांगती, थाला आदि बुग्याल पिथौरागढ़ जिले में है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इन वनों में पशु चराने तथा लकड़ी काटने की छूट होती है।

वन पंचायताधीन

राज्य के कुल वन क्षेत्र के 15.32 प्रतिशत वन इस श्रेणी में आते हैं। इन वनों पर स्थानीय वन पंचायतों का नियंत्रण होता है।

निजी व अन्य संस्थाधीन

राज्य के कुल वन क्षेत्र के 46 प्रतिशत वन इस श्रेणी में आते हैं। इन वनों पर निजी व्यक्तियों, नगर पालिकाओं या नगर परिषदों आदि का अधिकार है।

- राज्य के उपोषण कटिबन्धीय वनों का प्रमुख वृक्ष है। -साल
- राज्य में उष्णकटिबन्धीय शुष्क वन 1500 मी. से कम ऊँचाई वाले उन क्षेत्रों में पाये जाते हैं, जहाँ। -वर्षा कम होती है।
- 1500 मी. की ऊँचाई वाले उन क्षेत्रों में, जहाँ वर्षा अधिक होती है, (जैसे- शिवालिक और दून क्षेत्र) में, पाये जाते हैं।
- उष्ण कटिबन्धीय आर्द्र पतझड़ वन
- 900 से 1800 मी. की ऊँचाई तक पाये जाने वाले कोणधारी वनों का प्रमुख वृक्ष है। - चीड़
- राज्य में 1800 मी. से 2700 मी. की ऊँचाई तक पाये जाते है। - पर्वतीय शीतोष्ण वन या
- नगर परिषदों का आदि का अधिकार है।

वनों से लाभ

वन एक नवीकरण संसाधन है, जिनका मानव सभ्यता के विकास एवं संवर्धन में विशेष महत्व है। इनसे मिलने वाले अप्रत्यक्ष लाभ प्रत्यक्ष लाभ से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है।

अप्रत्यक्ष लाभ

वनों के कारण वायु और जल मृदा अपदन तथा बाढ़ से हमारे भूमि की रक्षा होती है। वनों की पत्तियों के गिरने और सड़ने-गलने ने भूमि की उर्वरकता में वृद्धि होती है। वायुमण्डल CO_2 और O_2 संतुलन तथा जलवायु को सम बनाये रखने में वनों की अहम भूमिका है इनसे प्राकृतिक सौन्दर्य में वृद्धि होती है। अधिक वर्षा में भी वनों का विशेष महत्व है। जिन क्षेत्रों में वनाच्छादन अधिक पाया जाता है वहाँ वर्षा अधिक होती है। वनों में अनेक जीव-जन्तुओं को संक्षरण मिलता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जैव और पर्यावरणीय दोनों प्रकार के संतुलन में वनों की अहम भूमिका है।

प्रत्यक्ष लाभ

वन राज्य के आय का एक प्रमुख स्त्रोत है। इससे अनेक प्रकार की लकड़ियों, औषधियों तथा कई अन्य उपयोगी पदार्थों की प्राप्ति होती है।

राज्य में वनों से सतावरी, अश्वगंधा, कचरी, चिरयता, हरय-बहेड़ा आदि औषधियों, तेजपात, इलाइची, हींग आदि मसालों, अखरोट, चिरोंजी, बादाम आदि सूखे फलों तथा गुग्गुल, लाख, रुद्राक्ष, रीठा, भांग आदि अनेक उपयोगी पदार्थों की प्राप्ति होती है।

चीड़ वृक्ष के लीसा से राल (रेजिन), बिरोजा (टर्पेन्टाइन) और तारपीन बनाया जाता है, जो कि वार्निश, रंग-रोगन, बूट पॉलिश, काँच आदि बनाने में प्रयुक्त होता है।

बबूल आदि लकड़ियों की छाल से रंग, पालिश आदि बनाये जाते है। बुरांश, ढाक आदि के फूल से रंग बनाये जाते हैं। बेंत, बांस, रिंगाल आदि घासों से गृह उपयोगी अनेक सामग्रियां तथा फर्नीचर बनाये जाते हैं। खैर के वृक्ष के छाल से कत्था बनाया जाता है। भोजपत्र के तने से कागज बनाया जाता है। सेमल, गुरेल और चीड़ से माचिस तीली, डिब्बी आदि बनाये जाते हैं। कपूर के पौधे से कपूर प्राप्त किया जाता है। देवदार से सुगन्धित तेल व फर्नीचर बनाये जाते हैं। विलों की लकड़ी से क्रिकेट के बल्ले बनाये जाते हैं। बालनट व साल की लकड़ी से वाद्ययंत्र बनाये जाते हैं। स्प्रूस से पैकिंग डिब्बे व फर्नीचर बनाये जाते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उत्तराखण्ड का वरदान-बांज वृक्ष

बांज एक शीतोष्णकटिबन्धीय वृक्ष है, जिसका वानस्पतिक नाम क्वरकस ल्यूकोटाइकोफोरा है। पूरे विश्व में इसकी 40 प्रजातियाँ है, लेकिन उत्तराखण्ड में केवल 5 प्रजातियां (सफेद, हरा, मोरु, भूरा या खरस फल्यांट तथा रियांज) पाई जाती है।

इस आदि वृक्ष को राज्य में शिव की जटा कहा जाता है, जो कि राज्य की नदियों को अपने में समेटे हुए हैं।

बांज, विशेषकर सफेद बांज, उत्तराखण्ड की पर्यावरण सुरक्षा एवं जनमानस की उपयोगिता के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। इस वृक्ष की जड़ों में असंख्य रोएं होते हैं। जिसके जाल में मिट्टी की मोटी-मोटी परतों व पानी को संरक्षित करने की अपार क्षमता है।

एक अनुमान के अनुसार बांज के एक वयस्क वृक्ष की जड़ों तथा उसमें संरक्षित मिट्टी में 3.5 घन मीटर पानी को रोक रखने की क्षमता होती है।

एक अन्य अनुमान के अनुसार एक बांज का वयस्क वृक्ष अपने जीवन काल में 1,40,00,000 रूपये के मूल्य का पर्यावरणीय लाभ पहुँचाता है। यह लाभ ऑक्सीजन, पर्यावरणीय प्रदूषण का नियंत्रण, भूक्षरण की रोकथाम, उर्वरकता का स्थायित्व, पानी का परिष्करण, आर्द्रता व जलवायु नियंत्रण, चिड़ियों तथा अन्य जन्तुओं को आश्रय, प्रोटीन परिवर्तन आदि के रूप में मिलता है।

इसकी लकड़ी का उपयोग ईधन, कृषि यंत्र के निर्माण आदि में किया जाता है।

उसके पत्तों का उपयोग पशुओं की खिलाने तथा जैविक खाद बनाने में किया जाता है।

अन्य प्रमुख उपयोगी वनस्पतियां एवं औषधियां

उत्तराखण्ड प्राकृतिक वनस्पतियों का खजाना है। चरक संहिता में इस क्षेत्र को हिमवंत औषध भूमिनाम कहा गया है। राज्य में लगभग 500 प्रकार की जड़ी-बूटियां पाई जाती हैं। इनमें से कई पौधों को स्थानीय लोग सब्जी या चटनी के रूप में खाने, तेल निकालने, जूस पीने तथा औषधियाँ (जैसे किल्मोड़ा को पीलिया में, घोड़चक को अतिसार में, मरोड़फली को सर्पविष और चिरायता को ज्वर उतारने में) के रूप में प्रयोग करते रहे हैं। ये पौधे राज्य के आय के प्रमुख स्त्रोत हैं। इनसे अनेकों प्रकार की आयुर्वेदिक, यूनानी, तिब्बती, एलोपैथिक एवं होमियोपैथिक आदि औषधियाँ, सौन्दर्य प्रसाधन, खाद्य पदार्थ तथा रंग आदि बनाये जाते है। ये जड़ी-बूटियाँ मुख्य रूप से तीन उद्योगों फार्मास्यूटिकल इंडस्ट्री, परफ्यूम एवं कास्मेटिक इंडस्ट्री व फूड इंडस्ट्री में प्रयुक्त होती हैं। राज्य में मिलने वाले कुछ प्रमुख औषधीय पौधे अधोलिखित हैं।

झूला

राज्य में 5500 मी. की ऊँचाई तक झूला वनस्पति की मक्कू, छड़ीला आदि कई प्रजातियाँ पाई जाती है। राज्य को इसके व्यापार से बहुत अधिक आय होती है। इसका उपयोग सांभर व गरम मसाला, रंग-रोगन, हवन सामग्री बनाने में व रेजिनोइड निकालने में किया जाता है जो सुगन्धी में प्रयोग किया जाता है। प्रथम ग्रेड का झूला फ्रांस को निर्यात किया जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

- उप-एल्पाइन तथा एल्पाइन वन (सिल्वर फर, ब्लू पाइन, स्प्रूस, देवदार, बर्च, बुरांस आदि तेलयुक्त लकड़ियों वाले वन, जो कि कच्चे ही जलते है) पाये जाते है-

2700 से 3000 मी. तक

- एल्पाइन झाड़ियां तथा घास (जूनिपर, बिली, रिब्स आदि घासे) के मैदान पाये जाते है।

-3000 से 3600 मी. की ऊँचाई तक

- एल्पाइन घास के मैदानों को उत्तराखण्ड में कहा जाता है।

-बुग्याल या पयार या मीडो या अल्पाइन पाश्वर

- चमोली में जोशीमठ के पास भ्यूंडार घाटी में स्थिति फूलों की घाटी बुग्याल की खोज 1931 में ब्रिटिश पर्वतरोही फ्रैंक स्माइथ ने की थी। इस बुग्याल के और नाम हैं।

- भ्यूंडार गंगा पार्क एवं स्पाइथ पार्क

- फूलों की घाटी का फूलों की घाटी नाम स्माइथ के किस पुस्तक के कारण पड़ा?

- द वैली ऑफ फ्लावर्स

- जोशीमठ के पास वह कौन सा बुग्याल है, जो कि नंदादेवी, कामेट, माणा, द्रोणगिरि, नीलकंठ, हाथी-गौरी आदि पर्वतों से घिरा है तथा स्कीइंग के लिए एशिया का सुन्दरतम ढलानों से युक्त है और राज्य सरकार इसको स्कीइंग केन्द्र के रूप में विकसित कर रही है? **-औली (चमोली)**
- किस बुग्याल से हिमालय का सबसे भव्य दर्शन होता है? **- बगजी (चमोली)**
- किस बुग्याल को वेदों का प्रणयन स्थल माना जाता है और अपने सुन्दर मखमली घासों के लिए प्रसिद्ध है? **- बेदिनी (चमोली)**
- किस बुग्याल में शीतकाल में स्कीइंग प्रशिक्षण दिया जाता है? **-दयारा (उत्तरकाशी)**

वन नीतियां

सन् 1865 में वनों से सम्बन्धित भारत का पहला कानून भारतीय वन अधिनियम पास किया गया। इस अधिनियम के बाद वनों की अंधाधुंध कटाई में कमी आई। इसके बाद 1884 में वनों के वैज्ञानिक प्रबन्धन के लिए कार्य योजना वन विभाग लागू किया गया।

स्वतन्त्रता के बाद 1948 में केन्द्रीय वानिकी परिषद की स्थापना की गई तथा वनों के संरक्षण, विस्तार, रखरखाओं और उसके लाभों के प्रति लोगों में जागरूकता उत्पन्न करने के लिए 1950 से देश भर में वन महोत्सवों के आयोजन शुरू किये गये।

वनों के संरक्षण, विकास एवं प्रशासन को नये सिरे से चलाने के लिए 1952 में नई राष्ट्रीय वन नीति बनायी गई और कुछ परिवर्तन के साथ 1998 में संशोधित राष्ट्रीय वन नीति बनाई गई। इस नीति के आधार पर उ.प्र. सरकार ने जो वन नीति बनाई वही उत्तराखण्ड में भी लागू हैं। इस नीति के मुख्य बिन्दु इस प्रकार हैं :

1. प्रदेश में जैव विविधता एवं वन्य जीव-जन्तुओं के संरक्षण की रणनीति एवं कार्य योजना तैयार कर उसे क्रियान्वित करना।
2. प्रदेश के रिक्त एवं बंजर स्थानों में वन रोपण करके वन क्षेत्र को बढ़ाना। सामाजिक वानिकी एवं कृषि वानिकी को प्रोत्साहित करना।
3. पारिस्थितिकीय पर्यटन को लोकप्रिय बनाने हेतु जैव विविधता वाले क्षेत्रों का व्यापक प्रचार-प्रसार करना।
4. राज्य में वन अनुसंधान एवं प्रौद्योगिकी प्रशिक्षण को विस्तृत करना।
5. वन विभाग में सूचना के आदान-प्रदान के लिए कम्प्यूटर आधारित सूचना तन्त्र विकसित करना।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वन शिक्षा

सन् 1865 में भारत के प्रथम वन महानिरीक्षक डॉ. डिट्रिच ब्रैंडिस की नियुक्ति की गई और उनकी सलाह पर 1878 में देहरादून में देश के प्रथम वन महाविद्यालय (फारेस्ट स्कूल ऑफ देहरादून) की स्थापना की गयी। 1884 में इसका नाम 'इंपीरियल फॉरेस्ट स्कूल' रखा गया। 1906 में अनुसंधान कार्य के साथ जोड़ते हुए इनका नया नाम 'इंपीरियल फॉरेस्ट रिसर्च इंस्टीट्यूट' रखा गया है। संस्थान के बढ़ते कार्य से स्थानाभाव के कारण 1914 में कार्यालय एवं प्रयोगशाला बनाकर इसे चांद बाग स्थानान्तरिक कर दिया। स्वतन्त्रता के बाद इसका नाम 'इंडियन फॉरेस्ट रिसर्च इंस्टीट्यूट' (एफ.आर. आई.) हो गया।

एफ.आर.आई. का सभागार पूरे एशिया में लकड़ी से निर्मित एकमात्र हाल है। इसमें 6 संग्रहालय है। भवन में 18,000 काष्ठ नमूनों के साथ एक काष्ठ संग्रहालय भी है।

एफ.आर.आई. का मुख्य कार्य वानिकी संस्थान नीति को सूत्रित करना और इसके संघटक संस्थानों, केन्द्रों और सम्बन्धित संगठनों एवं विश्वविद्यालयों के वानिकी अनुसंधान कार्यकलापों, कार्यक्रमों का समन्वय करना है। वर्तमान में इसके अधीन 8 संस्थान और 3 केन्द्र कार्यरत हैं। मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा 1991 में वन अनुसंधान संस्थान को सम विश्वविद्यालय का दर्जा प्रदान करने के बाद से संस्थान में शैक्षिक कार्यकलापों में कई गुना बढ़ोत्तरी हुई है। 2006 में इसने प्लेटिनम जुबली मनाया।

1929 में कुलागढ़ (देहरादून) में एक और अनुसंधान केन्द्र (वन अनुसंधानशाला) की स्थापना की गयी। बाद में फॉरेस्ट रेन्जरों के प्रशिक्षण के लिए देहरादून में ही इंडियन फॉरेस्ट रेन्जर कालेज की स्थापना की गयी।

वन सम्बंधी आन्दोलन

वनों के संरक्षण, अधिकार तथा पर्यावरणीय असन्तुलन आदि को लेकर राज्य में अनेक जन आन्दोलन चले और कुछ तो अभी भी चल रहे हैं। प्रमुख जन आन्दोलन इस प्रकार हैं।

रंवाई आन्दोलन

स्वतन्त्रता से पूर्व टिहरी राज्य में राजा नरेन्द्रशाह के समय एक नया वन कानून लागू किया गया, जिसके तहत यह व्यवस्था थी कि किसानों की भूमि को भी वन भूमि में शामिल किया जा सकता है। इस व्यवस्था के खिलाफ रंवाई की जनता के आजाद पंचायत की घोषणा कर रियासत के खिलाफ विद्रोह शुरू कर दिया। इस आन्दोलन के दौरान 30 मई, 1930 को दीवान चक्रधर जुयाल की आज्ञा से सेना ने आन्दोलनकारियों पर गोली चला दी जिससे सैकड़ों किसान शहीद हो गये। आज भी इस क्षेत्र में 30 मई को शहीद दिवस के रूप में मनाया जाता है। इस आन्दोलन को तिलाड़ी आन्दोलन भी कहा जाता है।

चिपको आन्दोलन

सत्तर के दशक में बाजों के साथ 'हिम पुत्रियों की लरकार, वन नीति बदले सरकार', वन जागे वनवासी जागे, रेणी गाँव के जंगलों में गूंजे ये नारे आज भी सुनाई दे रहे हैं। ध्यातव्य है कि इस आन्दोलन की शुरूआत 1972 से शुरू वनों की अंधाधुंध एवं अवैध कटाई को रोकने के उद्देश्य से 1974 में चमोली जिले में गोपेश्वर नामक स्थान पर एक 23 वर्षीय विधवा महिला गौरी देवी द्वारा की गयी थी। इस आन्दोलन के तरह वृक्षों की सुरक्षा के लिए ग्रामीणवासियों द्वारा वृक्षों को पकड़ कर चिपक जाया जाता था। इसी कारण इसका नाम चिपको आन्दोलन पड़ गया। चिपको आन्दोलनकारी महिलाओं द्वारा 1977 में एक नारा दिया गया, जो काफी प्रसिद्ध हुआ। वह नारा था- "क्या हैं इस जंगल के उपकार, मिट्टी, पानी और बयार, जिंदा रहने के आधार।"

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चिपको आन्दोलन को अपने शिखर पर पहुँचाने में पर्यावरणविद् सुन्दरलाल बहुगुणा और चंडी प्रसाद भट्ट ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। बाद में इस आन्दोलन का कार्य क्षेत्र समग्र रूप से पर्यावरण की रक्षा हो गया तथा बहुगुणा जी ने 'हिमालय बचाओ देश बचाओ' का नारा दिया। इस आन्दोलन के चमोली के चंडी प्रसाद भट्ट को 1981 में रेमन मैग्सेसे पुरस्कार मिला था।

1977 का वन आन्दोलन

वनों की नीलामी के विरोध में अक्टूबर 1977 में राज्य स्तरीय आन्दोलन शुरु हुआ। व्यापक विरोध के बावजूद केवल नीलामी की तिथि स्थगित कर 27 नवम्बर को तय हुई। उस दिन हड़ताल, तोड़फोड़ हुई। नैनीताल का शैले हाल आन्दोलनकारियों द्वारा फूंक दिया गया। फलस्वरूप छात्रों की गिरफ्तारियां हुई। फरवरी 1978 में सम्भवतया पहली बार उत्तराखण्ड बन्द हुआ। द्वाराहाट के चोंचरी व पालड़ी (बागेश्वर) में जनता ने ढोले-नगाड़ो के साथ वनों का कटान बन्द कराया।

डूंगी-पैंतोली आन्दोलन

चमोली जनपद के डूंगी-पौंतोली में बांज का जंगल काटे जाने के विरोध में जनता द्वारा आन्दोलन किया गया। यहां बांज के जंगल को सरकार ने उद्यान विभाग को हस्तान्तरित कर दिया था। महिलाओं के विरोध के बाद सरकार को अपना फैसला वापस लेना पड़ा।

पाणी राखो आन्दोलन

अस्सी के दशक के मध्य से उफरैंखाल गांव (पौढ़ी गढ़वाल) के युवाओं द्वारा पानी की कमी को दूर करने के लिए चलाया गया यह आन्दोलन काफी सफल रहा। पानी की कमी से बंजर हो गये सीढ़ीदार पहाड़ी खेतों में अब पुनः हरियाली छा रही है। साथ ही पेड़ों की अंधाधुंध कटाई से नंगे हो गये पहाड़ एक बार फिर धने जंगल में बदल रहे हैं।

इस आन्दोलन के सूत्रधार उफरैंखाल के शिक्षक सच्चिदानन्द भारती ने 'दूधातौली लोक विकास संस्थान' का गठन कर इस क्षेत्र में जनजागरण और सरकारी अधिकारियों पर दबाब बनाकर वनों की अंधाधुंध कटाई को रुकवाया।

अब तक इस आन्दोलन के तहत बच्चों, नौजवानों व महिलाओं ने 15 लाख से भी अधिक पेड़ लगाए। इस आन्दोलन तहत गठित 'महिला मंगल दल' अपने गाँवों के चहुमुंखी विकास हेतु अनेक कार्य कर रहे हैं।

रक्षा सूत्र आन्दोलन

वृक्ष पर रक्षा सूत्र बाँध कर उसकी रक्षा का संकल्प लेने सम्बंधी यह आन्दोलन 1994 में टिहरी के भिलंगना क्षेत्र से शुरू हुआ। इस आन्दोलन का मुख्य कारण ऊँचाई के वृक्षों के कटान पर लगे प्रतिबन्ध के हट जाने के बाद उ.प्र. वन विभाग द्वारा ढाई हजार वृक्षों में चिन्ह लगाकर उनके काटने की अनुमति देना था। इसके पहले की इन्हें काटा जाता है डालगाँव, खवाड़ा, भेटी, भिगुन, तिनगढ़ आदि गाँवों की सैकड़ों महिलाओं ने आन्दोलन छेड़ दिया और चिन्ह वाले वृक्षों पर रक्षा सूत्र बाँधे जाने लगे। परिणाम स्वरूप तात्कालिक तौर पर वृक्षों का कटान रुक गया। आन्दोलन के कारण आज तक रयाला के जंगल के वृक्ष चिन्ह के बावजूद सुरक्षित हैं। इन आन्दोलन का प्रभाव उत्तरकाशी आदि जिलों में भी रहा।

इस आन्दोलन का नारा था- **'ऊँचाई पर पेड़ रहेंगे / नदी ग्लेशियर टिके रहेंगे / पेड़ कटेंगे, पहाड़ टूटेंगे / बिना मौत के लोग मरेंगे / जंगल बचेगा, देश बचेगा / गाँव-गाँव खुशहाल रहेगा'।**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

झपटो छीनो आन्दोलन पैणी, लाता, तोलमा आदि गंवों की जनता ने वनों पर परम्परागत हक बहाल करने तथा नन्दादेवी राष्ट्रीय पार्क का प्रबन्ध ग्रमीणों को सौंपने की मांग को लेकर 21 जून, 1998 को लाता गांव में धरना प्रारम्भ किया और 15 जुलाई को समीपवर्ती गांवों के लोग अपने पालतू जानवरों के साथ नन्दादेवी राष्ट्रीय पार्क में घुस गए। अतः इस आन्दोलन को 'झपटो' 'छीनो' का नाम दिया गया था।

मैती आन्दोलन

मैती शब्द का अर्थ (गढ़वाल में) मायका होता है। इस अनूठे आन्दोलन के जनक कल्याण सिंह रावत के मन में 1996 में उपजा एक विचार, इतना विस्तार पा लेगा, इसकी उनको भी कल्पना नहीं थी। ग्वालदम इण्टर कालेज की छात्राओं को शैक्षिक भ्रमण कार्यक्रम के दौरान बेदनी बुग्याल में वनों की देखभाल के लिए तल्लीनता से जुटे देख कर श्री रावत ने महसूस किया कि पर्यावरण संरक्षण में युवतियां ज्यादा बेहतर ढंग से कार्य कर सकती हैं। इसके बाद ही मैती आन्दोलन उसका संगठन और तमाम सारी बातों ने आकार लेना शुरू किया।

इस आन्दोलन के तहत आज विवाह समारोह के दौरान वर-वधू द्वारा पौधा रोपने और इसके बाद मायके पक्ष के लोगों के स्तर पर उसकी देखभाल की परम्परा विकसित हो चुकी है। विवाह के निमंत्रण पत्र पर बकायदा मैती कार्यक्रम छपता है और इसमें लोग पूरी दिलचस्पी लेते हैं।

इस संगठन में यूं तो केवल अविवाहित युवतियां ही शामिल होती हैं लेकिन भावनात्मक तौर पर हरेक ग्रामीण को इसे दिली सहयोग हासिल होता है। गाँव की सारी युवतियां आपस में मिलकर मैती संगठन के संचालन के लिए अध्यक्षा चुन लेती हैं जिसे 'दीदी' का दर्जा प्राप्त होता है। इसके बाद उसके निर्देश पर हर युवती अपने-अपने घरों में बीज या पौधा रोपती हैं। बरसात के दिनों में इन पौधों को पंचायती या अन्य किसी भूमि पर सामूहिक तौर पर लगा दिया जाता है।

पर्यावरणविद् सुंदरलाल बहुगुणा जी के उद्गार

पर्यावरणविद् सुंदरलाल बहुगुणा का सम्मेलन में सम्मान देहरादून। राष्ट्रीय जनजातीय सम्मेलन एवं युवा महोत्सव के समापन समारोह में पहुंचे पर्यावरणविद् सुंदरलाल बहुगुणा ने अरण्य संस्कृति को पुनर्जीवित करने की वकालत की। उन्होंने कहा कि हवा, पानी और मिट्टी के संरक्षण के आधार पर ही विकास की योजनाएं बनें। आदिवासी जीवन पद्धति जंगलों पर आधारित है। वे स्वावलंबी थे। अपनी जरूरत की सारी चीजें अपने आसपास से ही जुटाते थे। भारत को अपना गौरव वापस चाहिए, तो आदिवासी जीवन पद्धति को बढ़ाए। आज आदिम संस्कृति पर सभ्यता का हमला हो रहा है। यह भोगवाद की सभ्यता है। भोगवाद बाजार की देन है। भोग की चीजें प्रकृति का शोषण करके तैयार होती हैं। इससे ही जंगल नष्ट हो रहे हैं। हवा और जल खत्म हो रहा है। रसायन के ज्यादा उपयोग से मिट्टी नशीली हो रही है। उन्होंने कहा कि बढ़ती जनसंख्या के कारण जमीन कम हो रही है। इसलिए अब भविष्य वृक्ष खेती का है। उन्होंने कहा कि उत्तराखंड की स्थिति बहुत खराब है। उन्होंने कहा कि आज देश के सबसे गरीब जिले अल्मोड़ा और टिहरी उत्तराखंड में ही है। उत्तरकाशी, बागेश्वर और पिथौरागढ़ भी गरीबी के शिकार हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वृक्षायुर्वेदान्तर्गत वनौषधि सम्पदा

वृक्षों के वानस्पतिक वर्गीकरण एवं उनका आधुनिक वनस्पतिशास्त्र के साथ सामंजस्य

जिस प्रकार आयुर्वेद पद का वैदिक साहित्य में कहीं भी उल्लेख नहीं है यद्यपि उसके आठों अंगों की उसमें प्रचुर सामग्री है। उसी प्रकार वृक्षायुर्वेद शब्द का भी नामतः वैदिक साहित्य में कहीं भी निर्देश नहीं है किन्तु वृक्ष पद ऋग्वेद संहिताओं में वर्णित अनेक वर्गीकरण के घटक भी वैदिक वाङ्मय में प्रचुरशः उपलब्ध हैं। इस तथ्य से जोड़ने के लिए चरक एवं सुश्रुत की संहिताओं में निहित द्रव्यों के वर्गीकरण से परिचय लेना आवश्यक है तभी हम वैदिक साहित्य में प्रतिपादति इन सभी शब्दार्थ से ह्रदयंगम कर सकेंगें। सुश्रुत ''द्रव्यपि'' (सूत्र 1/28) कहकर द्रव्य से औषधियाँ करता है। चरक ने जांगम, औद्भिद और पार्थिव द्रव्य को तीन भागों में विभक्त किया है। जांगम प्राप्ति उपलब्ध–

1. **दा सुपर्णा सयुजा सखायः समानं वृक्षं परिषष्वजाते।**
   तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यन्नन्यो अभिचाकशीति॥
   ऋग्वेद 1/164/20
2. **यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवतेवाधि विश्वे।** तदेव 1/164/22
3. **अध्वर्यवो यो अपो वव्रिवांसं वृत्रं जघानाशन्येव वृक्ष्म।** तदेव 2/14/2
4. **वियो रसस्पर्श ऋषिभिर्नवेभि वृक्षों न पक्वः सृण्यो न जेता।** तदेव 4/20/5
5. **भीताय नार्धमानाय सप्तवर्धये।**
   मायाभिर श्विना युवं वृक्षं संच वि पाचथः॥

द्रव्य हैं कस्तूरी, दुग्ध, गोरोचन आदि। औद्भिद द्रव्य वह है जो पृथ्वी को फोड़ कर निकलता है यथा–

गोधूम, हरीतकी आदि। भौम वे द्रव्य है जो भूमि से खोद कर निकाले जाते है। यथा–

पारद, गन्धक, सुवर्ण, ताम्र, लौह आदि धातुएं। ये जांगम द्रव्य जरायुज, अण्डज, स्वेदज एवं उदभिज्ज भेद से चार प्रकार के माने गये हैं। आदि के तीन नाम से ही स्वतः स्पष्ट हो जाते हैं अन्तिम उद्भिज्ज वे हैं जो कुछ समय तक पृथ्वी में रह कर पुनः पृथ्वी को फोड़ कर निकलते। यथा–

वीरबहूटी, मण्डूक (शीतनिद्रा की अवस्था से) प्रभृति। औद्भिद द्रव्य भी वनस्पति, वीरूछ वानस्पत्य एवं औषध भेद से चार प्रकार के माने गये है जिनमें सूक्ष्म पुष्प लगते हैं या पुष्प लगते ही नहीं। इन्हें ''वनस्पति'' कहते है। यथा–

वट, उदुम्बर, प्लक्ष ये सपुष्प और हंसपदी, मयूर–विंग आदि अपुष्प होते है जिनमें लता और गुल्म हो तो वीरूध कहलाते हैं। यथा–

गन्ध प्रसारिणी आदि। वानस्पत्य वे हैं जिसमें पुष्प और फल दोनों स्पष्ट रूप से मिलते हैं। यथा–

आम, जामुन आदि। औषधि वह है जो फल के पक्व होने पर नष्ट हो जाय। यथा–

गेहूँ यव आदि। सुश्रुत ने स्थावर एवं जांगम भेद से द्रव्य के दो विभाग किये हैं इनमें स्थावर के वनस्पति, वृक्ष, वीरूध एवं औषध ये चार भेद किये हैं। इनमें से जिनमें पुष्प लगे बिना ही फल लग जाय

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उन्हें वनस्पति, फूल के बाद फल लगने से वृक्ष, फैलने वाली लता को वीरूध एवं फल के पाक हो जाने पर जो समाप्त हो जाये उन्हें औषध कहते है-

तत पुनस्त्रिविधं प्रोक्तः जंगमौदिभिदपार्थिवम्।
औदभिदं तु चतुविधम्॥
वनस्पतिस्तथा वीरूद् वानस्पत्यस्तथौषधिः,
फलैवनस्पतिः पुष्पैर्वानस्पत्यः फलैरपि।
ओषध्यः फलपाकान्ताः प्रतानैर्वीरूधः स्मृता॥

(चरक सूत्र 1/68,71,72)

वैदिक साहित्य उपर्युक्त चारों भेदों (औषधि, वनस्पति, वानस्पत्य एवं वृक्ष) से पूर्ण परिचित था। रोगशामक पौधे "भोजन" नाम से ऋग्वेद में अभिहित है और जो "भोजन" के गुणों से सम्यक्तया परिचित हो उसे "भिषक" कहा जाता था। चरक ने इसकी पुष्टि करते हुए कहा है-

भिषङ नाम यो भिषज्यति। (च.वि. 8/86)

अर्थात् भिषक् वह है जो भेषज (औषधि) से रोग की चिकित्सा करता है। इसके अतिरिक्त चरक का इस विषय में यह भी कथन है कि औषधि के नाम, रूप ज्ञान से परिचित होना चाहिए। यदि उसे नाम, रूप एवं गुण के भेद से औषध का ज्ञान नहीं है तो वह अनर्थ कर हो सकती है-

प्राणिनां पुनर्मूलमाहारो बलवर्णोजसां चा स षटसु रसेस्वायत्तः, रसाः पुनर्द्रव्याश्रयाः, द्रव्याणि पुनरोषधयः, तास्तु द्विविधाः स्थावरा जंगमाश्च।

(सुश्रुत, सूत्र 1/28)

तातां स्थावराश्चतुर्विद्याः वनस्पतो वृक्षा, वीरूध ओषधय इति। तातु अपुष्पाः फलवन्तो वनस्पतयः, पुष्पफलवन्तो वृक्षाः, प्रतानवत्यः स्तम्बिन्यश्च वीरूधः फलापाकनिष्ठा ओषधय इति॥

(तदेव, सूत्र 1/29)

औषधीर्नामाख्याभ्यां जानते ह्यजपा वने।
न नामज्ञानमात्रेण रूप ज्ञानेन वा पुनः।
औषधीनां परां प्राप्ति कश्चिद् वेदितमर्हति।
योग वित्वरूपज्ञस्तासां तत्व विदुच्यते॥

(करक, सू. 1/120-122)

औषधिं हयन भिज्ञातं नामरूपगुणैस्त्रिभिः।
विज्ञान चापि दुर्युक्तमनर्थायोपपद्यते॥

उपर्युक्त आयुर्वेद के आलोक में हम अब पौधों के वर्गीकृत नामों की चर्चा वैदिक वाङ्मय में उपन्यस्त सन्दर्भो के अनुसार प्रस्तुत करते हैं।

औषधि

स्थूल रूप से वैदिक साहित्य में वनस्पतियों को औषधि अथवा वीरूध, पौधों और वन अथवा वृक्ष में विभक्त किया गया है वीरूध के विपरीत औषधि का प्रयोग उन पौधों के लिए हुआ है जिनमें उपशमन शक्ति अथवा कुछ अन्य मानवोपयोगी गुण हों, जबकि "वीरूध" वनस्पतियों के लिए एक जातीय शब्द है, किन्तु कभी-कभी जब वह औषधि के साथ आया है तो वहां ऐसे पौधों का द्योतक है जिनमें कोई औषधीय गुण नहीं है।

पौधों के उपभागों की तालिका बाद की संहिताओं में दी हुई हैं। इनके अन्तर्गत जड़-मूल, तूल, तन्त्र, काण्ड, टहनियां (वल्श), पुष्प और फल आते है। जबकि वृक्षों में इन भागों के अतिरिक्त स्कन्ध, शाखा और पत्तें पर्ण भी होते है। अथर्ववेद में पौधों का एक विस्तृत विभाजन दिया हुआ हैं।

ऋग्वेद के दशम मण्डल का 97वां सूक्त। "औषधि" एक बहुप्रयुक्त यौगिक शब्द है जो शतपथ ब्राहमण (6.1. 12) और बाद में आता है। पौधों के औषधिक गुण द्वारा उनके लिए अथर्ववेद (12.1. 2) में प्रयुक्त विशेषण "नाना वीर्यो" (विभिन्न शक्तियुक्त) का समाधान हो जाता है।

वेदों में जो शब्द बहुत बोधगम्य नहीं हैं। यथा-

जो फैलते हैं (प्र-स्तृण्वतीः), जो झाड़ीदार होते है। (स्ताम्बिनी), जिनमें केवल एक खोल होती है (एक शुङ्गः) जो आरोही होते है (प्रतन्वतीः), जिनमें अनेक नाल होती है (अंशुमती), जिनमें जोड़ होती है (काण्डिनी) अथवा जिनकी शाखाएं फैली होती है (वि-शाखा)। ऋग्वेद में पौधों को फलवाला

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(फलिनीः) फूलने वाला (पुष्पावती) और पुष्पों से युक्त कहा गया है।

भेषज

ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में उपन्यस्त भेषज शब्द चिकित्सा में उपचार माध्यम का द्योतक है। इसका प्रयोग लाक्षणिक आशय में भी किया गया है। (शतपथ प्रा. 13-3-1-1: ऐतरेय ब्रा. 3.41) पौधों, जलों और अभिचारों की, बहुधा ही, औषधियों के रूप में गणना कराई गई है अथर्ववेद की अधिकांश चिकित्सात्मक पद्धतियां केवल सहानुभूतिपूर्ण अभिचार की ही उदाहरण हैं। उदाहरण के लिए एक सूक्त (1.22: ब्लूमफील्ड: अथर्ववेद के सूक्त 264) में पीतरोग (कमला) के पीतत्व को पीत पक्षियों पर स्थानान्तरित हो जाने की स्तुति की गई हैं। एक अन्य सूक्त (7.116: ब्लूफील्ड उ.पु., 565) में ज्वर को मेढ़क के माध्यम से भागने का उल्लेख है, क्योंकि मेढ़क, जो अग्नि (ऋ ग्. 10.16, 14: अथर्ववेद 18.3.60) को ठंडा करने का एक समर्थ माध्यम है। 10.97, 3.15, तु. की स्सिमर: ऑल्टिनडिशें लेबेन 57 :

(अ) तन्नो वातो मयोभु वात भेषजम्। (1.99.4)

(इ) त्वादत्तेभी रूद्रं शतमेभिः शतं हिमा आशीय भेषजेभिः। (तदेव 2.33.2)

अथर्ववेद 5.29 (तदेव 6.21.2)

अथर्ववेद और सूत्रों (आश्वालायन, श्रौतसूत्रों 10.7.3, शंखीयन श्रौतसूत्र 16.2.10: पंचविंश ब्राह्मण 12.9.10) में भेषज पद का बहुवचन में प्रयोग मिलता है। यह इस आशय में अथर्ववेद के सूक्तों का द्योतक है कि उसके सूक्त उपशामक शक्ति से युक्त हैं।

शतपथ ब्राह्मण (12.7.1.12) और निरूक्त (10.7.25) में भेषज की भांति भैषज्य उपशामक औषधि का द्योतक है।

वनस्पति

वैदिक वाङ्मय में वनस्पति प्रमुखतः वक्ष (ऋग्वेद 1.166.5: 3.34.10:5.2.4: 41.8 आदि) अथर्ववेद 11.6.1 (वीरूध और औषधि से भिन्न होने के रूप में); 9.14 आदि का और उसके पश्चात् "स्तंभ" (तैत्ति. सं. 6.2.84) अथर्ववेद 9.3.11 (ऋग्वेद 2.374; 3.53.20; 6.47.26; निरूक्त 9. 11) इससे लकड़ी का ढ़ोल (वाजसनेयि सं. 9.12; अथर्व 12.3.15) अथवा लकड़ी का कवच (अथर्व 6. 85.1; 10.3.8 11) अर्थ है जबकि कुछ स्थलों (ऋग्वेद 1.91.6;) पर वह पौधों में श्रेष्ठम सोम का द्योतक।

वानपत्य

अथर्ववेद के दो स्थलों पर सक "छोटे-वृक्ष" का द्योतक प्रतीत होता है। अन्यत्र (क्लीव रूप में) इसमें "वृक्ष के फल" (वनस्पति) का आशय निहित है।

8.8, 14; 11.9, 24 1 तु. की. 12.1.27 शतपथ ब्राह्मण 11.1., 72; 3,1,3,; ऐतरेय ब्राहमण 8.16.1.

बौद्ध

वाङ्मय में वनस्पतियों का वैदिक एवं आयुर्वेदिक वाङ्मय के समान कोई विभाग नहीं मिलता। बौद्धवाङ्मय की हीनयान शाखा (त्रिपिटक साहित्य) में यद्यपि तृण (तिण्ण), लता, झाड़ी, (गच्छ), वृक्ष (रूक्ख), भेषजपादप (औषधि), वनस्पति प्रभृति भेद से विभाग है किन्तु वह व्यवस्थित रूप से श्रेणीकृत नहीं है वह आयुर्वेदीय संहिताओं में नहीं मिलता।

मूलबीज

इसके अन्तर्गत हरिद्रा, शुण्ठी या श्रृंगवेर, वचा, अश्वत्थ अतिविषा, कटुक-रोहिणी, उशीर, भद्रमुस्तक प्रभृति का समावेश है जो बीज या मूलरूप में ग्राह्य है।

स्कन्धबीज

इसके अन्तर्गत अश्वत्थ, न्यग्रोध, प्लक्ष, उदुम्बर, कपितन आदि समाहित है जो तने से निकलते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

फलबीज

इसके अन्तर्गत इक्षु, वेणु, नल आदि का सन्विवेश है। इसमें स्तंभ का ही उपयोग होता है।

अग्रबीज

इसमें फणिज्झक, हीवेर आदि आते हैं, जो कि पौधों के ऊग्र भाग के काटने से बढ़ते है और उसी का भैषज्यार्थ उपयोग होता है।

बीजबीज (प्रोपेगेटड फ्राम सीड्स)

इसमें अन्न (पुब्बण्ण) एवं दाल (अपरण्य) का समावेश है फली में पाये जाने वाले अन्न का ही उपयोग होता है।

अंग-प्रत्यंगपरक भेषजात्मक विभाग

महावग्ग (6.2.4) में जड़ी बूटियों का विभाग चरकवत् दृष्टिगत होता है।

मूलनी (मूलानि भेषज्जानि)

रूग्ण भिक्षु तने वाली औषधियों का सेवन करते थे, भगवान, बुद्ध ने उन्हें स्तम्भ मूल से होने वाली औषधियों के सेवन की अनुमति दी थी जिनमें हरिद्रा, श्रृंगवेर, वचा, अतिविषा, कटुकरोहिणी, उशीर एवं भद्रमुस्तक प्रमुख थे।

फलिनी (फलानी भेषज्जानि)

भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को फल से निष्पिन्न होने वाली औषधियों के छेदन की अनुमति दी थी और ये है विडंग, पिप्पली, मरिच, हरीतकी, आमलकी एवं गोष्ठफल (ग्रेवरिया टिलियाफोलिया)।

पर्णिनी (पण्णनि भेषज्जानि)

इसके अन्तर्गत भगवान बुद्ध ने उन औषधियों का वणन किया। जिनकी पत्तियां भेषज्य के लिए व्यवहृत होती थी यथा निम्ब, कुटज, पटोल, तुलसी, एवं कार्पास।

क्वाथ या कषायात्मक (कस्सावानि भेषज्जानि)

इसके अन्तर्गत निम्ब, कटुज, पक्कव, पटोल एवं नक्तमाल या करंज का समावेश है जो बुद्ध द्वारा भैषज्यार्थ ग्राह्य थी।

निर्यासात्सक (जतूनि भेषज्जानि)

भगवान बुद्ध ने निर्यासात्सक औषधियों के सेवन की अनुमति दी थी जिनमें हिंग, बब्बूल, गोंद का समावेश है।

बौद्धों के म्हायान साहित्य में भी वनस्पतियों के विभाग का विशद वर्णन मिलता है। ऐसा विभाग अन्यत्र उपलब्ध नहीं है।

औषधि-वनस्पति

औषधि - वनस्पतियों में कुछ का उल्लेख पहली बार पार्णिनीय सूत्रों में मिलता है। पुष्प, पत्र, फल, मूल आदि के आधार पर औषधियों के नामकरण का जो अध्याय प्राचीन भारत में आरम्भ हुआ था, उसकी भी हल्की-सी रेखा इस चित्र में है। औषधि-वनस्पतियों के जंगल और वनों का भी उल्लेख आया है।

वण (वन)

इस शब्द के दो अर्थ थे, एक तो प्राकृतिक अरण्य जैसे पुरगावण, मिश्रकावण (8/4/4) दूसरे वृक्षों और फलों के जंगल या उद्यान जैसे आम्रवण, खदिरवण, इक्षुवण तो सामान्य नाम थे। (असंज्ञायामपि 8:4/5), बड़े प्राकृतिक वन को पाणिनी ने अण्य (4/1/49) और कात्यायन ने अरण्यानी कहा है।

वन दो प्रकार के थे- 1 औषधिवन जैसे मूर्वावन, मूर्याबिन और 2. वनस्पतिवन जैसे शिरीषवन, देवदारूवन (8/4/6) विभाषोषधिवनस्पतिभ्यः।

औषधि-वनस्पति

वनस्पति जगत के दो विभाग किए गए है- औषध और वनस्पति। वनस्पति और वृक्ष दोनों एक दूसरे के पर्याय थे, जैसे 4/3/135 सूत्र में (अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षभ्यः) कात्यायन इससे सहमत है (2/4/12) तृण और धान्य जिन्हें सूत्र 2/4/12 में वृक्ष से अलग गिना हैं, औषधि के अन्तर्गत आते थे।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पतंलति ने ''मूल-स्कन्ध-फल पलाशवान'' वाक्य में वृक्ष के वितान का भव्य चित्र खींचा है (1/2/45), वा. 9 पाणिनि ने पर्ण, पुष्प, फल, मूल के आधार पर औषधियों के नामकरण के सिद्धान्त का उल्लेख किया है। (पाककर्णपर्णपुष्प फल मूल गानोत्तर पदाच्चख (4.1.64)। उदाहरण के लिए ओदनपाकी शंगुकर्णी, शालपणी। शंखपुष्पी, दातीफली, दर्भमूली आदि। ये सब जड़ी-बूटी और लताओं के नाम थे। फलों का नाम प्रायः वृक्षों के नाम से पड़ता है, जैसे आमलकी वृक्ष का फल आमलक, जम्बू (फले लुक् 4/3/163; लुक् तद्वितलुकि से ईकार का लोप)।

वृक्ष

वृक्षों के निम्नलिखित नाम सूत्रों में है:-

1. अश्वत्थ (4/3/48; अश्वत्थ वृक्ष के फलने का समय भी अश्वत्थ कहा गया है);
2. न्यग्रोध (6/3/5; इसके लिये पट शब्द का भी प्रयोग होने लगा था, ये वैदिक साहित्य में ज्ञात था, 6/2/82);
3. प्लक्ष (4/3/164; इसका फल और जंगल प्लक्षवण 8/4/5);
4. आम्रवण (यह आम्र का प्राचीनतम उल्लेख है);
5. पलाश (4/3/141, पलाशदिगण में अन्य वृक्ष खदिर, शिंशपा, करीर, शिरीष हैं);
6. विल्व (4/3/136);
7. खदिर (8/4/5 खदिरवण एक विशेष वन का नाम और खदिर वृक्ष का जंगल);
8. शिंशपा (7/3/1);
9. वरण (4/2/82) हिन्दी वरना वरण जातक के अनुसार गंधार देश में तक्षशिला के बाहर वरण वृक्षों का जंगल था;
10. शमी (5/3/88), 4/3/142, हिन्दी छोकरा या जंड़, इसका पौधा शमीर या इससे बनी हुई चीजें शमील कहलाती थी);
11. पीलु (5/2/24, 6/3/121), शमी और पीलु बाहाली देश में बहुत होते थे, पीलु वृक्ष के नीचे होने वाली घटनाओं और लेन देन को पैलमूल कहा गया था 5/1/97, ज्ञात होता है कि चोरी और लूटपाट के कामों के लिये जो कि वाहीक देश में पीलु के जंगलों के प्रायः होते थे इस तरह के शब्दों का प्रचलन भाषा में या-पीलुमूले दीयते कार्य वा पैलुमूलम् 5/1/97, व्युष्टादिगण;
12. काशर्य (8/4/5), शलवृक्ष, शर्श्यवण या शालवृक्ष के जंगल तराई प्रदेश में थे;
13. पीयूक्षा (8/4/5, प्लक्ष जाति है वृक्षों का एक भेद, तालादि 4/3/52 और काशादिगण 4/2/80 में भी इसका पाठ है);
14. ताल (4/3/152);
15. जम्बू (4/3/165, फल जाम्बव या जम्बू);
16. हरीतकी (4/3/166 फल भी हरीतकी);
17. वंश (5/1/50, वेणु और मस्कर 6/1/154);
18. कारस्कर (6/1/156);
19. सिघ्रका (8/4/4, सामविधानब्राह्मण 3/6/9 और तैत्तिरीय ब्रा. 3/4/10) में भी सैध्रिक वृक्ष का आलेख हैं। यह कत्थे की तरह का वृक्ष था); विष्टर (वृक्षासनयोर्विष्टरः, 6/3/93, यह कोई विशेष वृक्ष था, या सामान्य वृक्षवाची शब्द था, निश्चय नहीं)।

गणों में भी कुछ वृक्षों के नाम हैं, यथा कर्कन्धू और बदर (5/2/24), बात (5/2/24), कुटज (5/1/50), पाटली (4/3/136), पतंजलि के पाटलानि यानि उदाहरण से (4/3/166 वा. 2); सिद्ध है कि यह बिल्वादि गण में पढ़ा गया था)। विकंकत (4/3/141), इंगुदी (4/3/164), शाल्मली (4/2/82), उदुम्बर (4/3/152), नीप (4/3/152), दारू (पीतदारू या देवदारू, 4/3/139), रोहीतक (4/3/152), विभीतक (14/3/152), शिरीष (4/2/80), स्पन्दन (4/3/141), अति प्राचीन वृक्ष

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जिसका ऋग्वेद में भी उल्लेख है, दृढ़ता के कारण रथ बनाने में उपयोग होता था। कष्टकार (4/3/152), करीर (4/3/141), करीरप्रस्थ ग्राम का नाम (6/2/87)।

तृण-सूत्रों में निम्नलिखित तृणों का उल्लेख हैं- शर (8/4/5), पाणिनोनि शखण औरशरावती नदी का उल्लेख है, पतंजलि ने शर शीयम् (2/4/12) लिखा है जिसमें शौर्य ऋग्वेदन कालीन (1/191/93) सैर्य है), काश (4/2/80, 6/2/82), कुश (भाग 5/3/105, कुशल (5/2/63), जैसे शब्दों में अन्तर्निहत, स्त्रीलिंग कुशा (4/1/42), पतंजलि में कुशकासम नाम है, (2/4/12), मुंज (3/2/117) इसे सड़ा, विपूय, क्षर वान आदि कहते थे, इसकी सींक इषीका, (6/3/65), नड (4/2/87), नड्वान (4/2/88), नड्बल, (52/91), नडकीय जैसे स्थान नामों में शाद (4/2/88, एक घास), ऐतत (4/2/87), कातृण (6/3/103), ऊमर के अनुसार सौगन्धिक तृण, सम्शवतः वैदिक साहित्य का सुगन्धितेजन।

इसके अतिरिक्ति गणों में भी ये नाम है- वीरण जिसे उशीर भी कहा जाता था (4/5/53), (4/2/80, खस), बल्बज (4/2/80, 4/3/144), (4/3/142, 2/4/11 में दर्श शरम्), पूतिक (2/4/11), वैदिक साहित्य में प्रयुक्त।

पुष्प (4/1/64) कुमुद (4/2/80), (4/2/87), पुष्कर (5/2/135), पुष्पकरादिगण में पद्य उत्पल, बिस, मृणांल पर्यायों का भी उल्लेख है। हरीतक्याद्रि गण में शेफालिका का नाम है। (पारिजात या हरिसिंगार)। पतंजलि ने उससे रंगे हुए शेफालिक वस्त्र का उल्लेख किया है (5/3/55) पर भाष्य)। पाणिनी के अनुसार पुष्पों के नाम उनके फूलने की ऋतु से रखे जाते थै (कालात् पुष्पत् (4/3/43), जैसे वासंती वहनता (कौशिक)।

औषधि-सूत्र (4/1/64) पाक, कर्ण, पर्ण, पुष्प मूल, वालोत्तर पदाच्च में संकेत है कि जड़ी बूटियों के नाम उनके पत्ते, फूल, मूल आदि की विशेषताओं के अनुसार रखें जाने लगे थे। अणादि गण (4/1/4) में त्रिफला का और भाष्य में ब्राह्मी का उल्लेख (6/4/171)।

फल-सूत्र (4/3/163-64) से सूचित होता है कि पाणिनी फल को वृक्षों से सम्बन्धित मानते हैं। किन्तु वार्तिक और भाष्य में चावल, जौ, दाल, तिल आदि वार्षिक पौधों की उपज भी उनका फल माना गया है। (फल पाक शुषामुप-लयानम्)। मनु के औषधियों को फल पाकान्त कहने का भी यही भाव है (1/146)। फल वाले वृक्षों को फलेग्रहि कहा जाता था। (3/2/26) फले लुक् सूत्र (4/3/163) में भाषा के उस नियम की ओर संकेत किया जाता है जिसके अनुसार वृक्ष और उसके फल का नाम प्रायः एक सा होता है।

आम्र, बिल्ब, जम्बू का सूत्रों में उल्लेख है। पल्क्ष और हरीतकी के नाम भी हैं। द्राक्षा का पाठ (4/3/167) के गण में है। पाणिनी कृते कापिशायन के उल्लेख से भी उनके द्रव्यों से परिचित होने का संकेत मिलता है (4/2/99)। माल्यादि शैर यवादि गणों में (6/2/88), (8/2/9) भी द्राक्षा नाम है। दाडिम अर्धर्चादि गण में है (2/4/31) पर उसका सर्वप्राचीन पक्का प्रमाण भाष्य में मिलता है (1/2/45, वा. 1)।

पीलुकुण (5/2/24) पके पीलु फलों के लिये पाणिनी ने इस शब्द का उल्लेख किया है। शाहपुर खिउड़ा आदि जंगलों की पंजाबी भाषा में जहां प्राचीन मध्य प्रदेश था, वह शब्द जीवित है जहां उसे पिलफना कहते हैं। संस्कृत में कुण प्रत्यय बहुत कम देखा जाता है। सूत्रकार ने अपने युग की जनदीपय भाषा से इस शब्द का संकलन किया था। जामुन में भी इसी कुण प्रत्यय का अवशेष ज्ञात होता हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वृक्षों में लिंग का वर्णन तथा रूग्ण होने पर रोगोपचार

वृक्षों में आकार, स्वरूप के आधार पर लिंग निर्धारण का वर्णन निंघुटकारों द्वारा किया गया हैं-

यत्र पुष्पप्रवालादि, नातिदीर्घ नचाल्पकम्।
स्थूलं परुषमित्येष, पुमानुक्तो मनीषिभिः॥
स्त्रीपुंसयोर्यत्र विभाति लक्ष्म, द्वयोरपि स्कंधफलादिकेषु।
संदेहदे नैकतरावधारि, नपुंसकं तद्विबुधा वदन्ति॥

अर्थात्- स्थावर जीवों में भी स्त्री, पुरुष, नपुंसक के भेद से तीन भेद हैं- ईख, बाँस, वृक्ष वीरुध आदि के स्कध, काण्ड, फल, पुष्प, पल्लव यदि स्निग्ध, दीर्घ पतले और सुन्दर हों तो उसे स्त्री वृक्ष कहते हैं। जिसमें पुष्प, पत्र काण्डादि न बहुत बड़े हों, न कम हों, वृक्ष स्थूल, रूक्ष हों तो पुरुष जाति का कहते हैं और जहाँ यह दोनों लक्षण व्यक्त न हों और स्त्री पुरुष के निर्णय में संदेह होता हो तो उसे नपुंसक कहते हैं। यही नहीं राजनिघंटुकार ने तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का भी भेद किया है-

क्षुत्पिपासा च निद्रा च वृक्षादिष्वपि लक्ष्यते।

ऐसा राजनिघंटुकार ने व्यक्त किया है। श्रीअमर सिंह ने भी स्त्री, पुं, नपुंसक के भेद को स्पष्ट लिखा है, किन्तु उनका भी यही आधार है। भावमिश्र ने पुष्पवर्ग में वैज्ञानिक निरीक्षण के आधार पर पुष्पाकृति पर स्त्री-पुरुष भेद स्वीकार किया है और केतकः व केतकी का विभाजन पुरुष व स्त्री में किया है-

केतकः सूचिकापुषो, जम्बुकः क्रकचच्छदः।
सुवर्णकेतकी त्वन्या, लघुपुष्पा सुगंधिनी॥

इस प्रकार केतकीद्वयम् का विवरण दिया है। सितकेतकी व सुवर्णकेतकी के नाम से ठीक स्त्री पुरुष पुष्प का विवरण मिलता है। राजनिघंटु भी सितकेतकी को पुरुष किन्तु विफल मानता है।

धन्वन्तरिनिघंटु भी स्वर्णकेतकी को स्त्री वृक्ष मानता है और कनकप्रसवा व सुगंधिता यह पर्याय देता है। इस प्रकार स्त्री पुरुष के भेद के विषय में विवरण मिलता है।

आधुनिक वनस्पतिशास्त्री पुष्पों में स्त्रीलिंग व पुल्लिग उनमें स्थिति ऐन्द्रियक चिह्नों के आधार पर निर्णय करता है। उसके मत से-

जिस पुष्प में पुंकेशर हो परन्तु स्त्रीकेशर न हो उसे पुंपुष्प (नरफूल) और जिसमें केवल स्त्रीकेशर हो और पुंकेशर न हो उसे स्त्रीपुष्प कहते हैं। यदि एक ही में दोनों भाग हों तो उभयलिंगी (Bisexual) कहते हैं। जिसमें दोनों केशर न हों उसे नपुंसक कहते हैं। यदि स्त्री व पुंकेशर दोनों हों और वह पुष्प फलदायक न हो तो भी उसे बंध्य पुष्प कहते हैं।

बृहत्संहिता के रोगों की रोगनिरोधक (Prophylactic) और रोगहारक (Curative) दोनों प्रकार की औषधियों का वर्णन वृक्षायुर्वेद में किया हुआ दृष्टिगोचर होता है।

रोगनिरोधक

इस चिकित्सा में पंक में घी व विडंग-चूर्ण मिलाकर मूल में लेप करने और बाद में दुग्ध-जल का मिश्रण डालने को लिखा गया है। इससे पेड़ों में रोगों के रोकने की शक्ति प्राप्त होती है।

अग्नि पुराण में भी यही दवा ठीक इस प्रकार लिखी गई है- ''विडंग को मंड, मछली और मांस के साथ मिश्रण करके सिचन करने से पेड़ों में रोग-निरोधक क्षमता प्राप्त होती है और रोग नहीं हो पाते।''

चिकित्सा

व्याधि-चिकित्सा का उल्लेख करते हुए वराहमिहिर ने शुष्क और रोगाकान्त वनस्पति के लिये निम्नलिखित योग प्रदान किया है। यथा-

वनस्पतियों के रोगी होने, निष्पुष्प व निष्फल रहने पर कुलत्थ, माष, मुद्ग, यव, तिल का क्वाथ शीतल होने पर वनस्पति के मूल में डालना चाहिए।

अग्नि पुराण में भी ठीक ऐसा ही योग लिखा है- वनस्पति के रोगी होने, फलनाश होने पर विडंग व घी ठंढे जल में घोलकर मुद्ग, माष, कुलत्थ, तिल, यव के क्वाथ के साथ मिलाकर मूल में लगाना चाहिए।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पर्यावरण प्रदूषण, वन विनाश तथा समस्यायें

मनुष्य की प्रकृति आदि भावों में विस्तृत होते हुए भी जो अन्य भाव समान होते है उनके विकृत गुणवाला हो जाने से एक ही समय और एक लक्षण वाले रोग उत्पन्न होकर जनपद का नाश कर देते हैं। वे समान भाव जनपदों में ये होते हैं। यदि इनमें विगुणता हो जाय तो प्रकृति आदि के भिन्न रहते भी मनुष्यों को एक ही काल में एक ही रोग हो जाता है।

जल-प्रदूषण कारण

आधुनिक विकृत (बुरे) गंध, वर्ण, रस एवं स्पर्श वाला जिसमें क्लिन्नता बहुत हो, जिसे छोड़ कर जलचर पक्षी चले हों, जिन जलाशयों का जल सूख कर थोड़ा रह गया हो, जो पीने में प्रिय न प्रतीत हो, जिसके गुण नष्ट हो गये हों, इसे रोग कर समझें, प्रदूषण के कारण हैं।

स्थान प्रदूषण कारण

देश-वर्ण, गंध, रस तथा स्पर्श जिसका विकृत हो, क्लेद (सड़ांध) बहुत हो, सांप, मच्छर, शलय (टिड्डी), मक्खी, चूहा, उल्लू, गिद्ध आदि जन्तओं से युक्त, तृण तथा उलूप (घास विशेष) जहाँ बहुत पैदा हो गया हो, लतायें तथा झाड़ियां बहुत हों, जैसे पहले कभी नहीं हुआ हो वैसे जहां शस्य गिरा गया हो, सूख गया हो व नष्ट हो गया हो, जहाँ वायु धूम्रवर्ग की तरह दिखाई दे, जहां पर पक्षी निरन्तर शब्द करते हों, जहां कुत्ते ऊँचा-ऊँचा रोते हों, विविध प्रकार के मृग तथा पक्षी जहां घबरा कर दौड़ते-फिरते हों, दु:खित हों, जहां पर ऐसे शहर हों, जिनमें मनुष्यों ने धर्म, सत्य लज्जा, आचारशील आदि गुणों को तिलाञ्जलि दे दी वह विकृत हुए देश है। यह तत्त्ववेत्ता वैद्य को वायु से जल, जल से देश, देश से काल को, स्वाभावत: हो दुष्परिहार्य होने से छोड़े न जा सकने के कारण मुख्य जानना चाहिए।

वायरस संक्रमण का कारण

विशेषज्ञ, वायु आदि चारों में यथोक्त दोषों के प्रतिकार की सुगमता से लघुता को जानें। इससे दो बातें प्रकट होती हैं। एक तो यह है कि काल का प्रतिकार कठिनता से होता है, अत: वह मुख्य है, वह बड़ा है और क्रमश: इसी कसौटी पर कसने से जो प्रतिकार में जितना सुगम होगा। उतना ही लघु कहलाया इस प्रकार काल से लघु, देश, देश से लघु जल, और जल से लघु वायु को जानना चाहिए। दूसरी बात यह है कि यदि विकृत वायु में सम्पूर्ण उपरोक्त दोष होंगे तो प्रतिकार अपेक्षया कठिन होगा उस वायु का जिसमें दोष अल्प होंगे। दोषों की अल्पता के अनुसार वह वायु ही लघु लघुत्तर वा लघुतम हो जायगा। इसी प्रकार अन्य तीन भाव भी।

काल पर्यन्त चारों भावों के दुष्ट होने पर भी यदि मनुष्यों का भेषज द्वारा उपचार किया जाता है, तब वे रोगी नहीं होते।

पर्यावरण अवनयन के प्रकार

पर्यावरण अवनयन को प्रमुख भागों में बांटा जा सकता है-

1. **प्राकृतिक प्रकोप (Natural Hazards) :** ये प्राकृतिक कारकों द्वारा घटित होते हैं, जिनके निम्न तीन उप-विभाग हैं-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

- **पार्थिव (Terrestrial) :**
  इनका प्रभाव पृथ्वी पर, प्रमुख रूप से आन्तरिक शक्तियों द्वारा होता है। ज्वालामुखी, भूकम्प, उत्थान, अवतलन, भूस्खलन, भ्रंशन आदि इसके उदाहरण हैं।
- **वायुमण्डलीय (Atmospheric) :**
  ये वायुमण्डलीय प्रक्रमों द्वारा घटित होते हैं, जो जैवमण्डल पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं, जैसे-विभिन्न प्रकार के तूफान, विद्युत विसर्जन, दावानल, बाढ़, सूखा, बादल फटना आदि।
- **पृथ्वेत्तर (Extraterrestrial) :**
  इनके अन्तर्गत पृथ्वी के बाहर अन्तरिक्ष की घटनाएं हैं, जैसे-उल्कापात आदि।
- **मानवीय प्रकोप (Man-Induced Hazards) :**
  इनमें मानव जनित संचयी प्रभावों से उत्पन्न प्रभावों को सम्मिलित किया जाता है, जिन्हें पुनः तीन भागों में बांटा गया है।
- **भौतिक (Physical) :**
  बड़े पैमाने पर अपक्षय तथा भूस्खलन, वन विनाश।
- **रासायनिक (Chemical) :**
  वायुमण्डल में जहरीले तत्वों का विसर्जन, कारखानों से गैसों का विस्फोट, नाभिकीय विस्फोट आदि।
- **जैविक (Biological) :**
  जीवों की प्रजातियों में आकस्मिक वृद्धि या कमी, मानव जनसंख्या का विस्फोट, युद्धों में कीटाणुओं का प्रकोप तथा विभिन्न प्रकार की बीमारियों / महामारियों का जन्म, दुर्घटनाएं आदि।
- **पर्यावरण प्रदूषण (Environmental Pollution)**
  इसे दो भागों में बाँटा गया है-

1. **भौतिक (Physical) :**
   मानव कार्यों से पर्यावरण के भौतिक / अजैविक घटकों की गुणवत्ता में कमी होना भौतिक प्रदूषण है, जो तीन प्रकार का है-

- **स्थलीय प्रदूषण :**
  पृथ्वी के ऊपरी भाग पर अपरदन द्वारा मिट्टी का क्षय, प्रदूषण, मरुस्थलीकरण, लवणीकरण आदि।
- **जल प्रदूषण :**
  सागरीय, नदीय, झीलों तथा भूमिगत जल का प्रदूषण।
- **वायु प्रदूषण :**
  ओजोन अल्पता, हरित गृह गैसों के सान्द्रण में वृद्धि, वायु की गुणवत्ता में कमी, जलवायु परिवर्तन आदि।

2. **सामाजिक (Social) :**
   इस प्रदूषण का जन्म भौतिक एवं सामाजिक कारकों से होता है। इसके भी तीन उप-विभाग हैं-

- जनसंख्या विस्फोट।
- सामाजिक प्रदूषण में सामाजिक पिछड़ापन, अपराध, जातीय / धार्मिक दंगे, युद्ध, चोरी, अपसंस्कृतिकरण आदि मुख्य हैं।
- आर्थिक प्रदूषण के अन्तर्गत गरीबी, बेरोजगारी आदि प्रमुख हैं।

मानव द्वारा पर्यावरण अवनयन में निम्न रूपों में उत्प्रेरक का कार्य करता है-

1. प्राकृतिक वनस्पति का विनाश।
2. मौलिक प्रजातियों की समाप्ति।
3. मौलिक वनस्पतियों का प्रतिस्थापन।
4. जन्तुओं की प्रजातियों का विनाश तथा प्रतिस्थापन।
5. विदेशी जन्तुओं / पौधों का प्रवेश।
6. भूमि उपयोग में परिवर्तन।
7. कृषि में रासायनिक खादों व कीटनाशकों का प्रयोग।
8. वायुमण्डलीय गैसों के अनुपात में असन्तुलन।
9. प्राकृतिक प्रक्रमों में बदलाव जैसे-मेघबीजन।
10. संसाधनों का अधिक दोहन।
11. निर्माण कार्यों से जैव विविधता व भूमि का विनाश।
12. विस्थापन द्वारा नई भूमि से छेड़छाड़।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पर्यावरणीय संकट, अवनयन और प्रदूषण वर्तमान समय में सबसे बड़ी समस्याएं हैं, जो प्रौद्योगिकी तथा आर्थिक विकास के कारण उत्पन्न हुई हैं। इसे देखते हुए डासमन (R.F. Dasmann 1976) ने कहा है कि- ''मानव दौड़ हाथ में ग्रेनेड लिए बन्दर के समान है। कोई यह नहीं जानता कि वह कब ग्रेनेड से पिन खींच लेगा और विश्व तहस-नहस हो जाएगा।''

3. वन-विनाश (Deforestation) : वर्तमान समय में लगातार सिकुड़ते जा रहे वन-क्षेत्र पूरे विश्व के लिए चिन्ता का विषय है, जिसका सीधा सम्बन्ध वन्य जीवों के विनाश, अपरदन तथा पर्यावरण ह्रास से है। कृषि क्षेत्र में की जा रही वृद्धि के साथ ही ईंधन की लकड़ी तथा अन्य वन्य-उत्पादों की प्राप्ति के लिए ही मुख्यतः वन-विनाश की घटना हो रही है। मध्य प्रदेश (पेड़), उड़ीसा (पौन्डा) तथा आसाम (झूमिंग) में अल्पकालिक कृषि कार्य हेतु वनों का पर्याप्त विनाश आज भी किया जा रहा है। यदि वन-विनाश की यही दर रही तो आगामी दो दशकों में वनाच्छादन एवं व्यापारिक लकड़ी के भण्डार में 40 प्रतिशत कमी आना निश्चित है। अतः पर्यावरणीय दृष्टि से, वन विनाश की इस संभावित दर जैव-विविधता (Bio-diversity) में कमी के साथ ही विश्व की मिट्टी, जल व जलवायु में भी परिवर्तन होंगे।

पृथ्वी के पारिस्थितिकीय स्वास्थ्य के लिए केवल जैव-विविधता एक महत्वपूर्ण सूचक ही नहीं है अपितु विभिन्न अन्न की किस्मों तथा चिकित्सकीय पदार्थों के उत्पादन का भी आधार है। आज दुर्भाग्य से अनेक वृक्ष व जीव प्रजाति समाप्त होने के कगार पर है। मनुष्य द्वारा भी जीवों के शिकार, नगरीकरण, औद्योगीकरण आदि के कारण जैव-विविधता में लगातार कमी आती रहेगी। जीवों व वनस्पतियों के प्राकृतिक घर (Habitat) को नष्ट करने से भी इनके समाप्त होने का खतरा बढ़ता जा रहा है। जहाँ तक जलवायु-परिवर्तन का प्रश्न है, तो वन-विनाश से कार्बन-डायोक्साइड के स्तर में वृद्धि होने से ऐसा होगा। इसलिए वन-विनाश एक गम्भीर समस्या है।

वन किसी भी देश की जीवन-रेखा होते हैं तथा ये महत्वपूर्ण संसाधन होने के साथ पारिस्थितिकी के मुख्य घटक होते है।

इनसे मिलने वाले लाभ अनेक हैं जो रक्षात्मक (Protective) तथा उत्पादक (Protuctive) गुणों से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े हैं। पारिस्थितिकी मानकों के अनुसार प्रत्येक देश के 1/3 भाग पर वन होने चाहिए। भारतीय वन नीति (1982) के अनुसार मैदानी भागों में समस्त क्षेत्र का 20 प्रतिशत तथा पर्वतीय भागों में 60 प्रतिशत क्षेत्र वनाच्छादित होना चाहिए।

उष्ण व उपोष्ण कटिबन्धों में जनसंख्या वृद्धि तथा कृषि के विस्तार के कारण पर्याप्त मात्रा में वन विनाश किया गया है। भारत में 20.4 प्रतिशत भाग पर ही वन हैं, जिनमें 6.8 प्रतिशत भाग पर उत्तम वनावरण है। यहां शुद्ध वांछित वनाच्छादन 12.6 प्रतिशत आवश्यक है।

वर्तमान मानव ने वनों के इस महत्व को भुला कर उनका तेजी से सफाया करके स्थानीय, प्रादेशिक एवं विश्व स्तर पर मिट्टी का अपरदन, बाढ़, वर्षा की कमी से सूखा, प्रजातियों का विलोप तथा वायुमण्डलीय समस्याएं उत्पन्न कर ली हैं।

(पर्यावरण और पारिस्थितिकी से साभारः)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कालिदास के काव्यों में अरण्य सम्पदा

संस्कृत साहित्य में महाकवि कालिदास एक महान काव्यकार के रूप में विख्यात हैं। आम धारणा के अनुसार कवि कालिदास राजा विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक अद्वितीय विद्वान माने जाते हैं। महाकवि के काल के सन्दर्भ में काफी विवाद है, तथापि इनका काल ईसवी सन के पन्द्रहवीं शताब्दी से पूर्व माना जाता है। पत्नी के प्रताड़न से भागे हुये कालिदास जब केदारखण्ड में कालीमठ के पास प्राण त्यागने हेतु सरस्वती कुण्ड में कूद पड़े, तो सरस्वती के प्रसन्न होने पर इनको विद्या पारगत का वरदान मिल गया, जिसके फलस्वरूप महाकवि सदा के लिये अमर हो गये। स्त्री के प्रताड़न के बाद कालिदास जब घर लौटे तो उनके घर के कपाट बन्द थे तथा इनकी विदुषी स्त्री ने प्रश्न किया कि 'अस्तिकश्चित् वाग्विशेष' इस प्रश्न का उत्तर महाकवि ने क्रमशः कुमारसम्भवम्, रघुवंश, मेघदूत आदि काव्यों की रचना में किया। इसके अतिरिक्त इनकी अन्य कई रचनायें हैं, प्रस्तुत लेख में कुमारसम्भवम्, रघुवंश, मेघदूत, अभिज्ञान शाकुन्तलम्, विक्रमोर्वशीयम्, मालविकाग्निमित्रम् एवं ऋतुसंहार नामक ग्रन्थों में वर्णित वनस्पतियों के सन्दर्भ स्थलों का संकलन किया गया है।

महाकवि कालिदास प्रकृति प्रेम के लिए प्रसिद्ध है, प्रकृति के संजीव चित्रण करने में इनका विशेष स्थान है। इन्होंने अपने काव्यों में प्रायः शान्ततपोवन, नदीतट, वृक्ष, उपवन, भ्रमर, मृग, पक्षी आदि पदार्थों का सुन्दर रूप से वर्णन किया है, जोकि इनके काव्यों के अवलोकन से स्पष्ट होता है। महाकवि ने अपने काव्यों में हिमालय का विशेष रूप से उल्लेख किया है। इनके नाटकों में हिमालय के प्रति अगाध प्रेम प्रकट होता है। वन, तपोवन वृक्ष, लता आदि औद्भिज संजीव एवं निर्जीव सृष्टी का स्पष्ट चित्रण कवि ने अपने काव्यों में स्पष्ट किया है। अभिज्ञान शाकुन्तलम् प्रथम अंक में यवनिका वन के सुन्दर दृश्य को लेकर ही खुलती है। कुमारसम्भवम् का प्रारम्भ भी नगाधिराज हिमालय के दृश्य से होता है। रघुवंश का प्रथमसर्ग भी वन के अनुपम सौन्दर्य से ही प्रारम्भ होता है। दिलीप एवं सुदक्षण दोनों दम्पति का गुरू वशिष्ट आश्रम की ओर जाते समय वनों के आलौकिक सौन्दर्य का जो वर्णन कवि ने किया है वह वन सम्पदा की महानता का द्योतक है। यथा-

हैयङ्गवीन मादाय घोषवृष्द्धानुपस्थितान्।
नामधेयानि पृच्छन्तौ, वन्यानां मार्गशाखिनाम्॥

(र.स. 1/45)

अर्थात् महाराजा दिलीप सारथी के साथ रथ में सवार होकर मार्ग में वृक्षों के नामों को पूछते हुए तथा पोले बांसों में वायु भर जाने के कारण जो अनुपम संगीत ध्वनि उत्पन्न होती थी, उसके साथ कुंजों में स्थित वन देवता द्वारा ताल मिला कर राजा के वंश का गान गाया जाना एवं मार्ग में वृद्ध गोपालों द्वारा दूध में से निकाले गये ताजे मक्खन से भरे हुये पत्तों को लाया जाना आदि वृक्षों की महिमा का वर्णन

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रघुवंश में वर्णित है। महाराजा दिलीप वन सम्पदा में अगाध प्रेम रखते हैं। राजा वृक्षों से कहता है कि हे वृक्षों तुम्हें हमारा नमस्कार है। यथा-

"तरुवे नमोऽस्तु" रामायण, महाभारत में भी वनों के नैसर्गिक लीला का सर्वोत्तम ज्ञान वर्णित है-

यत्र द्रुमा अपि मृगा अपि बांन्धवों में।

श्री रामचन्द्र जी स्वयं कहते हैं कि इन वनों के वृक्ष और हरिण हमें स्वयं अपने मित्रों के समान लगते है। यही कारण है कि स्वयं मार्यादा पुरुषोत्म भगवान श्री राम सीता के हरण होने में वृक्षों, लताओं, पर्वतों से सीता की कुशलता पूछते हैं। अतः उपर्युक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वृक्ष भी अपूर्ण मानव ही हैं। भारतीय प्रजा के पूर्वजों ने तो वृक्षों को इससे भी अधिक महत्ता दी थी। भारतीय संस्कृति का विस्तार ही वृक्षों के साथ ही हुआ है क्योंकि द्रव्यों का सम्बन्ध पञ्च महाभूतों से बना हुआ है जिसकी चिकित्सा भी पञ्च महाभूत द्रव्यों से होती है।

भारतीय परम्परा के अनुसार महाराजा दिलीप अतिथियों की कुशलता के साथ-साथ वन सम्पदा की भी कुशलता पूछते हैं। यही कारण है कि भारतीय साहित्य में वनसम्पदा को विशेष स्थान दिया गया है। यथा-

आधारवन्ध प्रमुखैः प्रयत्नैः सवर्धितानां सुतनिर्विशेषम्।
क्वच्चिन्न वाय्वादिरुपप्लवों वः
श्रमच्छिदामाश्रपपादपानाम्।। (र.स. 5/6)

कालिदास के काव्यों की विशेषतायें

महाकवि को मनुष्य के मनोविज्ञान का प्रगाढ़ ज्ञान है। ये खूब जानते हैं कि किस अवस्था में मनुष्य की चित्तवृति कैसी होती है और वह क्या करता है। स्त्रियों के मनोभावों से ये अच्छी तरह परिचित है इनके काव्यों में श्रृगांर-रस में सम्भोग-श्रृंगार एवं निप्रलम्भ श्रृंगार के उदाहरण भरे पड़े है। कालिदास अपनी उपमाओं के लिये ही प्रसिद्ध है। यथा भारतीय पण्डितों की कहावत है कि **"उपमाकालिदासस्य"** इनके काव्यों में शब्दालंकार एवं अनुप्रास के यत्र-तत्र उदाहरण मिलते है। मेघदूत नामक खण्ड काव्य में यक्षराज ने मेघ को अपना दूत बनाकर अलकापुरी में अपनी प्रिया को सन्देश भेजते हुए कहा है कि जिस अलकापुरी की स्त्रियाँ हाथ में नील कमल रखती हैं, केशों को कुन्दों के पुष्पों से गूंथती हैं, जिनकी मुखों की शोभा लोध्र पुष्प की रज से श्वेतता को धारण करती है और वेणी में कुवरक, कानों में सुन्दर शिरीषपुष्प, मस्तक पर कदम्ब पुष्प धारण करती है, ऐसी वह अलकापुरी है-

हस्तेलीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धम्।
नीतालोधा प्रसवरजसा पाण्डुतामाननेश्रीः।।
चूड़ापाशे नवकुरवकं चारुकर्णे शिरीषम्।
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीप वधूनाम्।।

(मे.दू. उत्तर 2)

इसी अलकापुरी में स्थित क्रीड़ा पर्वत में दौहद् वृक्षों का कवि ने सुन्दर रूप से वर्णन किया है। जिस क्रीड़ा पर्वत पर कुवरक वृक्षों से युक्त माधवीलता के कुंज है और उन कुंजों पर रक्त पुष्पों वाला अशोक स्त्रीताडन से विकसित होता है एवं उन कामनियों के मदिरायुक्त मुख को बकुल पावन कर रहा है तथा उन स्त्रियों के दर्शन से तिलक पुष्प पुष्पित हो रहा है, ऐसा यह पर्वत है। जोकि मनोविज्ञान के प्रगाढ़ ज्ञान का भी द्योतक है-

रक्ताशोकश्चलकिसलयः केशरश्चात्रकान्तः,
प्रत्यासन्नौकुरवक वृते माधिवीमण्डपस्य।
एकः ख्यात स्तवसह मया वामपादाभिलाषीः
कांऽ-क्षत्यनो वदनमदिरा, दोहद्च्छद्मनाऽस्या।।

(मे.उ. श्लोक 18)

रघुवंश नामक महाकाव्य में वन का वर्णन

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

करते हुये महाराजा दशरथ ने रात्री में विश्राम के समय मनोहर एवं पत्तों की शय्यावाली तथा औषधियों से प्रकाशमान दीपकवाली रात्री बिना सेवकों के बिताई है। इससे कवि ने यह स्पष्ट किया है कि दिव्यौषधियाँ भी रात्री में प्रकाशित होती है। यथा-

सललितकुसुम प्रवालशय्यां ज्वलितमहौषधि दीपिकासनाथम्। (र.स. 9/70)

नदियाँ, भ्रमर, मृग, कोकिल, प्रासाद आदि का वर्णन भी इनके काव्यों की विशेषता है। कवि ने दक्षिण की अपेक्षा उत्तर भारत को अधिक वर्णित किया है। यही कारण है कि इन्होंने हिमालय से निकलने वाली मन्दाकिनी, गंगा, जमुना, सरस्वती, अलकनन्दा आदि नदियों का उल्लेख विस्तृत रूप से किया है। हिमालय में असंख्य रत्न, जड़ी-बूटी संजीवनी, सोमरस आदि दिव्यौषधियाँ, कल्पवृक्ष, गन्धमादन पर्वत, गुप्तशिला, देवतीर्थ, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, किरात आदि जातियाँ रहती हैं। ऋतुओं का विस्तृत वर्णन इनके ऋतुसंहार नामक पुस्तक में स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। कवि ने क्रमशः ग्रीष्म प्रावृड़ (वर्षा) शरद काल, हेमन्त एवं बसन्त काल का वर्णन सुन्दर रूप से वर्णन किया है तथा यह स्पष्ट किया है कि इस काल में वनों, उपवनों में कौन-कौन से पुष्प पुष्पित होते हैं। यथा-

द्रुमाः सुपष्पाः सलिल सपद्मम्।
स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धि।।
सुखाः प्रदोष दिवसाश्च रम्याः।
सर्वप्रिये चारुतरं वसन्ते।। (ऋ.सं. 6/8)

कालिदास के काव्यों में वर्णित कतिपय भौगोलिक स्थान

यह भारत कितना विशाल है जिसकी सीमायें कवि कालिदास ने कुमारसम्भवम् नामक ग्रन्थ में स्पष्ट किया है। यथा-

अस्त्युत्तरस्यां दिशिदेवतात्मा हिमालयों नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरोतोयनिधिवगाह्य, स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः।। (कु.स. 1/9)

अर्थात् पूर्व में ब्रह्मपुत्र की घाटी पश्चिम में सिन्धु नदी घाटी तक लगभग दो हजार वर्ग मील की लम्बाई तक ये घाटियाँ पूर्व और पश्चिम की सीमा बनाती हैं। दक्षिण सीमा में आसाम, बिहार, संयुक्त प्रान्त और पञ्जाब में तथा उत्तरी सीमा में केदारखण्ड के साथ-साथ चीन और तिब्बत्त है।

कालिदास के काव्यों में वर्णित नगर, पर्वत एवं नदियाँ, नगर-स्थान

दशार्णव देश (छत्तीसगढ़), विदिशा (मालवा), आम्रकूट (अमरकण्टक के समीप), उज्जैन, चित्रकूट, व्रहमावर्त (कुरुक्षेत्र कनखल हरिद्वार), कण्वाश्रम, अयोध्या, मथुरा, पञ्चवटी, विदर्भ देश, पारसीकदेश, औषधिप्रस्थ-नगर, माल (रतनपुर) देवगिरी (देवगढ़) दशपुर नगर, कालिडग-देश, आनूपदेश, मगध देश, कालीमठ, सिद्धपीठ, अगस्त्य-मुनि-आश्रम, कदलीवन, नन्दनवन, तपोवन व्यासगुफा, वासुकीताल, पञ्चप्रयाग, गोपेश्वर, त्रिजुगी नारायण, थानेश्वर अवन्ती (उज्जयनी की राजधानी)।

पर्वत

विन्ध्यपर्वत, रामगिरी (रामगढ़), देवगिरी (मालवा देश में चम्बल की घाटियाँ), त्रीलकूट पर्वत, देवगिरी पर्वत, कैलाश पर्वत, केदारश्रृगं, गन्धमादन-पर्वत, स्वर्गगिरी, ब्रह्मपुरी, भृगुपंथ, ब्रह्मशिला, विन्ध्याचल, मन्दराचल सत्यपथ, बन्दर-पुच्छ, देवगिरी गोमुख, कैलाश पर्वत में मानसरोवर।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नदियाँ

रेवानदी, (नर्मदा) वेत्रवती, चर्मण्वती, कपिशा, गम्भीरा सरस्वती, निर्विन्ध्या (यह मालवा देश में एक नदी है) सिन्धु, क्षिप्रा (यह उज्जैन में है) गन्धवती (यह मालवा देश में बहती है) जाह्नवी (गंगा) जमुना, सरस्वती, (यह हिमालय के दक्षिण भाग से निकलती है) मन्दाकिनी, अलकनन्दा, गन्धवती वेत्त नदी (सम्भवतः यह मिलसा के निकट वेतवा में मिल जाती है) वेत्र नदी (वेतवा नदी) कावेरी, गौरीकुण्ड, हेमकुण्ड, रुद्रकुण्ड, वसुकुण्ड, वासुकीताल, वसुधारा, हिमधारा आदि नदियों एवं तालाबों का उल्लेख कवि ने किया है।

जैसा कि सर्वविदित है कि कतिपय वनस्पतियों की पहचान स्थान विशेष से की जाती है जिसमें कि भौगोलिक स्थिति का परिचय होना अनिवार्य है। कुमारसम्भवम्, मेघदूत आदि ग्रन्थों में कवि ने कतिपय महत्वपूर्ण स्थानों का उल्लेख किया है, जिसमें केदारखण्ड (उत्तरी हिमालय) में कैलाश, गन्धमादन पर्वत, औषधिप्रस्थ आदि स्थान मुख्य हैं। इस औषधिप्रस्थ नगर एवं गन्धमादन पर्वत पर विविध प्रकार की वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। यह औषधिप्रस्थ नगर उत्तराखण्ड में है जोकि केदारखण्ड का एक भाग है। यथा-

नन्दापर्वतमारभ्य यावत्काष्ठगिरिर्भवेत्।
तावत्केदारकंक्षेत्रं, शिवमन्दिरमुत्तमम्॥ (के.ख.)

यह औषधिप्रस्थ नगर हिमवान् का वह पुर है, जोकि चौखम्बा हिमालय के नीचे मूल स्थान खामण्डना या रणमण्डना के सौम्य स्थान है तथा इसके दोनों ओर केदारनाथ तथा बद्रीनाथ हैं। इस क्षेत्र में तप्तकुण्ड, त्रिजुगी, शैलुपंवाली-कांटा, गन्धमादन आदि उपवन है। नन्दा देवी के ऊपरी पृष्ट भाग में अलकापुरी एवं अमरावती हैं। यह हिमालय गंगा, यमुना, अलकनन्दा, ब्रह्मपुत्र झेलम, व्यास, सतलुज, रावी आदि नदियों का उद्गम स्रोत है। महर्षि चरक ने भी हिमालय को ही औषधियों के लिये श्रेष्ठ माना है-

औषधीनां पराभूमिर्हिमवान् शैलसत्तमः

अर्थात हिमवान् चतुस्तम्म के चारों ओर दिव्यौषधियों के सुन्दर वन, उपवन है।

प्राचीन काल में ग्रामों या नगरों के नाम उनके आसपास बहुसंख्या में स्थित वृक्ष, वनस्पतियों के नाम पर रखे जाते थे। हरियाणा के प्रसिद्ध नगर रोहतक का नाम रोहीतक नामक वृक्षों के बाहुल्यता के कारण दिया गया है। इसी प्रकार मागधिका, सौराष्ट्री, (फिटकरी) यवानिका, (पारसीकयवानी) कलिंग, (इन्द्रयव) मलयज, (चंदन) केदारज, (पद्माक) शावरक, (लोध्र) चीनाक, (कर्पूर) काश्मीरज, (कूठ, केशर) हिमावती आदि कतिपय नाम वनौषधि द्रव्यों के उन स्थानों में उत्पन्न होने के कारण दिया गया है। यही कारण है कि हमारे प्राचीन काव्यों में स्थान-स्थान पर वन, उपवन, उद्यान, पुष्प, धारायन्त्र (फव्वारे) आदि प्राकृतिक सौन्द्रयों का विवरण मिलता है। पश्चिमी देशों ने भी 18वीं शताब्दी से वन सम्पदा के प्रति अपनी रुचि दिखाना प्रारम्भ किया है परन्तु भारत में यह कला प्राचीन काल से बन चुकी थी। कौटिल्य अर्थशास्त्र, कामन्दनीति, वात्स्यायन-कामसूत्र आदि अनेकों ग्रन्थों में वनस्पति फलवृक्ष, पुष्पोद्यान तथा उसके पालकों का उल्लेख मिलता है। वृक्षायुर्वेद नामक ग्रन्थ में वनस्पतियों के संरक्षण, संकलन का विस्तृत वर्णन मिलता है। औषधि सम्बन्धी द्रव्यगुण विज्ञान का भण्डार-वेदों से लेकर संहिताग्रन्थों एवं निघण्टु ग्रन्थों में विस्तृत रूप से भरा पड़ा है जोकि भारत के लिए गौरवपूर्ण है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हिमालय क्षेत्र में पर्यावरण क्षरण तथा समस्या समाधान

यह सर्वविदित है कि करोड़ों वर्षो बाद पृथ्वी एक आग के गोले से बदल कर मुनष्य के रहने योग्य बन पाई और धीरे-धीरे अनेक प्रकार के प्राणियों तथा वनस्पतियों का विकास हो पाया था। डायनासोर युग के बाद अत्यन्त विशाल प्राणी जिनका अस्तित्व अब पृथ्वी पर नहीं है ऐसे स्तनपाई प्राणियों का जन्म हुआ। आज के युग में मनुष्य उन प्राणियों का राजा माना गया है। प्रारम्भ में वनस्पतियों का विकास एक कोशीय प्राणी से हुआ, बाद में एक जीव की कोशिकाओं की संख्या बढ़ने लगी। सर्वप्रथम प्रजनन पद्धति में जीवाणु का विकास हुआ। ये जीवाणु एक कोशिका में जमा रहते हैं। हजारों बीजाणुओं में से कुछ बीजाणु जमकर नये पौधे बन जाते हैं। आजकल यह प्रक्रिया कुकुरमुत्ता, काई (Moss) तथा पर्णांग (Moss) में देखी जाती है। इस पृथ्वी पर अण्डज, स्वेदज एवं औभ्दिज सृष्टि का विकास हुआ। अतः जान्तव एवं औद्भिज द्रव्यों के विकास में प्राकृतिक संतुलन एक महत्वपूर्ण नियम है।

इन सारे वनों के विकास का आधार मिट्टी एवं प्राकृतिक जल स्त्रोत हैं। प्रकृति के सन्तुलन हेतु विभिन्न जाति के पशु, पक्षी, हिरण, शेर, भालू सरीसृप एवं विभिन्न जलवायु में उगने वाले वन उपवन एवं हिमशैल हैं। जिनसे प्रकृति का सन्तुलन बना रहता है। प्रकृति सन्तुलन में निम्न 6 आवश्यक नियमों की आवश्यकता देवी गई है। यथा-

1. स्थायित्व।

2. स्थायित्व को लाने हेतु संरक्षण।

3. विविधता।

4. अवशेषों को जमीन में लौटाना।

5. सन्तुलन।

6. सहयोग।

प्रकृति के साथ सहकार और सहयोग के साथ रहना चाहिये तभी वनों का विकास एवं संरक्षण हो सकता है। जीवन का आधार ही सन्तुलन है। वनों का विकास संवर्धन, रोपण एवं काटना समन्वय एवं सन्तुलन की भावना से किया जाना चाहिये तभी हम पर्यावरण की सुरक्षा कर सकते हैं। किसी भी देश की संस्कृति समझने के लिये पहिले उस देश के पर्यावरण को समझने की आवश्यकता होती है। मनुष्य का जीवन, रहन-सहन का स्तर मिट्टी-पानी एवं वनस्पति पर आधारित हैं। जब तक पर्यावरण का संरक्षण होता है तब तक वह देश समृद्धि के साथ पनपता रहता है और उसकी संस्कृति का विकास होता रहता है। पर्यावरण की उपेक्षा करने पर संस्कृति सभ्यता एवं स्वास्थ्य का ह्रास होने लगता है। प्राचीन दुनिया के इतिहास में इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि भारत में बढ़ती हुई आबादी को देखते हुये पर्यावरण का सन्तुलन होना बहुत आवश्यक होता है।

हिमालय क्षेत्र

देश में हिमालय के विभिन्न भागों में समुद्रोच्छ्राय, भू-संरचना, जलवायु तथा प्राकृतिक वनस्पति में अत्यन्त विषमता या अन्तर है, जिसका लाभ अनेक प्रकार की वनस्पतियों की उत्पत्ति के रूप में होता है। इनमें बहुत बड़ी संख्या में

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

औषधोपयोगी वानस्पतिक द्रव्य उपलब्ध हैं। केवल यही नहीं हिमालय क्षेत्र में वानस्पतिक, खनिज तथा जांगम-तीनों मूल की औषधीय द्रव्यों की प्राप्ति होती है। इस प्रकार हिमालय प्रदेश में औषधि उपयोग के साथ ही, आर्थिक, व्यापारिक, रासायनिक, औद्योगिक तथा अन्य विभिन्न प्रयोजनों में आने वाली वनस्पतियां बड़ी मात्रा में मुख्य वनोपन तथा गौण वनों के रूप में मिलती है, जो अनेक रूपों में प्रयोग की जाती है।

हिमालय

आयुर्वेद में हिमालय को औषधियों का स्थल माना गया है-

हिमवानौषधि-भूमिनाम्। (चरक, सूत्र, 25)

अर्थात् हिमालय औषधियों की उत्पति स्थल के रूप में श्रेष्ठ है। इस प्रसंग में चरक ने कहा है-

औषधिनां परा भूमिर्हिमवान् शैलसत्तमः।
तस्मात्फलानि तज्जानि ग्राहयेत्॥

(चरक, चिकित्सा रसायन पाद)

इसके अतिरिक्त और भी कई स्थलों में चरक, सुश्रुत, वाग्भट की संहिताओं में हिमालय की प्रशंसा तथा विशेषता को औषधि स्थल के रूप में प्रदर्शित किया।

पश्चिमी हिमालय के उत्तर प्रदेश राज्य में अवस्थित पर्वतीय क्षेत्रों को कुमाऊँ, टिहरी गढ़वाल, पौड़ी गढ़वाल, चमोली, उत्तरकाशी तथा देहरादून के सम्मिलित समूह क्षेत्र को उत्तराखंड हिमालय कहा जाता है। इसमें शिवालिक, तराई-भावर के साथ जुड़े क्षेत्र भी आ जाते हैं।

हिमालय का स्वरूप, सौन्दर्य तथा महत्ता का वर्णन भारत के प्राचीन साहित्य में बहुत मिलता है। संस्कृति साहित्य में कालिदास का प्रसिद्ध श्लोक प्रायः उद्धृत किया जाता है-

अस्त्युत्तरस्यां दिशिदेवात्मा, हिमालयों नाम नगाधिराजः (कुमारसम्भव, सर्ग 1)

शास्त्र में हिमालय के पाँच खंडों का वर्णन आता है-

खंडापंच हिमालयस्य कथिता, नेपाल कूमाँचलौ।
केदारोऽथ जलन्धोऽथ रूचिर, कश्मीर संज्ञोत्तिमः॥

(केदारखण्ड)

इस सूत्र के अनुसार प्राचीन मान्यता में हिमालय के पाँच निम्नांकित भाग या प्रदेश विभक्त किये गये हैं-

(क) नेपाल
(ख) कूर्माचंल
(ग) केदारखण्ड
(घ) जलन्धर
(ड़) कश्मीर

हिमालय को आयुर्वेद के ग्रन्थों में विशेष स्थान दिया गया है, जिसका सम्बन्ध आयुर्वेदावतरण से होने से और निकट तथा महत्वपूर्ण हो जाता है।

हमारा देश उष्ण जलवायु का देश है। उत्तर में हिमालय के पहाड़ों के कारण मैदानी भागों का भी तापमान कम हो जाता है। जाड़ों में हिमालय मध्य एशिया की शीत लहरों को रोकता है। हिमालय की पर्वतमालाओं में बर्फ अधिक रहने के कारण वर्षा अधिक होती है। देश की मौसमी परिस्थिति को संभालने में हिमालय की पर्वत श्रेणियों की महत्वपूर्ण भूमिका है। वर्तमान समय में शान्त हिमालय पर भी प्रहार हो रहे हैं। आज बड़े पैमाने पर वनों का दोहन हो रहा है। वनों के व्यापारिक रूप से लगातार कटान करने से कतिपय दैविक आपदाओं का सामना करना पड़ रहा है। बड़े पैमाने पर वनों का विनाश, सड़कों के निर्माण से भूखलन एवं भूकम्पों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है। कृत्रिम सागर बनाये जाने से भी पर्यावरण को खतरा होने की संभावना है। नदियों के जलस्त्रोतों में जल की मात्रा दिनों दिन घटती जा

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रही है। अतः हमें इस प्रकार की बड़ी-बड़ी योजनाओं पर पुनः विचार करना होगा। क्योंकि यदि पहाड़ों का पर्यावरण नष्ट हो गया तो सारे भारत की परिस्थिति शोचनीय होगी। मेरे विचार से हिमालय के पर्यावरण को ध्यान में रखते हुये भावी विशाल योजनाओं एवं सड़क निर्माण कार्यों की तकनीकी-विधियों पर विचार करना होगा। क्योंकि बड़े-बड़े डायनामाईट के लगातार प्रयोग करने से पहाड़ों की सतह हिल-डुल जाती है।

यह सर्वविदित है कि पर्यावरण प्रदूषण के निम्न प्रमुख पांच कारण है। यथा-

ध्वनि प्रदूषण, जल प्रदूषण, भूमि प्रदूषण, वायु प्रदूषण एवं ताप प्रदूषण मुख्य हैं। इन प्रदूषणों से आज इस चकाचौंध के भौतिक युग को कैसे बचाया जाय यह एक विश्व की समस्या है। ध्वनि प्रदूषण नगरों, महानगरों में बढ़ता शोर मानवीय शक्तियों से बाहर होता चला आ रहा है। और यदि यही गति जारी रही तो असंख्य व्यक्ति ध्वनि प्रदूषण के शिकार हो जायेंगे। नगरों में गन्दे नालों तथा कारखानों द्वारा बहाये गये रासायनिक पदार्थ जल प्रदूषण को दिन प्रतिदिन बढ़ावा दे रहे हैं। वायु प्रदूषण के लिये कल कारखानों तथा मोटर वाहनों द्वारा छोड़ी गई गैस एवं वैज्ञानिक तथा आणविक परीक्षण अधिक उत्तरदायी हैं। इसके अतिरिक्त वनों का बढ़ता हुआ विनाश व प्राकृतिक संसाधनों का अविवेकपूर्ण विदोहन भूमि व ताप प्रदूषण के मुख्य कारण हैं। इन सबके दुष्प्रभाव में जंगलों के क्षेत्रफल में क्रमशः कमी होना, वन्य जीवों का विनाश, भूमिक्षरण, मिट्टी की उर्वराशक्ति का ह्रास एवं लवणीयता का निरन्तर वृद्धि होना। पर्यावरण के असन्तुलन में प्राकृतिक संसाधनों का अति दोहन पर्यावरण की नैसर्गिक व्यवस्था पर मानव द्वारा प्रहार करना मुख्य कारण है।

कौटिल्य अर्थशास्त्र, वात्सयायन कामसूत्र, वाराही संहिता आदि कतिपय पौरणिक ग्रंथों में वनस्पतियों के संरक्षण रोपण, संकलन करने तथा उसके पालकों का निर्देश है। पर्यावरण की समृद्धि हेतु सामग्री वेदों से लेकर पुराणों एवं संहिताओं में विस्तृत रूप से वर्णित है। प्राचीन काल में सीमा क्षेत्र, जलाशय क्षेत्र एवं मार्ग में लगाये हुये वृक्षों को काटने पर द्विगुण दण्ड देने का विधान है। ऐसा उल्लेख भारतीय दण्ड संहिता में मिलता है। पर्यावरण प्रदूषण के दुष्परिणामों को देखते हुये परखनली द्वारा पौधों की पनपाने की तकनीकी गातिविधियों में भी बाधा आ सकती है। क्योंकि मिट्टी, हवा, पानी एवं भूमि को प्रदूषण से बचाना होगा। अन्यथा इन अजैविक कारकों की विकृति से ये प्रयोग भी सफल नहीं हो सकेंगे। प्राकृतिक साधनों को हमें प्रदूषण से रोकने हेतु योजनाबद्ध कार्यक्रमों पर विशेष जोर देना होगा। प्राचीन वैदिक साहित्य में हवन-यज्ञों द्वारा वायु प्रदूषण को दूर करने के अनेक उपायों का उल्लेख है। इन उपायों द्वारा भी पर्यावरण की रक्षा की जा सकती है। काल (नियति) से पर्यावरण का अन्योन्याश्रय सम्बंध है। वर्षा, शीत एवं ताप (गर्मी) ये तीन काल माने गये हैं। इनमें विद्यात होने पर पर्यावरण का सन्तुलन बिगड़ जाता है। यथा-

कालः सृजति भूस्तानिः, कालः संहरते प्रजाः।
कालः स्वपति जागर्ति, कालोहि दुरति क्रमः॥

(हारीत संहिता)

पर्यावरण के सन्तुलित रहने पर वर्षा, शरद्, हैमन्त, शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म ये ऋतुयें भी संतुलित रहती हैं एवं सूर्य की गति के अनुसार दोनों काल उत्तरायण एवं दक्षिणायन साम्यावस्था में जीवन के स्वरूप बनाये रखते हैं। यथा-

वर्षा शरद् हैमन्तो दक्षिणायन मध्यगाः।
शिशिर च बसन्तश्च, ग्रीष्म, स्यादुत्तरायणे॥

(हारीत संहिता)

"पर्यावरण के चिपको नेता सुन्दरलाल बहुगुणा ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

"पर्यावरण संतुलन एवं विकास की सही दिशा में आगे बढ़ने के लिये भूमि उपयोग में परिवर्तन करना पड़ेगा। उन्होंने कहा है कि धरती पर जब मिट्टी और पानी बढ़ेगा तभी वास्तविक विकास होगा। इसके लिये हमें पृथ्वी को वनों से आच्छादित करना होगा। पूरे क्षेत्र में ऐसी वनस्पतियां उगाई जायं जो जलस्रोतों को पुनर्जीवित कर सकें और मिट्टी के क्षरण को रोककर भूमि के उपजाऊपन को बढ़ा सकें। जलस्रोतों के संरक्षण के लिये यह आवश्यक है कि प्राकृतिक रूप से उगने वाली झाड़ियों एवं पेड़ों को सुरक्षित रखा जाय। सिविल एवं सुरक्षित वनों के ढलानों पर चारा उगाया जाय। नदियों के बहान एवं कटान वाले क्षेत्रों में पेड़ पौधे लगाये जायं।" राष्ट्रीय नीति के अनुसार वनों का विकास करते हुये हरित क्रान्ती लाई जाय। कृषि वानिकी, शहरी वानिकी तथा सामाजिक वानिकी को विकसित करने के लिये बड़े स्तर पर कार्यक्रम प्रारम्भ किये जायं। वर्तमान परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये सामाजिक वानिकी को विशेष प्राथमिकता दी जाय। जड़ी-बूटियों की खेती को विभिन्न जलवायु एवं भूमि के आधार पर विकसित किया जाय। पशु चारा, लघु उद्योग एवं कच्चे माल की आपूर्ति हेतु वृक्षारोपण कार्यक्रमों को अधिक बढ़ावा देकर पर्यावरण संरक्षण एवं सुधार की जनोपयोगी योजना विकसित कर इसका सन्देश गांव-गांव, शहरों-महानगरों तक पहुंचाया जाये। स्कूल पौधशाला, किसान पौधशाला, वनौषधि उद्यान, वृक्षपट्टी योजना आदि कतिपय कार्यक्रमों को सुचारू रूप से क्रियान्वित किया जाय। वृक्षारोपण योजना भूमि जल संरक्षण योजना, वन्य जन्तु संरक्षण योजनाओं को युद्धस्तर पर अपनाया जाय। तभी पर्यावरण को प्रदूषण से बचाया जा सकता है। हिमालय में बहुपक्षीय पर्यावरण की समस्या उत्पन्न हो गयी है। उदाहरण के लिये उत्तराखण्ड हिमालय में वनस्पति सम्पदा का ह्रास होता जा रहा है, विशेषकर आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति में प्रयुक्त अनेक महत्वपूर्ण वनौषधियों की उपलब्धि समस्याओं में हैं, अनेक वनस्पतियां शनैः शनैः लुप्त होती जा रही हैं या पूर्व की भाँति पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल पाती। वनों के कटान, पशुचारण, भूक्षरण, जल स्रोतों में कमी आने तथा वनस्पतियों के दोहन आदि कई प्रतिकूल स्थितियाँ उत्पन्न हो रही हैं। इस क्षेत्र के जलवायु, भूमि तथा अन्य भौगोलिक परिस्थितियों में पर्यावरण प्रदूषण के कारण प्रतिकूल प्रभाव पड़ता जा रहा है। इन समस्त पर्यावरणीय समस्याओं का समुचित समाधान आवश्यक है। इस दिशा में अनेक उपायों के साथ, आयुर्वेदीय वनस्पतियों का रोपण तथा सम्बर्धन बहुत सहायक होगा।

पर्यावरण के सन्तुलित रहने पर वर्षा, शरद्, हैमन्त, शिशिर, वसन्त एवं ग्रीष्म ये ऋतुयें सन्तुलित होकर आरोग्य प्रदान करती हैं। सूर्य की गति के अनुसार उत्तरायण (आदान काल) एवं दक्षिणायन (विसर्गकाल) कहते हैं। जोकि इस ऋतु चक्र से स्पष्ट हैं :

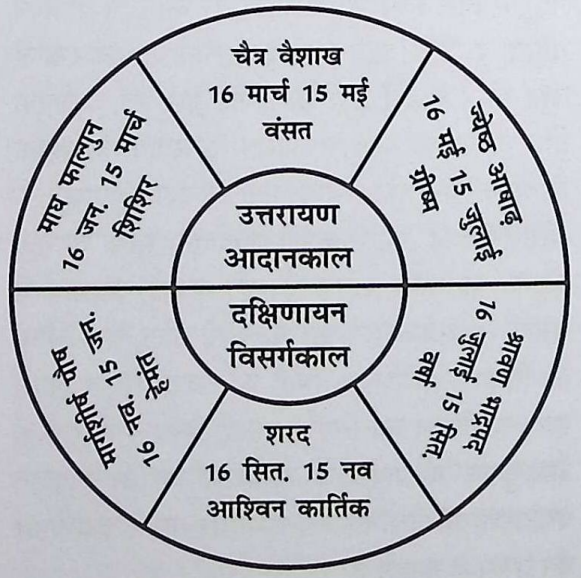

सूर्य की गति के अनुसार उत्तरायण एवं दक्षिणायनकाल

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आदावन्ते च दौर्बल्यं विसर्गादानयोर्नृणाम्।
मध्ये मध्यबलं त्वन्ते श्रेष्ठ मग्रे विनिर्दिशेत्॥

(च.सू. 6.8)

आज हिमालय क्षेत्र के धार्मिक स्थानों एवं पर्यटन स्थलों में बढ़ते हुये पर्यटन के कारण सम्पूर्ण गोमुख-गंगोत्री घाटी, म्यूंडारघाटी, (हेमकुण्ड) फूलों की घाटी आदि स्थलों की नैसर्गिकता समाप्त होती जा रही है। यहाँ की स्थिति तो बेहद दर्दनाक होती जा रही है। कभी यहाँ पर दुर्लभ भोजपत्र वृक्षों, सिमरु, जूनिपर, पदम लकड़ी आदि वृक्षों व झाड़ियों के सुगन्धित सदाबहार वन थे तभी इन स्थानों को भूजवासा, गन्धमादन, तपोवन, नन्दनवन नाम से पुकारा जाता है। अब दिनों दिन पर्यावरण असन्तुलन के कारण नैसर्गिक वन एवं हिमनद क्षीण होते जा रहे हैं। आज, पत्थर और मलवा इन स्थानों पर देखने को मिलता है, इन अभयारण्यों में भी पर्यटन के अधिक फैलाव होने के कारण ईन्धन हेतु मानव की कुल्हाड़ी पहुँच चुकी है। मानव के अतृप्त भोग विलास एवं दोहन प्रवृति के चलते ये वन भी सुरक्षित रह पायेंगे यह कहना कठिन है। इस भयावह विनाश का सीधा असर यहां के तापमान पर पड़ रहा है, पहले सघन जंगलों के नमी के कारण ग्लेशियर स्थिर रहते थे, बहिमानी जलप्रवाह का अद्‌भुत सौन्दर्य दिखाई देता था अब खूबसूरत वादियाँ विनाश के कगार पर जा रही हैं। भूस्खलनों की गति काफी बढ़ गई है। हिम-स्वलन भी सक्रिय हो चुका है ऐसे अति संवेदनशील विशेष महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों की समय रहते सुरक्षा नहीं की गई व पर्यावरण संरक्षण व सम्वर्धन के उपाय नहीं किये गये तो इसके भीषण दुष्परिणाम हो सकते हैं। अतः यह आवश्यक है कि मानव द्वारा प्रकृति पर किये गये अनैतिक आघातों पर सख्ती से रोक लगाई जाय। अन्यथा हिमालय की प्राकृतिक हरी-भरी घाटियाँ मरुस्थल में बदल जायेंगी।

पर्यावरण संरक्षण एवं प्रदूषण को रोकने के लिये उपरोक्त मूल कारणों एवं उनके निराकरण के उपायों को ध्यान में रखते हुये भारत के सभी सीमान्त क्षेत्रों, ग्रामीण आंचलों, नगरों में वन महोत्सव एवं वनौषधि रोपण सरकार एवं स्वयं सेवी संस्थाओं के माध्यम से बराबर चलाये जाने चाहिये। ये वन उपवन राष्ट्र के प्राण एवं जीवन के आधार हैं। इसलिये घरों, आंगनों, खेतों के आस-पास स्कूलों, कार्यालयों एवं खाली स्थानों पर छायादार औषध उपयोग के वृक्ष गम्भरी, अशोक, कचनार, पाठल, बेल, नीम, बकुल, अरणी, श्योनाक, सप्तपर्ण, बट, गूलर पारीष, जामुन, पीपल, आम, असन, रोहीतक, थुनेर, देवदार, चीड़, वांज, वुरांस, पंया, काफल पांगर वरूण आदि उपयोगी वृक्षों का रोपण कार्य तेजी से बिना रूकावट के चलाये जाने चाहिये। क्योंकि ये वन ही हमारे जीवन के आधार हैं और पर्यावरण को सन्तुलित करने में मुख्य सहायक हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भारतीय संस्कृति एवं पर्यावरण संरक्षण में नारी का महत्व

सुबह सूरज को अर्ध्य देती, सांझ को तुलसी चौरे पर दीप जलाती, द्वार पर रंगोली सजाती, कुआं पूजती, पीपल के पेड़ पर कामनापूर्ति के लिए जल चढ़ाती तथा वटवृक्ष से अक्षय सुहाग मांगती हुई नारी, भारतीय संस्कृति में, पर्यावरण से जुड़ी है। आधुनिक शब्दावली में जिसे पर्यावरण (परिवेशिकी या इकोलोजी) कहा जाता है उसे भारतीय पारंपरिक शब्दावली में प्रकृति कहा जाता रहा है। पुरुष प्रकृति के संयोग से ही तो सृष्टि की रचना करता है।

नारी भी प्रकृति ही है, वह सृजन करती है और अपने से संसार का संरक्षण भी। हमारे देश की संस्कृति, रवीन्द्रनाथ टैगोर के शब्दों में मूलतः अरण्य संस्कृति रही है। यह अरण्य संस्कृति हमारे प्राचीनतम ग्रंथों, वेदों से लेकर रामायण-महाभारत पुराणों व संस्कृत के काव्यों में निरन्तर प्रवाहमान रही है। भारतीय दृष्टि प्रकृति के शोषण की न होकर उसके संरक्षण और श्रद्धा की रही है। प्रकृति पर विजय पाने की धारणा तो पश्चिम की है। भारतीय दृष्टि में मनुष्य प्रकृति के साथ है। भारतीय-जन का यही रागात्मक पारंपरिक संबंध अरण्य संस्कृति है। अपनी सृजनशीलता, कोमलता एवं भावुकता के कारण प्रकृति प्रेम नारी की स्वाभाविक प्रवृति के रूप में विकसित हुआ है।

तपोवन भारतीय संस्कृति के अविभाज्य अङ्ग रहे है। हिरणों को अपने हाथ से जंगली धान खिलाती, गायों को थपथपाती, पेड़-पौधों को दया स्नेह वश सींचती हुई वन-कन्याएं हर तपोवन के वर्णनों में मिल जाएंगी। वनश्री, वनलक्ष्मी या वनदेवता की मनोहर कल्पना भी इसी संस्कृति की देन है। वनों-तपोवनों का सात्विक, शांत एवं सुरम्य वातावरण मनुष्य को उस भाव भूमि पर पहुंचा देता है जहां चिरंतन आनंद ही आनंद है। इन आनंद के स्रोतों की रक्षा-भावना नारी में चिरकाल से विद्यमान रही है, यही कारण है कि कालिदास के कुमारसंभव की पार्वती तो छोटे-छोटे पौधों को स्नेहपूर्वक जल से सींच कर पुत्रवत बड़ा करती है और कार्तिकेय के जन्म के पश्चात भी इन वृक्षों के प्रति उसका वात्सल्य कम नहीं होता। कालिदास की शकुंतला का प्रकृति-प्रेम तो इससे भी बढ़कर है। वह तो वृक्षों को सींचे बिना स्वयं जल पीना भी नहीं चाहती और श्रृंगार प्रिया होते हुए भी स्नेह के वशीभूत हो पेड़ों से फूल पत्ते तक नहीं तोड़ती। वह वृक्षों के पहले-पहल फूलने पर उत्सव मनाती है। प्रकृति भी निष्ठुर या अकृतज्ञ नहीं है। वह भी प्रेम का प्रतिदान देती है।

भारतीय संस्कृति में यज्ञ, पर्व या उत्सव सब प्रकृति नियमों में आबद्ध रहे हैं। प्रकृति की सानुकूलता को पाने के लिए उत्सव निरंतर मनाए जाते हैं। मनुष्य मात्र उत्सवप्रिय होता है, परन्तु महिलाएं विशेष रूप से उत्साह एवं श्रद्धा से परिवार, समाज व संसार की भलाई के लिए सब कर्मकांड का निर्वहन करती रही हैं। ग्रामीण संस्कृति के उत्सवों व पर्वो में युगों-युगों से यह उल्लास आरक्षित रहा है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कुलदेवता हो, डीहदेवता हो या जनपद का देवता, सभी की पूजा नारी श्रद्धापूर्वक करती है। संभवतः जयशंकर प्रसाद ने इसीलिए नारी को ''केवल श्रद्धा'' कहा था। लोक जीवन में उत्सवों की अभिव्यक्ति छोटे-छोटे तीज त्यौहारों में अब भी देखी जा सकती है। एक मिट्टी के घड़े के ऊपर कसोरे में अक्षत, नये आम का पत्ता और उस पर जलता हुआ दीप प्रकृति के प्रति रागात्मक भाव की कितनी सुन्दर अभिव्यक्ति देता है। चावल-हल्दी के लेप से बनाए गए भित्तिचित्र जिनमें प्रकृति के अवयव चांद-तारे या पेड़ आदि ही अंकेरे जाते हैं, यह नारी की कलाप्रियता के उद्‌गार हैं। किसी भी मांगलिक अवसर पर घर-आंगन में गेहूं के आटे से चौक पूरना या पिसे चावल से अल्पना बनाना, वातावरण को कितना संजीव, सहृदय व सुकोमल बना देता है। प्राचीन उत्सवों में हमेशा प्रकृति के साथ नारी का एक अतंरंग संबंध ही अभिव्यक्त होता रहा है। तीज, गणगौर, करवाचौथ हो या अहोई-अष्टमी सब में प्रकृति के प्रति सहज स्नेह भावना के साथ-साथ परिवार के सदस्यों के लिए मंगल भावनाएं जुड़ी हैं। लोकसंगीत, लोकगीत या लोकनृत्य भी प्रकृति से जुड़े रहे हैं और नारी इन कलाओं के माध्यम से अपने आपको प्रकृति के संदर्भ में अभिव्यक्त करती है। यही कारण है कि प्राचीन काल में कोई भी यज्ञ या उत्सव नारी की उपस्थिति के बिना संपन्न ही नहीं हो सकता था। श्रीराम को सीता की अनुपस्थिति में सुवर्ण मूर्ति बनवा कर यज्ञ संपन्न करना पड़ा था। वैदिक काल के नित्य-यज्ञ भी प्रकृति और पर्यावरण के क्षण-प्रतिक्षण सुंदर लगने वाले आयामों के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन के रूप में ही मनाए जाते थे। बाद के उत्सवों में हमेशा एक अंतरंग संबंध परिवेशिकी (इकोलाजी) का रहता था। वसंत पंचमी का रिश्ता सरसों के फूल और आम के बौर से था, तो विजय लक्ष्मी का खंजन व नीलकंठ की तलाश से नदी-पोखर में स्नान करना, देवों के सान्निध्य में उल्लास मनाना। रंग-बिरंगे वस्त्र पहनना व अच्छे-अच्छे व्यंजन बनाना। ये सब नारी की दिनचर्या के ही अंग रहे हैं।

वृक्षों में देवत्व की उद्‌भावना हमारी संस्कृति की बहुत बड़ी विशेषता रही है और महिलाओं ने इसे श्रद्धापूर्वक विकसित किया है। पंचवटी अर्थात पांच वृक्षों का समूह हमारे यहां बहुत पूज्य रहा है। पञ्चपल्लव, पञ्चक्षीरीवृक्षों का भारतीय संस्कृति एवं औषध उपयोग में महत्वपूर्ण है। ये पेड़ अपने औषधीय गुणों के कारण महत्वपूर्ण रहे, इसीलिए पूज्य बने। सदियों से नारी वट-वृक्ष की पूजा कर अपने पति की सुख-समृद्धि की कामना करती आई हैं। पीपल की पूजा पेड़ों के प्रति श्रद्धा का प्रतीक हैं। ग्रामीण संस्कृति ही नहीं, नागरिक संस्कृति के विकास में भी वृक्षों का योगदान रहा है। अशोक-दोहद् हो या दोलोत्सव नगरकन्याएं, महिलाएं बहुत उत्साहपूर्वक इनमें भाग लेती रही हैं। वृक्षों के फूलों व पत्तों से श्रृंगार करना, देवपूजा में पुष्पांजलि अर्पित करना आदि कार्य प्रकृति प्रेम के ही प्रतीक हैं। राजाओं के प्रासादों में तो स्त्रियों के लिए प्रमदवन अलग से होता था जहां वे प्रकृति की निकटता पा सकती थीं।

प्रकृति के जिस संतुलन की बात प्रारंभ में की गई है वह आज गड़बड़ा गया है। कारण है बढ़ती हुई आबादी, औद्योगिकि क्रांति, विज्ञान के अनेकों आविष्कारों ने भोगवाद की संस्कृति को जन्म दिया है। व्यक्ति की लोभ की प्रवृति ने प्रकृति के साधनों को अंधाधुंध दुहा है। आत्म केन्द्रित मानव प्रकृति से दूर होता जा रहा है। पर्यावरण प्रदूषण की समस्या दिन-ब-दिन भयावह होती जा रही है। जल हो, वायु हो कुछ भी स्वच्छ नहीं रहा। तेज शोर मानसिक रूप

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

से मनुष्य को विकलांग किए दे रहा है। ओजोन परत में छेद बढ़ता जा रहा है। धरती का तापमान बढ़ता जा रहा है। वृक्षों तथा वनों के विनाश तथा परमाणु ऊर्जा के युग में यों तो मानवमात्र पर उत्तरदायित्व है कि इस समस्या का समाधान करे पर परिवार व समाज की धुरी होने के कारण नारी का विशेष दायित्व है कि वह अपनी आने वाली संतति को अधिक हरीभरी धरती व स्वच्छ रमणीय परिवेश सौंपे। 'मातृत्व' नारी की सबसे बड़ी विशेषता है पर फिनलैंड की (चार हजार) महिलाएं जब शपथ लेती हैं कि वे तब तक गर्भधारण नहीं करेंगी जब तक सरकार परमाणु बिजली बनाने की नीति नहीं बदलती, तो हर संवेदनशील मनुष्य सोचने को मजबूर हो जाता है कि हमारी धरती के भविष्य का क्या होने वाला है उन अजन्मे शिशुओं की प्रार्थनाओं का जिन्हें इंग्लैड के कवि लुई मैकनीस ने अपनी कविता में अभिव्यक्ति दी है यह कविता पर्यावरण का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

अतः पर्यावरण संरक्षण के कार्यक्रमों में भारत की नारी को केंद्र में रखकर ही चलना होगा। प्राचीन मूल्य बहुत बदल गये हैं, नारी घर से बाहर काम करने निकल कर दोहरे कर्तव्य का भार अपने कंधों पर उठा रही है। पर तब भी पुरुष की अपेक्षा नारी ही पर्यावरण से अधिक जुड़ी है। अब भी उत्सव हो या घर-आंगन की छोटी-सी बगिया या वह भी न हो तो फ्लैट की बालकनी में सजाए दो चार गमलों की हरीतिमा-सबका श्रेय नारी की जिजीविषा व उत्साह को है। इसी सदी के तीसरे शतक में हुई अमृतदेवी व उनकी तीन पुत्रियों को कौन भूल सकता है जिन्होंने जोधपुर जिले के खेजडली गांव में पेड़ों को कटने से बचाने के लिए अपने प्राण दे दिए। वे पेड़ों से चिपकी रहीं और राजा के कारिंदों ने कुल्हाड़ी से उनके सिर काट डाले। वनसंरक्षण और वृक्षारोपण के कार्यक्रमों में आज इसी प्रकार के त्याग व बलिदान की अपेक्षा है। जनसंख्या नियंत्रण, जल तथा वायु व ध्वनि-प्रदूषण को रोकने में भी भारतीय नारी सहयोग कर सकती है। बच्चों को जिम्मेदार नागरिक बनाने की प्रक्रिया में उन्हें पर्यावरण के प्रति संवेदनशील बनाने की शिक्षा भी मां के रूप में नारी को ही देनी है। कागज, पेंसिल कम खर्च हों इसलिए स्लेट या ब्लैक बोर्ड का प्रयोग हो, जल, बिजली का अपव्यय न हो, यह सब नारी की क्षमता से ही हो सकता है। इसके अतिरिक्त वह स्वयं भी खाना बनाने में सौर-ऊर्जा का प्रयोग कर, श्रृंगारप्रियता के साधनों, चमड़े की वस्तुओं का प्रयोग कम करके भी पर्यावरण संरक्षण कर सकती है। पर्यावरण का फलक बहुत विस्तृत है। घर-परिवार, ग्राम, नगर सबकी परिस्थितियां हमारे जीवन को प्रभावित करती है। परिवारिक वातावरण के असंतुलन से भी अनेकों शारीरिक एवं मानसिक रोगों का जन्म होता है। परिवार की महत्वपूर्ण इकाई है नारी। यदि अपनी सहनशीलता-दूरदर्शिता से वह परिवार को शान्त वातावरण दे पाती है तो पूरा समाज स्वस्थ होगा। संतुलित समाज ही पर्यावरण प्रदूषण को दूर कर इस पृथ्वी को रहने योग्य बना सकता है। प्रकृति का असंतुलन मनुष्य की लोभ की प्रवृतिवश ही होता है। यदि नारी निःस्वार्थमय संतति को जन्म देती है तो धीरे-धीरे पर्यावरण सुखद होगा और मनुष्य को भविष्य में बेहतर जीवन मिल सकेगा।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पर्यावरण का विनाश एवं ईन्धन की समस्या में नारी जीवन

मनाली से मणिकर्ण (हिमाचल प्रदेश) के बीच करीब 75 किलोमीटर लंबी हिमालय पट्टी जगह-जगह हरित सम्पदा हीन दिखाई दी तो कसौल से कुछ दूर पक्की सड़क पर मिली एक वृद्धा ने उन पहाड़ों की बेरहम हजामत और खासकर नारी पर उसके प्रतिकूल प्रभावों का सारा मर्म समझा दिया- 'ये रूखे और मटियाले पहाड़ हमेशा ऐसे नहीं थे। पेड़ों की कटाई ने इनका यह हाल कर दिया।' कुछ क्षण रुक कर अपनी बूढ़ी पीठ पर जलावन (ईंधन) के लदे हुए भारी भरकम गट्ठर (जिसके असहनीय बोझ से उसका शरीर कमान की तरह मुड़ गया था) की ओर इशारा करते हुए बोली- 'उन दिनों ये सब यहीं आसपास मिल जाता था तो घर-गृहस्थी के लिए भी पूरा वक्त होता था। अब इसी के लिए कई मील दूर तक भटकना पड़ता है, सारा दिन उसी में बर्बाद हो जाता है।'

चूल्हे के लिए लकड़ियों की तलाश में गर्क होती जिंदगी, जिंदगी की व्यथा उस हिमाचली वृद्धा के अलसाए चेहरे पर साफ पढ़ी जा सकती थी। यह व्यथा अकेली उस वृद्धा की नहीं, उस जैसी लाखों ग्रामीण औरतों की है जिनकी तमाम जिंदगी जलावन, चारा और पानी इन तीन बुनियादी जरूरतों की तलाश और ढुलाई में गर्क हो जाती है। पर्यावरण और महिला का अटूट रिश्ता है। 'विकास' और व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए जंगलों के विनाश से पर्यावरण ह्रास का जितना मारक और गंभीर असर इस नाजुक वर्ग पर पड़ा है, उतना शायद ही किसी दूसरे वर्ग पर पड़ा हो। ज्यों-ज्यों जंगलों का सफाया होता गया, ईंधन, चारे और पानी के स्त्रोत भी खत्म होते चले गए और नए स्रोतों की तलाश में ग्रामीण नारी की जिन्दगी लंबी और लंबी होती गई। पर्यावरणवादी अनिल अग्रवाल का कहना है, 'हर नई सवेर ईंधन, चारे और पानी की तलाश के लिए एक लंबा प्रयाण (मार्च) साथ लेकर आती है, महिला बूढ़ी हो या जवान या गर्भवती, एक के बाद एक थकाऊ दिन में उसे घरेलू जरूरतें पूरी करनी ही पड़ती हैं। पर्यावरण परिस्थितियां बदतर होने के साथ-साथ उनका प्रयाण और भी लंबा और थकाऊ होता चला जाता है। गरीबी और पर्यावरण ह्रास के दो पाटों के बीच फंसी गरीब ग्रामीण नारी अपनी शारीरिक सहन शक्ति की करीब-करीब आखिरी सीमा तक पहुंच चुकी है।'

ग्रामीण नारी जिसके पास शहरी नारी की तरह न तो संगठन है, न शक्ति, न किसी सभा-समिति में अपना पक्ष प्रस्तुत करने के लिए कोई लॉबी है और न किसी सरकारी संस्था या निकाय में उसकी कोई नुमाइंदगी है। शहरी नारी के मुकाबले वह इस अर्थ में भी भाग्यहीन है कि जिस ईंधन और पानी की सुविधा शहरी नारी के हाथ में गैस के एक बटन और (पानी की) टोंटी में कैद है, ग्रामीण नारी से यह सुविधा अभी कई दशकों और मीलों दूर है और उसकी जिंदगी सुबह से शाम तक मीलों दूर चल कर उन्हीं का बंदोबस्त करते-करते बस हो जाती है। इसके बावजूद इन अहम् पहलुओं की न केवल सरासर उपेक्षा की जाती है बल्कि जल

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

और ईंधन सप्लाई की योजनाएं बनाते समय इस शक्तिशाली कार्य बल की अपेक्षाओं को भी बड़ी आसानी से नजरअंदाज कर दिया जाता है।

भारतीय सामाजिक संस्कृति में 'नकद अर्थव्यवस्था' का मनोविज्ञान इस कदर गहराई तक पैठ कर गया है कि उसमें ऐसा कोई भी काम 'रोजगार' माना ही नहीं जाता जिसके बदले में उन्हें नकद रकम न मिले और ऐसे रोजगार से भिन्न हर काम महिलाओं के जिम्मे आया है भले ही उसमें नकद आय धेले भर की न हो और आर्थिक बचत कितनी ही अधिक क्यों न हो। ईंधन, चारा और पानी का जुगाड़ भी दुर्भाग्य से ऐसा ही काम हैं जो महिलाओं के जिम्मे आए हैं। एक-एक मद को जुटाने के लिए उन्हें कितनी मशक्कत और जद्दोजहद करनी पड़ती है और उसके बावजूद भी उन्हें स्वास्थ्य और पोषण की बुनियादी अपेक्षाओं से किस हद तक महरूम रहना पड़ता है, इसकी गवाही विभिन्न क्षेत्रों के तथ्य और आंकड़े खुद देते हैं।

अध्ययन बताते हैं कि ग्रामीण नारी पुरुषों से कहीं ज्यादा घंटे जान मारती हैं फिर भी उनके काम को घर-परिवार में उत्पादक या आर्थिक गतिविधि नहीं स्वीकार किया जाता। 'स्टेट ऑफ इंडियाज एन्वायरमेंट' रिपोर्ट में कर्नाटक के एक गांव 'पुरा' में एक अध्ययन के आंकड़े देकर बताया गया है कि वहां महिलाएं कृषि उद्योग और घरेलू कामकाज में कुल कामकाजी घंटों का 46 प्रतिशत समय देती हैं। अध्ययन के मुताबिक वहां महिलाओं का आधा समय ईंधन और पानी लाने और खाना बनाने में ही खर्च हो जाता है। औरत घरों में इस काम में साढ़े सात घंटे और अपेक्षाकृत गरीब घरों में 10 घंटे का समय चला जाता है। रिपोर्ट में पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मैदानी इलाकों में किए गए अध्ययन के आंकड़े देकर बताया गया है कि वहां गर्भवती महिलाओं तक को पानी और चारा जुटाने, पशुओं को सानी-पानी देने और उन्हें चराई के लिए ले जाने के काम में रोजाना 14 से 16 घंटे की हाड़तोड़ मेहनत करनी पड़ती है।

देश के शुष्क और अर्द्ध शुष्क इलाकों में और पहाड़ी गांवों में तो महिलाओं की हालत इससे भी बदतर है। मिट्टी के कटाव, आए दिन मिजाज बदलती जलवायु परिस्थितियां, काश्तकारी के आकार के लगातार छोटे होते जाने, सूखा और सिंचाई सुविधाओं की लगातार कमी से इन इलाकों में पेड़ों और जंगलात का जो तेजी से विनाश हुआ है उससे यहां की महिलाओं की समस्याएं चौगुनी हुई हैं। गुजरात के साबरकांठा जिले का रोली इलाका ऐसे ही एक शुष्क क्षेत्र की महिलाओं की करुण कहानी का उदाहरण है। कम वर्षा और सिंचाई की सीमित सुविधा की वजह से इस गांव के आसपास का लंबा चौड़ा क्षेत्र पेड़ों से खाली हो गया हैं। ईंधन के लिए लकड़ी की तलाश में उन्हें कई किलोमीटर दूर तक कवायद करनी पड़ती है और रोजमर्रा के कामकाज के 15 घंटों में से करीब छह घंटे सिर्फ इसी में निकल जाते हैं।

समाजशास्त्री मधुरा स्वामीनाथन ने पहाड़ी जिले चमोली (उत्तराखण्ड) के एक गांव दविंग का अध्ययन करने के बाद यह नतीजा दिया है कि इस गांव के प्रत्येक परिवार के एक या उससे अधिक सदस्यों को ईंधन और चारे की तलाश में रोजाना 5 किमी. (दोनों तरफ 10 किमी.) खड़ी चढ़ाई चढ़नी पड़ती है और इस प्रक्रिया में उन्हें छह से दस कीमती घंटे खर्च करने पड़ते हैं। 75 फीसदी परिवारों में लकड़ियां बीनने की जिम्मेदारी लाचार महिलाओं को उठानी पड़ती है।

लकड़ियों के भारी भरकम और असहनीय बोझ को ढोते-ढोते इन महिलाओं की जिंदगी किस कदर घिसती-पिसती और खाक होती रहती है, स्वामीनाथन की इस बारे में मार्मिक टिप्पणी है : 'वे भोर होते ही घर से निकल पड़ती हैं और करीब आठ

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

घंटे के बाद अपने-अपने लकड़ियों के गट्ठर के साथ घर वापस लौटती हैं। कुल दुनियां में जितने घंटे सामान्य कामकाज के होते हैं, उतने घंटों में तो इन महिलाओं का दिन का पहला काम निपटता है।'

इस दुश्चक्र के बारे में 'सेंटर फॉर बूमन्स डेवलपमेन्ट स्टडीज' से जुड़ी वीणा मजुमदार का कहना है कि 'ग्रामीण विकास की अधिकांश योजनाओं में सिंचाई को तो उच्च प्राथमिकता दी जाती है लेकिन पीने और प्रक्षालन के लिए पानी की सप्लाई की ओर कम ही ध्यान दिया जाता है।'

इस दुश्चक्र की एक वजह है कि ग्रामीण विकास के ज्यादातर कार्यक्रम और योजनाएं पुरुषों द्वारा पुरुषों की जरूरतों को ध्यान में रख कर तैयार की जाती हैं, जिनमें महिलाओं की जरूरतों को कतई ध्यान में नहीं रखा जाता है इस बात की खरी पुष्टि करती है योजना आयोग के पूर्व सदस्य, एम. एस. स्वामीनाथन की यह व्यंग्योक्ति की 'यदि मर्दों को पीने का पानी ढोकर लाना पड़ता तो नियोजित विकास के 30 साल बाद देश के दो लाख 30 हजार गांव यूं ही पानी की व्यवस्था के बिना न रहते।'

और तो और 'महिलाएं और पर्यावरण' की दशकों पुरानी समस्या पर राष्ट्रीय विकास की प्रतीक समझी जाने वाली पंचवर्षीय योजनाओं तक में चर्चा नहीं की गई। मसलन छठी पंचवर्षीय योजना के दस्तावेज में 'महिला और विकास' नामक अध्याय जिसकी भारत की योजना दस्तावेजों में अपने किस्म का पहला दस्तावेज होने के लिए काफी वाहवाही हुई थी। ईंधन, चारा, पानी आदि जुटाने में महिलाओं की दिक्कतों का कोई जिक्र नहीं था। इसी तरह 'भारत में महिलाओं की स्थिति' नामक रिपोर्ट में भी कोई उल्लेख न किया जाना यह दर्शाता है कि जिन तीन चीजों के जुगाड़ में महिलाओं का एक बड़ा वर्ग अपनी जिंदगी तक गला देता है, उनसे जुड़े शारीरिक श्रम को एक लंबे अर्से तक विकास-गतिविधि माना ही नहीं गया।

नई दिल्ली में 'घरेलू इस्तेमाल एवं सेनिटेशन के लिए जल-संसाधन प्रबंध में महिलाओं की भूमिका' नामक राष्ट्रीय सम्मलेन में जहां इस बात को शायद पहली बार गंभीरता से स्वीकार किया गया कि पर्यावरण बिगाड़ने का सबसे ज्यादा बुरा असर महिलाओं व बच्चों पर पड़ा है वहीं इस बात पर भी आम सहमति थी कि इस समय देश को पर्यावरण और पारिस्थितिक खतरे से निपटने के लिए यह जरूरी है कि जल सप्लाई और अन्य स्रोतों की योजना और प्रबंध में महिलाओं को उचित प्रतिनिधित्व और अधिकार दिए जाएं और इसके लिए राष्ट्रीय पेय जल मिशन के तहत शुरू किए गए कार्यक्रमों को आठवीं योजना में न केवल मजबूत बनाया जाना चाहिए बल्कि मिशन के संसाधनों का इस ढंग से संचालन किया जाए कि उनसे महिलाओं को अधिक अधिकार देने वाले साधन विकसित किए जा सकें।

'चिपको आंदोलन' ने साबित कर दिया है कि पर्यावरण विनाश रूपी अंधे और गुस्सैल बैल को महिलाएं कारगर और सार्थक रूप से काबू कर सकती हैं। लेकिन राष्ट्रीय स्तर पर यह तभी संभव है जब कानूनी तौर पर पंचायत निकायों, सभी स्थायी समितियों और खासतौर से शिक्षा स्वास्थ्य, सेनिटेशन और पर्यावरण संबंधी समितियों में उन्हें उचित प्रतिनिधित्व दिए जाए और चरागाह विकास एवं सामाजिक वानिकी जैसे कार्यक्रमों में अधिक से अधिक महिलाओं की भागीदारी तय की जाए ताकि जल के बाद ईंधन और चारे दो अहम् जरूरतें वे अपने इर्द-गिर्द से ही पूरी कर सकें।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अलौकिक हिमालय एवं वेदों में वर्णित दिव्यौषधियाँ

परिचय

यह हिमालय कल्याण दाता है। पवित्र है, विशाल है। मेधावर्धक है। पापियों के लिये अगम्य है। अलकनन्दा, भागीरथी, गंगा का उद्गम का स्थान है। अनेक प्रकार के रत्नों, दिव्यौषधियों की निधि है। देव, गन्धर्व और किन्नरों का निवास स्थान है। इसका अचिंत्य और अद्भुत प्रभाव है। ब्रह्मर्षि तथा चारणों का स्थान है। दिव्य तीर्थ और दिव्यौषधियों का उद्गम स्थान है। अतिशरण्य है और इस पर देवराज इन्द्र का शासन है। ऐसे हिमालय पर भृगु आदि ऋषि गये थे।

(चरक चि. अध्याय 1/4/3)

देवलोक के अन्तर्गत कैलाश पर गन्धर्व, किन्नर सिद्ध और देवता रहते हैं। मेरू गंगा का उद्गम स्थान है और मेरू पर ही इन्द्रादिक देवता रहते हैं। हिमालय की चोटी पर कैलाश पर्वत है। इस पर अलकापुरी का राजा कुबेर गुह्यकों के साथ रहता था।

मेरूपर्वत

मेरू नाम का पर्वत संसार में प्रसिद्ध है। यह आधा योजन अर्थात दो कोश (तीन मील) चौड़ा और पांच योजन अर्थात बीस कोश (तीस मील) लम्बा है। इसी परिधि में मेरू पर्वत है–

अर्ध योजन विस्तारः पञ्चयोजन मायतः।
परिमण्डलो मध्ये मेरूत्तम पर्वतः॥ (महाभारत)

ब्रह्म भी अपनी ब्रह्मपुरी में यहीं पर रहते थे। इसी मेरू के मध्य में इलावृत प्रदेश था जो स्वर्ग का प्रसिद्ध स्थान था। ब्रह्माण्ड पुराण में लिखा है कि यहां इन्द्रादि 33 देवों का यहीं निवास था। यथा–

मेरूमध्ये त्रयस्त्रिंशत कीडन्ते यज्ञिया सुराः।

(ब्राह्मण पुराण 2/17/34)

मेरोरूपरि विप्रेन्द ब्रह्मणः कथिता पुरी॥

(ब्रह्म पुराण 16/37)

वक्तव्य

यदि गहन रूप से विचार किया जाय तो ऐसा प्रतीत होता है कि हिमालय का भूभाग पश्चिम में गान्धार से लेकर पूर्व में बर्मा तक फैला हुआ है। इसकी पूर्व पश्चिम की लम्बाई 1600 मील है और दक्षिण उत्तर की चौड़ाई 300 मील है। कश्मीर, लद्दाख, हिमाचल प्रदेश, केदारखण्ड, (उत्तराखण्ड) कूर्माचल, दार्जिलिंग, अरूणाचल प्रदेश, मेघालय, सिक्किम, नैपाल, दार्जिलिंग (कालिम्पोंग), भूटान, तवांग आदि पर्वतीय क्षेत्र इसी हिमाचल के गर्भ में है। इसी हिमालय से तिब्बत जाने के मार्ग हैं परन्तु हिमालय समाप्त नहीं होता है। इसी प्रकार बदरीनाथ से 3 मील आगे माणा पास है। भारत की सीमा समाप्त होती है परन्तु हिमालय समाप्त नहीं होता है। चीन का अधिक क्षेत्र हिमालय है। हिमालय क्षेत्र में औषधिप्रस्थ एक क्षेत्र है। जिसके पास एक चोटी पर गंगा जी सर्वप्रथम ब्रह्मपुर से उतर कर गिरी थी। शिव जी ने गंगा की वेगवती धारा बिन्दु सरोवर में छोड़ दिया–

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

यत्र गंगा निपताति पुरा ब्रह्म पुरा सृता।
औषधी प्रस्थनगरात् स्यात् दूरे सानुरूत्तमः॥

(कालिका पुराण-41 अध्याय)

गंगा हिमवान् पर्वत की ज्येष्ठ पुत्री है और राजा भगीरथ की आराधना पर पृथ्वी पर आई। वहां से गंगा की सात धारायें हो गयी। हलादती, पार्वती और नलिनि नाम की तीन धारायें पूर्व दिशा में सुचक्षु, सीता और सिन्धु पश्चिम दिशा में बहीं। सातवीं धारा गंगा की थी जो भगीरथ के पीछे-पीछे चली। शिवजी के पुत्र कार्तिकेय ने यह उपरोक्त वरदान दिया-

योऽयं मातामहो मेऽद्य हिमवान् पर्वतोत्तमः।
तपस्विनां महाभागः फलदोहि भविष्यतिः॥

(स्कन्द पुराण)

अमरावती

मेरु पर्वत की पश्चिम दिशा में और मानसरोवर के उत्तरी भाग में अमरावती स्थान है। इसी के साथ नन्दन वन है तथा गन्धमादन पर्वत भी तिब्बत की सीमा से लगा है जिसे अर्जुन ने इन्द्र की स्थली अमरावती देखा, तो कहा है। ऐसा उल्लेख ब्रह्माण्ड पुराण 2/18/3 में वर्णित है। यथा-

मेरोः प्राच्यां दिशामांतु मानसोत्तर मूर्धनी।
वस्त्वेकसारा माहेन्द्री पुरी हेम परिष्कृतान॥

(मत्स्य पुराण)

उत्तरकुरू

सूर्य के पुत्र अश्विनी कुमारों का जन्म उत्तरकुरू में हुआ था। राजा पाण्डु जब तिब्बत में रहा करते थे, तब उन्होंने अपनी पत्नी कुन्ती से कहा था कि उत्तरकुरू की स्त्रियां पर पुरूषों के साथ स्वच्छन्द विहार करती हैं।

(म.भा. आदिपर्व 120/419)

ऐतरेय ब्राह्मण में अनेक देशों की शासन प्रणाली का उल्लेख है। उसमें उत्तरकुभद्र और उत्तरभद्र का भी है-

तस्मादेतस्यां मुदीच्यां दिशि ये केच परेण हिमवन्तं जनपदा उत्तरकुरवः।
उत्तरमाद्रा इति वैराज्यामैव तेऽभिषिच्यन्ते॥

(ऐतरेय ब्राह्ण अ. 38 खण्ड 3)

अर्थात् उत्तर दिशा में हिमालय के पार तिब्बत में उत्तरकुरू और उत्तरभद्र के नाम के जनपद हैं।

मानसरोवर

रूद्र के निवास कैलाश मानसरोवर, कैलाश से 20 मील उत्तर में है। मानसरोवर तिब्बत का पवित्र तीर्थ स्थान है आजकल वह स्थान चीन के आधीन है। मानसरोवर लगभग 15 हजार फीट की उचांई में है। इसका क्षेत्रफल 200 वर्गमील परिधि 54 मील तथा गहराई 300 फीट है। मानसरोवर के पश्चिम में 6 मील की दूरी पर राक्षस ताल, रावण सरोवर के नाम से है। इसकी परिधि 77 मील है।

मान्धाता पर्वत

मानसरोवर से दक्षिण में मान्धाता पर्वत है। सूर्यवंशी राजा मान्धाता ने वृद्धावस्था में यहीं पर अपना निवास स्थान बनाया था। इसी कारण इसका नाम मान्धाता पड़ा।

कैलाश पर्वत

कैलाश पर्वत मानसरोवर से 20 मील उत्तर में है। इसकी उंचाई लगभग 23 हजार फीट है। इसकी परिक्रमा 32 मील है। यथा-

मध्ये हिमवतं पृष्ठे कैलाशो नामः पर्वतः,
तस्मिन्निवसन्ति श्रीमान् कुबेर सह गुह्यकैः।
अप्सरानुगतो राजा मोदते ह्यलकाधिपः॥

इसी पर्वत पर अलकापुरी का राजा कुबेर गुह्यकजाति के लोगों के साथ रहता था। कैलाश पर्वत का विस्तार कश्मीर से लेकर भूटान तक है। ऐसा आख्यान पुराणों में मिलता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मानसरोवर क्षेत्र में यज्ञ, गन्धर्व, किन्नर, विद्याधर, अप्सरस, राक्षस, पिचाश, गुह्यक, सिद्ध, किरात एवं भूत नाम की जातियां रहती थी। भूत जाति का निवास अपभ्रंश भूटान है। किन्नर हिमाचल प्रदेश के किन्नौर, स्पीती है। आज भी किन्नरों के वंशजों में बहुपति की प्रथायें विद्यमान हैं।

विन्दुसर

कैलाश से ऊपर मैनाक पर्वत की तरफ एक हिरण्यश्रृंग नाम का पर्वत है। यहाँ पर एक रमणीक सुन्दर विन्दुसर नाम का तालाब है। इसी पर सूर्यवंशी राजा भगीरथ ने गंगा एवं अलकनन्दा के निमित्त बहुत वर्षों तक तपस्या की थी। यथा-

अथोत्तरणेन कैलासान् मैनाकं पर्वतं प्रतिः।
हिरण्यश्रृङ्ग सुमहान् महामणि मयोगिरिः॥
रम्यं विन्दुसरों नाम यत्र राजा भगीरथः।
गंगा निर्मित्त राजर्षि रूवास बहुला समाः॥

(म.भा.स.प.अ. 3)

कुबेर

कैलाश पर्वत पर रहते थे। कुबेर महादेव के शिष्य थे-

कुबेर स्त्र्यम्बकसरवो यक्षज्ञराड् मुहेश्वरः।

(अमरकोष) कुबेर के पितामह का नाम ऋषि पुलस्त्य एवं पिता का नाम विश्रवा था। विश्रवा की वाका, पुष्पोत्कटा, कैकसी और देववर्णिनी नाम की चार पत्नियाँ थी। इनमें देववर्णिनी से कुबेर का जन्म हुआ। कुबेर देवगुरू वृहस्पति के दौहित्र (धेवते) थे। कुबेर की स्त्री का नाम ऋषि, पुत्र का नाम नलकूवर था। कुबेर के नगर का नाम अलकापुरी विमान का नाम पुष्पक और उद्यान का नाम चैत्ररथ था। यथा-

कैलाश स्थान मलका पूर्विमानं वु पुष्पकम्।
अस्योद्यानं चैत्ररथं पुत्रस्तु नलकूवरः॥ (अमरकोष)

ऋषि पुनर्वसु आत्रेय

लगभग 5300 वर्ष पूर्व कैलाश के आसपास ऋषि अग्निवेश, ऋषि पाराशर, जतुकर्ण, क्षारपाणि, भेल एवं हारीत आदि ऋषियों ने आयुर्वेद का अध्ययन किया था। उसी युग में पुनर्वसु आत्रेय की अध्यक्षता में आयुर्वेद के वैज्ञानिकों के तीन सम्मेलन दो कैलाश पर, एक सम्मेलन चैत्ररथ वन में हुआ था। इस सम्मेलन में कांकायन, वाह्लीक, काशिपतिवामक, काशिपति वायोर्विद और मिथिलाधीश निमिविदेह ने भी भाग लिया।

रूद्र के गण

नन्दी, भृंगी, बीरभद्र, चण्डीश और मणिमान आदि रूद्र के गण थे एवं गणों के अधिपति गणपति या गणेश होता था। नन्दी कामशास्त्र के ज्ञाता थे। इन्होंने एक हजार अध्यायों में कामशास्त्र लिखा।

महादेव

आचार्य महादेव वेद-वेदांग आयुर्वेद, धनुर्वेद, दिव्यास्त्र, संजीवनी विद्या के ज्ञाता थे। अर्जुन पाशुपत अस्त्र, वारूणशास्त्र, ब्रह्मास्त्र, पाशुपत आदि अनेक अस्त्रों के ज्ञाता थे। अर्जुन ने पाशुपत अस्त्र महादेव जी से प्राप्त किया था। ऋषि पुनर्वसु ने अपने शिष्य अग्निवेश से महा प्रभावकारी महा गन्धहस्ती अगद का उल्लेख किया है। जोकि तीव्र विषहर एवं संजीवन को प्रदान करता है।

संज्जीवनी विद्या

भगवान शिव संजीवनी विद्या के ज्ञाता थे। इसके अतिरिक्त ऋषिभृगु के पुत्र शुक्राचार्य को संजीवनी विद्या का ज्ञान शिव जी से प्राप्त हुआ। ऐसा आख्यान है कि संजीवनी विद्या के ज्ञाता न देवों में था, न राक्षसों में, न नागों में ऐसा उल्लेख शास्त्रों में मिलता है-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

या नास्ति सर्वलोकानां देवानां सर्व राक्षसाम्।
न नागानामृष्णीणां च नच ब्रह्मेन्द्रविष्णुषुफ॥

संजीवनी विद्या के प्रभाव से भगवान् शिव जी ने एक बार भार्गव और परशुराम को जीवित किया था-

तेनमूलप्रहारेण व्यथितो भार्गवस्तदा,
मूर्च्छामवाप राजेन्द्र पपात च हरिस्मरन्।
भार्गव संज्जीवयामास संज्जीवन्या स विद्यया॥

(ब्रह्माण्डपुराण 3/40)

कार्तवीर्यार्जुन (सहस्त्रवाहु) ने परशुराम को शूल से शिर पर प्रहार किया तो परशुराम मूर्च्छित हो गये, तब भगवान् शिव ने संजीवनी विद्या से पुनर्जीवित किया। यथा-

मृतसंज्जीवनी नाम विद्यादत्ता महाप्रभाः।
तान्तु माहेश्वरी विद्यां महेश्वर मुखोद् गतात्॥

(मत्स्य पुराण 249/8)

ऐसा भी उल्लेख मत्स्य पुराण में मिलता है कि देवासुर संग्रामों में देवता जिन दानवों को मार देते थे उनको शुक्राचार्य संजीवनी विद्या से पुनर्जीवित कर दिया करते थे तथा दैत्य-दानव जिन देवों को युद्ध में मार देते थे उनको देवगुरू वृहस्पति पुनर्जीवित कर दिया करते थे तथा दैत्य-दानव जिन देवों को क्योंकि वे संजीवनी विद्या के ज्ञाता थे और देवताओं के चिकित्सक अश्विनी कुमारों ने पूषा के दांत लगाये, भाग की आंख ठीक की और दक्ष का कटा हुआ शिर जोड़ा। यथा-

अथ देवगणः सर्वे रूद्रानीकैपराजिताः।
संछिन्न भिन्न सर्वांगा सत्वीर्क सम्भाभयाकुलाः॥

(भागवत 4/611)

दिव्य औषधियों द्वारा अमृत का सृजन

मध्य एशिया में वक्षुनाम की नदी बहती है, अंग्रेजी में इसे औक्सस तथा फारसी में जेहू कहते हैं। इसके पश्चिम दिशा में क्षीर और क्षीरोद सागर ही केस्पियन समुद्र है। यह दैत्यों-दानवों तथा मनु की सन्तान का प्रधान निवास स्थान था। क्षीरोद सागर के चारों ओर पर्वत थे उन पर्वतों में से एक नाम चन्द्र पर्वत है। इस पर्वत पर सभी प्रकार की दिव्य औषधियां थी। अश्विनीद्वयों ने अमृत सृजन के लिये यहां पर कई प्रकार की औषधियां उगाई। सोमक पर्वत भी वहां था उस पर यज्ञ के सम्भागों में अमृत भी रखा गया। वही द्रोण पर्वत पर विशल्यकारणी और मृत संजीवनी औषधीयां थी। अमृत के प्रादुर्भाव के लिये औषधियों को चुनना और उनका युक्त स्थान पर उगाना उस काल में अश्विनीद्वय का विशेष कार्य था। वाल्मिकी रामायण में वहीं से विशल्यकर्णी तथा मृतसंज्जीवनी औषधियां लाने के लिये सुषेण वैद्य ने हनुमान को आदेश दिया।

(दाक्षिणात्यपाठ युद्धकाण्ड 50/291-32)

में उद्धत है। यथा-

द्वितीय पर्वतश्चन्द्र सर्वौषाधि समन्वितः।
अश्विभ्याममृत स्यार्थे औषध्यस्तत्र संस्थिता॥ (7)
पञ्चमः सोमको नाम देवैर्यत्रामृतं पुरा।
संभृतं च ह्यृतं चैव मातुरर्थे गरूत्मता॥ (10)
चतुर्थः पर्वतो द्रोणो यत्रौषध्य महाबलाः। (35)
विशल्यकारणी चैव मृत सञ्जीवनी तथा॥ (अ. 49)

अमृत का स्वरूप तथा सृजन

याजुक काठक ब्राह्मण के वचन से अमृत के यथार्थ रूप तथा सृजन विधि के सन्दर्भ में कुछ संकेत मिलते हैं कि जब देव और असुरों ने जल के तत्वों को जो अद्वितीय प्रभाव युक्त हैं औषधियों के मिश्रण से अमृत उत्पन्न हुआ। यथा-

देवाश्च वा असुराश्चायां रसमन्थन स्तस्मान्यमथ्य मानादमृत मुदतिष्ठतत्तो।
यः सर्वतोरस समस्त्रवत् स सोम स्तत्सोमयस्य सोमत्वं इति॥ (काष्ठक ब्राह्मण संकल्प पृ.सं. 23)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वायु पुराण में लिखा है कि औषधियों का अमृतरस मही (अमृतालय) स्तुति के पश्चात सुवर्ण पात्र में एकत्र किया गया। क्षीरोद के पास अमृतालय एक विशेष स्थान था। यथा-

पुनः स्तुत्वा देवगणैः पुरंदरपुरोगमैः।
सौवर्णपात्र मादय अमृतं दुदुहे तदा॥

(वायु पुराण 62/75)

अमृत मन्थन के समय औषधिरस के उपर जो प्रथम फेन आया वह विष था-

अमृताथ समुद्रे तु मय्यमाने सुरासुरैः।
ज्ञे प्रागमृतोत्पत्तेः पुरूषो घोर दर्शनः॥

(वायु पुराण)

वैदिक भैषज्य में मृत संज्जीवनी या तद्रूप दिव्यौषधियाँ।

वेद विश्वविद्याओं का अक्षुण्ण भण्डार तथा अजस्त्र स्त्रोत है। विश्वविद्याओं में भैषज्य का महत्वपूर्ण स्थान है। वेदों को सर्वज्ञानमय कहा है। यथा-

सर्वज्ञान मयोहि सः।

मनु का कथन है कि वेद हमारे शाश्वत चक्षु है। जिससे हमें ऐहिक एवं आमुष्मिक (परा-अपरा) ज्ञान की प्राप्ति कर सकते हैं। भारतीय परम्परा के अनुसार वेद ब्रह्मा के निःश्वासों से प्रभूत तथा कान्तदर्शी ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत हुये। वैदिक भैषज्य भारतीय आयुर्वेद का मूल है। यथा-

हिताहितं सुखं दुखं मायुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तंत्रयत्रोक्तः आयुर्वेद स उच्यते॥

(चरक 1-41)

काश्यप संहिता में-

आयुर्वेद मग्रे असृजत् ततो विश्वाति भूतानि।

कहकर और चरक संहिता में-

सोऽयमायुर्वेद शाश्वतो निर्दिश्यते अनादित्वात् स्वभाव संसिद्धत्वात् च। (चरक)

तथा काश्यप संहिता आदि आर्षगन्थों में आयुर्वेद को पंचम वेद की संज्ञा दी है। यथा-

ऋग्वेद-यजुर्वेद सामवेद अथर्ववेदेभ्यः पृथक् पंचमोऽयमायुर्वेदः।

ऋग्वेद में आयुर्वेद के जन्मदाता दिवोदास भारद्वाज और अश्विनी कुमार कहे गये है। (ऋ. 1-12-16) चरक और सुश्रुत के अनुसार भारतीय आयुर्वेद के प्रणेता ब्रह्मा माने गये हैं। ब्रह्मा से दक्ष प्रजापति, दक्ष प्रजापति से अश्विनी कुमारों तथा इनसे इन्द्र ने यह विद्या प्राप्त की। पुराण परम्परा के अनुसार आयुर्वेद के प्रवर्तक प्रजापति को माना जाता है। प्रजापति ने चारों वेदों का परिशीलन कर पंचम वेद आयुर्वेद की रचना की तथा उसे भास्कर को दिया। भास्कर ने भास्कर संहिता की रचना की और इसे 16 शिष्यों को प्रदान किया। वे थे धन्वन्तरि, दिवादास, अश्विनी कुमार, काशिराज, नकुल, सहदेव, अर्की, च्यवन, जनक, बुध, जावाल, जाजलि, पैल, करथ और अगस्त्य। इन सोलह शिष्यों ने पृथक्-पृथक् रचना की। एक मान्यता के अनुसार अन्तिम पुनर्वसु के शिष्य का नाम अग्निवेश था। अग्निवेश चरक के गुरू थे। चरक कनिष्क के समकालीन थे। अतः चरक का काल ईसा पूर्व छठी शती मानी जा सकती है। सुश्रुत संहिता, भेल संहिता, हारीत संहिता आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों में है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हिमालय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं दिव्यऔषधियाँ

हिमालय के पांच खंडों में हरिद्वार से लेकर कैलाश पर्वत तक फैले वर्तमान गढ़वाल को पौराणिक समय में केदारखंड नाम से जाना जाता था। पुराणों में केदारखंड को स्वर्ग भूमि माना गया है। वैदिक काल में गढ़वाल क्षेत्र को हिमवंत देश (यस्येमे हिमवंतों महित्वा-ऋग्वेद 10:121:4) तथा महाभारत में हिमवान नाम से जाना गया है। वेद, पुराण हों या रामायण अथवा महाभारत, इनमें वर्णित सार तथा रचना स्थलों के पुख्ता प्रमाण देखने से लगता है कि आदि हिंदू धर्म संस्कृति का क्षेत्र केदारखंड (गढ़वाल) ही रहा है।

वेदों के संबंध में मान्यता है कि ईश्वर की वाणी से निकले सूक्त पीढ़ी दर पीढ़ी कंठस्थ किये जाते रहे। इन्हें सर्वप्रथम गणेश जी ने लिपिबद्ध किया तथा व्यास ने शब्द रचना की। बदरीनाथ से आगे माणा गांव के पास गणेश गुफा व व्यास गुफा वेदों, पुराणों व महाभारत की रचना स्थली होने का प्रमाण देती हैं। ऋग्वेद 10:27:19 के अनुसार सप्त ऋषियों (मरीचि, अंगिरा, अत्रि, भृगु, अगस्त्य, वशिष्ठ व मनु) ने जल-प्रलय के बाद माणा (बदरीनाथ से 3 किमी. आगे) में ही अपनी रक्षा की थी। केदारखंड 61:36 में वर्णित है कि महाभारत की रचना यहीं व्यास व गणेश गुफा में हुई थी। व्यास जी ने अपने शिष्यों, पैल को ऋग्वेद, वैशंपायन को यजुर्वेद तथा मन्नु को अथर्ववेद की शिक्षा इसी गुफा में दी थी। वैदिक कालीन संस्कृत वाङ्.गमय का मूल स्वरूप गढ़वाल में दृष्टिगोचर होने तथा आज भी गढ़वाली में वैदिक शब्दों को प्रयुक्त किये जाने से यहां वैदिक सभ्यता होने की पुष्टि होती है। वेदों में वर्णित वनौषधियों से आज भी यहां के लोग इलाज करते हैं। सहस्र गढ़ों (जिससे यहां का नाम गढ़वाल क्षेत्र गढ़वाल पड़ा) का उल्लेख भी यहां वैदिक काल की स्मृति संजोए है। वैदिक ऋषियों की तपस्थली आज भी गढ़वाल में तीर्थ यात्रा की दृष्टि से अपना महत्व रखती है। मरीचि ऋषि के पुत्र कश्यप की तपोभूमि बदरीनाथ गंधमान पर्वत पर होने का उल्लेख महाभारत के आदि पर्व 30:10 में है। आदि पर्व 70:21-29 में कोटद्वार के निकट मालिनी तट पर अगस्त्य मुनि नामक स्थान में ऋग्वेद के मंत्रदृष्टा अगस्त्य ऋषि की तपस्या का उल्लेख स्कदं पुराण के केदारखंड 47:20 तथा 197:8 में मिलता है। महाभारत आदि पर्व 214:2 में अगस्त्य वट (अगस्त्य मुनि) स्थान पर अर्जुन के आगमन का वर्णन है। ऋग्वेद नदीसूक्त 10:35:5 में भारतीय संस्कृति व सभ्यता का उदय गंगा, यमुना व सरस्वती तट पर से माना गया है। वैदिक ऋषि अत्रि का आश्रम, केदारकांठा के समीप भृगु मुनि का आश्रम, यमुनोत्तरी में पाराशर कुटी तथा ऋषिकेश के निकट ब्रह्मपुरी में पंतजलि मुनि का आश्रम आज भी वैदिक ऋषि मुनियों की तपस्थली होने का प्रमाण देते हैं।

रामायण काल के अवशेष भी गढ़वाल में मिलते हैं। केदारखंड 188:88-89 में भगवान राम द्वार कमलेश्वर (श्रीनगर) में कमल पुष्पों से महादेव की पूजा का वर्णन है। भगवान राम के पूर्वज रघु के

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

साथ यहां की प्राचीन जातियों किरात आदि से युद्ध का उल्लेख पौराणिक ग्रंथों में है। पौड़ी के समीप सितान्स्यूं में सीता जी की स्मृति में जुटने वाला मेला व वाल्मीकि आश्रम तथा यहीं देवल गांव में लक्ष्मण मंदिर रामराज्य के बाद सीता वनवास व वाल्मीकि द्वारा महाकाव्य रामायण की रचना का आभास कराता है। मान्यता है कि सीता के इस वन में रहने से यहां का नाम सितान्स्यूं पड़ा।

महाभारत में गढ़वाल के इतिहास की अति महत्वपूर्ण तथा प्रमाणिक सामग्री मिलती है। श्रीमद्भागवत 11:29:41 में भगवान कृष्ण उद्धव को आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्ति हेतु बदरिकाश्रम जाने का आदेश देते हैं। महाभारत के अनुसार पांडव बदरिकाश्रम यात्रा के दौरान कुलिदंराज सुबाहु के अतिथि रहे थे। राजा सुबाहु किरात्, तंगण, पुलिंद आदि जातियों का राजा था। राजा ने पांडवों का विधिवत् पूजन भी किया था। राजा सुबाहु की राजधानी श्रीपुर (श्रीनगर गढ़वाल) मानी जाती है-

किराततगड़णाकीर्ण पुलिन्दशतसंकुलम्,
हिमवत्यमरैर्जुष्टं बह्वश्चर्य समाकुलम्।
सुबाहुश्चापि तात् दृष्ट्वा पूजयाप्रत्यगृहणत्॥

(वन पर्व 140:25)

वन पर्व 145:11-25 में पांडवों द्वारा बदरिकाश्रम यात्रा का वर्णन तथा यमनोत्तरी पर्वत पर पांडवों द्वारा विशाखयूप नामक वन में एक वर्ष तक रहने का उल्लेख (वन पर्व 176:1-21) है। ऐतिहासिक सांस्कृतिक परम्पराओं से परिपूर्ण गढ़वाल में आज भी पांडव नृत्य तथा उत्तरकाशी टोस घाटी में दुर्योधन मंदिर पुष्टि करते हैं कि कौरव-पांडवों का यहां से अटूट संबंध रहा था। देहरादून से 125 किमी. दूर यमुना-रिखनाड़ नदी के संगम पर लाखामंडल में पांडवों के अज्ञातवास की स्मृति तथा जोशीमठ-बदरीनाथ के बीच पांडुकेश्वर में राजा पांडु की तपस्या का वर्णन और पांडवों द्वारा अपने ही गोत्र हत्या के प्रायश्चित के लिए भृगुतुंग-केदारनाथ की यात्रा का वर्णन पौराणिक ग्रंथों में आता है।

गढ़वाल की महिमा वैदिक ग्रंथों से लेकर पुराणों व महाभारत में वर्णित होती रही है। यहां के इतिहास के साहित्यिक साक्ष्य के रूप में धार्मिक ग्रंथों के अतिरिक्त कालिदास कृत रघुवंश, मेघूदत, कुमारसंभव, अभिज्ञान शांकुंतलम्, बाण का हर्षचरित के अलावा यहां की लोक गाथाएं, जागर, तंत्र-मंत्र, देशी-विदेशी विद्वान् यात्रियों के यात्रा वर्णन के साथ किसी राज्य (गढ़) या गांव की वंशावलियां विशेष महत्व रखती हैं। पौराणिक धर्म ग्रंथों में गढ़वाल को ब्रह्मावर्त, आर्यावर्त, इलावर्त, हिमवान नामों से भी उद्धृत किया गया है।

दिव्य हिमालय का भूगोल

भारतवर्ष के उत्तरी सीमांत में विशाल हिमालय की हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियां फैली है, जो प्रकृति का एक अद्भुत स्वरूप प्रस्तुत करती है। भारत की भूवैज्ञानिक रचना प्रकृति तथा भूगोल के अध्ययन में इनका महत्व आधारशिला के समान है। इन हिमालयी श्रेणियों का मूल आधार पामीर के पठार में निहित है। पामीर जिसे भूवैज्ञानिक भाषा में पर्वतीय गांठ की संज्ञा दी जाती है, कई विशाल पर्वत श्रेणियों का संधि स्थल है। पामीर से दक्षिण-पूर्व की ओर क्रमशः काराकोरम, कुनलुन, मुजंताग और हिमालय की लद्दाख और जसकार श्रेणियां निकलती हैं।

हिमालय का उद्भव

संसार की उच्चतम श्रेणियों वाले हिमालय के उद्भव की प्रक्रिया भी आश्चर्यजनक और रोचक है। यह हिमालय कई अन्य पर्वतों की तुलना में अपेक्षाकृत नया है तथा अपनी युवावस्था में है। दक्षिण भारत के नीलगिरि तथा मध्य प्रदेश में स्थित विध्याचल भी हिमालय से पुराने तथा वृद्ध हैं। भूवैज्ञानिक अध्ययनों से यह स्पष्ट हो गया है कि मोड़दार पर्वत श्रृंखला के रूप में हिमालय का उत्थान

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तृतीयक युग (Tertiary Era) में टीथिस सागर (Tethys) से हुआ, जो गिरिनिर्माणक प्रक्रिया (Alpine Drogency) का अंग था। ऐसी भौगोलिक मान्यता है कि वर्तमान हिमालयी क्षेत्र पृथ्वी के आदिकाल से तृतीयक युग के पूर्व तक सागर में डूबा था।

भूतत्ववेदत्ताओं का मत है कि पुरातन काल में समीपवर्ती सरिताओं के बहाव के साथ प्रतिवर्ष करोड़ों टन मिट्टी बहकर टिथिस सागर में आती रही है। यह क्रम लाखों वर्ष तक चलता रहा और सागर की पेंदी में मिट्टी की परतों के जमाव के साथ बोझ बढ़ता गया। फलस्वरूप धरातलीय संतुलन के नियमानुसार सागर के उत्तरी और दक्षिणी भागों के सशक्त भू-खण्डों में गति आई। ऐसे भूसंचालन से सागर तल की परतों में संकोच हुआ। इस संकुचन से परतें मुड़ कर उपर उठने लगीं। सागर से ऊपर उठता हुआ यह उभार ही ऊँची पर्वतमाला के रूप में वर्तमान काल में हिमालय बन कर खड़ा है। वैज्ञानिक अध्ययनों से यह ज्ञात होता है कि हिमालयी क्षेत्र में भूसंचालन और उत्थान की प्रक्रिया अब मंद हो गई है, पर समाप्त नहीं हुई है। क्योंकि अब भी इसके शिखरों की ऊँचाई प्रत्येक दशाब्द में बढ़ती जा रही है। यूरोप की सुप्रसिद्ध पर्वतमाला आल्पस की निर्माण प्रक्रिया और संरचना भी हिमालय के समान है। इनका उत्थान काल भी समसामयिक है। इस प्रकार यह कहा जाता है कि यूरोप के पश्चिमी छोर से एशिया के पूर्वी छोर तक एक ही विशाल पर्वतमाला का निरंतर विस्तार हुआ है।

पर्वत श्रेणियों का विस्तार

पर्वतराज हिमालय की श्रेणियाँ उत्तर पश्चिम में कश्मीर से आरम्भ होकर पूर्वोत्तर भारतीय सीमा और बर्मा तक करीब 2500 किमी. की लम्बाई में फैली है। मुख्य हिमालय में कई समानांतर पर्वत श्रेणियां है, जिनमें इनकी चौड़ाई 150 से 200 किमी. तक की हो जाती है। विशाल हिमालय को इसकी विभिन्न पर्वत श्रृंखलाओं के आधार पर मुख्यतः तीन भागों में विभाजित किया जाता है-

1. **वृहत्तर हिमालय (Greater Himalayas).**
2. **मध्य या लघु हिमालय (Central or Lesser Himalayas).**
3. **बाह्य या उप हिमालय (Outer or Sub Himalayas).**

समानान्तर श्रेणियों के आधार पर ही अन्य विभाजन इस प्रकार है-

1. **अंतः श्रेणी हिमालय (Inner Himalayas).**
2. **मध्य श्रेणी हिमालय (Middle Himalayas).**
3. **बाहरी श्रेणी हिमालय (Outer Himalayas). या लघु हिमालय (Lesser or Sub Himalayas).**

इसके अतिरिक्त अध्ययन की सुविधा के लिए हिमालय का क्षेत्रीय विभाजन भी किया गया है, जिसके अनुसार पूरे पर्वतीय क्षेत्र को पश्चिमी हिमालय, मध्यवर्ती हिमालय तथा पूर्वी हिमालय के तीन उपक्षेत्रों में विभाजित किया जाता है। सर्वमान्य भौगोलिक विभाजन के तीन प्रखंडों का विवरण इस प्रकार है-

1. **अंतः श्रेणी या महाहिमालय (Inner Greater Himalayas.)**

यह हिमालय की प्रमुख और सर्वोच्च श्रृंखला है, इस श्रेणी की औसत ऊँचाई 4500 मीटर से अधिक है और यहाँ की उत्तुंग चोटियाँ सदा हिमाच्छादित रहती हैं। संसार की सबसे ऊँची पर्वत चोटी ऐवरेस्ट (Mt. Evrest) इसी श्रेणी में नेपाल की सीमा में स्थित है, जिसकी वर्तमान ऊँचाई 8848 मीटर है। इसके अलावा महाहिमालय श्रेणी में अन्य कई ऊँचे शिखर हैं, जिनमें से कतिपय सुप्रसिद्ध उच्च शिखरों की ऊँचाई इस प्रकार है-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कंचन जंगा	8598	मीटर
मेकालू	8487	"
गोसाई थाना	8013	"
अन्नपूर्णा	8078	"
धवल गिरि	8172	"
नंदा देवी	7817	"
त्रिशूल	7120	"
कामेट	7756	"

2. मध्य श्रेणी (Middle Himalayas).

महाहिमालय के दक्षिण में फैली पर्वत श्रृंखला मध्य श्रेणी कही जाती है। इसकी चौड़ाई 40 से 60 किमी. की तथा औसत ऊँचाई 3500 मीटर है। उत्तर में महाहिमालय तथा दक्षिण में लघुहिमालय के मध्य में फैली इस श्रेणी में दोनों ओर अनेक गहरी घाटियां हैं तथा ढ़ालों पर सघन वन हैं। हिमालय के इस मध्यवर्ती भाग में कई स्वास्थ्यप्रद सुन्दर स्थान हैं, जहाँ पर्वतीय नगर बस गए हैं। शिमला, दार्जिलिंग, रानीखेत आदि इसके उदाहरण हैं।

3. लघु हिमालय (Leser Himalayas).

ये हिमालय की अपेक्षाकृत छोटी श्रेणियाँ है, जिनमें कई नदी घाटियाँ है। औसत रूप में तीन हजार मीटर तक की ऊँचाई वाली ये श्रेणियाँ 10 से 50 किमी. की चौड़ाई में फैली हैं। इन्हें शिवालिक श्रेणी या उपहिमालय (Sub Himalayan) की श्रेणियाँ भी कहते हैं। पर्वतराज हिमालय के पग या आधार-स्वरूप इस पहाड़ी श्रृंखला को देवाधिदेव शिव के सोपान समझ कर शिवालिक नाम दिया गया है।

हिमालय की उपर्युक्त तीन श्रेणियों का अधिक विस्तृत रूप पश्चिमी भाग में ही देखने को मिलता है। पूरब की ओर मुख्यत: केवल दो श्रेणियाँ- महाहिमालय और लघुहिमालय रह जाती है। इसलिए हिमालय के संपूर्ण विस्तार में पश्चिमी भाग में दो समानान्तर घाटियाँ हैं, जिन्हें पश्चिम में "दून" तथा पूर्व में "द्वार" का संबोधन मिला है।

हिमनदियों का क्षेत्र

संसार की उच्चतम पर्वतमाला हिमालय का शिखर भाग सदैव हिमाच्छादित रहता है। अधिक ऊँचाई और सघन हिमपात के कारण कई स्थानों पर हिमक्षेत्र (Snowfields) बन गए हैं। हिम के अधिक होने से बर्फ की विशाल राशि ढ़ालों पर खिसकने लगती है, जिससे हिमनदियों (Glaciers) का उद्भव होता है। महाहिमालय की ऊँची श्रेणी में ऐसी अनेक हिमनदियाँ हैं। किन्तु मध्य श्रेणी और लघुहिमालय में हिमनदियों का अभाव है, क्योंकि हिमालय पर हिम रेखा (Snow Line) की औसत ऊँचाई 4000 मी. के करीब रहती है जो महाहिमालय की श्रेणियों तक ही सीमित है।

हिमालय की हिमनदियों से ही उत्तर भारत की सदा प्रवाहिनी नदियों का उद्गम है। गर्मियों में भी इन नदियों को बर्फ के पिघलने से यथेष्ट जल प्राप्त होता रहता है। हिमालय के टिहरी गढ़वाल क्षेत्र में सुप्रसिद्ध हिम नदी गंगोत्तरी है, जहाँ से भागीरथी गंगा का उद्भव होता है। कुमायूँ क्षेत्र में पिंडारी, संकल्प, मिलन और पोतिग हिम नदियां है, जो प्राय: खिसकती हुई हिमरेखा से नीचे चली आती है। पूर्वी हिमालय के सिक्किम क्षेत्र में कंचनजंगा से निकलने वाली कतिपय दर्शनीय हिम नदियाँ है। दार्जिलिंग से दिखने वाली अकुल थांग तथा दूसरी गुड्चा हिम नदी है। इसकी सबसे प्रसिद्ध और विशाल हिम नदी जीमूं है। इनके अलावा हिमालय के पश्चिमी भाग कश्मीर क्षेत्र में कई ऐसी हिम नदियाँ हैं, जो हिम रेखा के नीचे दो से तीन हजार मीटर की उँचाई तक आ जाती हैं। इनमें हिनार्ची, आर्ची, मीना पिन, मचाई और सोनापानी उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार गगनचुंबी शिखरों, दूर तक फैली हिमंमडित श्रेणियों सूर्यकिरणों से उद्भासित

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चांदी-सी चमकती हिमनदियों और हरी-भरी उपत्यकाओं से पूर्ण नगाधिराज हिमालय की शोभा अतुलनीय है। यह केवल विवरण योग्य नहीं बल्कि अनुभूतिगम्य है। तभी तो युग-युगांतर से वेद पुराण हिमालय की महिमा का गौरव-गान करते आये हैं। इसी की पावन गोद में बैठकर आलोकित आनंद का अनुभव करते हुए आज भी अनेक तपस्वी ध्यानावस्थित हो परमज्ञान का अवगाहन कर रहे हैं। धन्य है, यह गरिमामय हिमालय, जो अपनी विशालता तथा पूंजीभूत नैसर्गिक सौन्दर्य से किसी भी प्राणी को सहसा अविभूत कर देने में सक्षम है-

हिमालय के आंगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार।
उषा ने हँस अभिनंदन किया ओर पहनाया हीरक हार।
जगे हम, लगे जगाने विश्व, लोक में फैलाकर आलोक।
व्योम-तम-पुंज हुआ तब नष्ट, अखिल निसृतहो श्री अशोक।।
विमल वाणी ने वीणा ली, कमल कोमल कर में सप्रीत।
सप्तवर सप्त-सिन्धु में उठे, छिड़ा तब मधुर साम-संगीत।। **-जयशंकर प्रसाद**

इसका रजत शैलशिखर बड़ा ही शोभायमान है। इसकी मनोहर गगनचुम्बी धवन श्रृंग की दिव्य छटा गिरिराज हिमालय को स्वर्गिक शोभा प्रदान करती है। समुद्र-सतह से 22028 फीट की ऊँचाई पर स्थित यह कैलाश अपने मस्तक को ऊँचा कर अपनी उज्जवल छवि का प्रदर्शन करता हुआ नीलाकाश का भेदन कर रहा है। इसकी परिक्रमा की परिधि जो 32 मील है, के चारों ओर पांच गोम्फा (बौद्धमठ) है, जिनमें दिन रात शिखर पर स्थित प्रबुद्ध भगवान बुद्ध और उनके पाँच सौ बोधिसत्वों का यशोगान होता रहता है। संस्कृत ग्रन्थों में श्री कैलाश शिखर की अनन्त महिमा गायी गयी है और उसके ऊपर सर्वमंगलाकार शिव का निवास स्थान माना गया है। यह शुभ्र शिखर दक्षिण में 20 मील दूरी से राजहंसों से सुशोभित मानसरोवर और रावण हृद का अवलोकन कर रहा है।

हिन्दू पुराणों में कैलाश-गाथाएँ

श्री कैलाश मानसरोवर का दिव्य वर्णन हिन्दू पुराणों में भी बहुतायत से मिलता है। महाकवि कालिदास ने भी अपने मेघदूत में इसका वर्णन इस प्रकार से किया है-

गत्वाचोर्ध्व दशमुख भुजोच्छववासित प्रस्यं संधेः।
कैलाशस्य त्रिदशवन्दिता दर्पणस्यातिथिः स्याः।।
श्रृंगोच्छायैः कुमुदविश दैर्यो वितत्यस्थितिः खम्।
राशीभूतः प्रतिदिन मित्र त्र्यम्बकसयाह हासः।।

(मेघदूत)

यक्ष कहता है- 'हे मेघ, तुम आगे जाकर कैलाश पर्वत पहुंचना जिसके प्रान्त रावण ने हिला दिये थे और जो देवांगनाओं के दर्पण के समान है। यह पर्वत शुभ्र कुमुदों के समान अपने श्वेत शिखरों को आकाश में फैलाए हुए है और उसे देखकर ऐसा बोध होता है जैसे शिवजी का प्रतिदिन का अट्टहास एक स्थान पर इकट्ठा हो गया है'।

भारत में आर्यो के आगमन काल से ही तिब्बत और विशेष कर कैलाश मानसरोवर प्रांत हिन्दू पुराणों में हिमालय के अंश के रूप में वर्णित है। विश्वविश्रुत विद्वान भी प्रणवानन्द जी की यही मान्यता है। रामायण और महाभारत में विशेष रूप से स्कंद पुराण के अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष फल को देनेवाला है। कैलाश के आसपास अनेक तीर्थ स्थल है जिनमें एक तीर्थ पुरी है जो कैलाश से 28 मील की दूरी पर है और जहाँ भस्मासुर भस्म हुआ था। यहीं पर गर्मजल के अनेक स्रोत हैं, जो प्रायः या तो स्थान बदलते रहते हैं या कभी-कभी बन्द हो जाते हैं। इन स्रोतों के पास बहुत से चूने जैसे श्वेत पदार्थ हैं जिन्हें

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भस्मासुर का ढ़ेर कहते हैं। यात्रीगण इस श्वेत पदार्थ को पवित्र मानकर प्रसाद के रूप में ले जाते हैं। तिब्बती यात्री कैलाश मानसरोवर का दर्शन करते हैं। इनकी पौराणिक गाथाओं में इनका अच्छा वर्णन मिलता है किन्तु वह हिन्दू पुराणों से थोड़ा बहुत भिन्न है। तात्पर्य यह कि कैलाश मानसरोवर का वर्णन दोनों देशों में मिलता है।

मानसरोवर की महिमा बड़ी व्यापक है। पूरे हिमालय को पार करके तिब्बती पठार में लगभग 30 मील जाने पर पर्वतों से घिरे दो महान सरोवर मिलते हैं। मनुष्य के दोनों नेत्र के समान वे स्थित हैं और उनके मध्य में नासिका के समान ऊपर उठी हुई पर्वतीय भूमि है, जो दोनों को अलग करती है। इनमें एक है- राक्षस ताल और दूसरा मानसरोवर, राक्षसताल विस्तार में बहुत बड़ा है, वह गोल या चौकोर नहीं है। उसकी कई भुजाऐं मीलों दूर तक टेढ़ी-मेढ़ी होकर पर्वतों में चली गयी हैं। कहा जाता है कि किसी समय राक्षसराज रावण ने वहीं खड़ा होकर भगवान शंकर की आराधना की थी। दूसरा है सुप्रसिद्ध मानसरोवर। उसका जल अत्यंत स्वच्छ और अद्‌भुत नीलाभ है। उसका आकार लगभग गोल या अंडाकार है और उसका बाहरी घेरा 22 मील का है। मानसरोवर 51 शक्तिपीठों से एक है। सती की दाहिनी हथेली इसी में गिरी थी।

मानसरोवर में हंस बहुत हैं। राजहंस भी हैं और सामान्य हंस भी, सामान्य हंसों की दो जातियां हैं- एक मटमैले सफेद रंग के और दूसरे बादामी रंग के। ये आकार में बतखों से बहुत मिलते हैं, किन्तु इनकी चोंचें बतखों से पतली हैं, पेट का भाग भी पतला है और ये पर्याप्त ऊँचाई पर दूर तक उड़ते हैं। मानसरोवर में मोती हैं या नहीं पता नहीं, किन्तु तट पर उनके होने के कोई चिह्न नहीं। कमल उसमें सर्वथा नहीं हैं, एक जाति की सिवार अवश्य है। किसी समय मानसरोवर का जल राक्षसताल में जाता था। जलधारा वाला वह स्थान तो अब भी है, किन्तु वह भाग अब ऊँचा हो गया है। प्रत्यक्ष में मानसरोवर से कोई नदी या झरना भी नहीं निकलता। किन्तु मानसरोवर पर्याप्त उच्च प्रदेश में है। कुछ अन्वेषक अंग्रेजी विद्वानों का मत है कि कई नदियाँ मानसरोवर से ही निकलती हैं जिनमें सरयू और ब्रह्मपुत्र के नाम उल्लेखनीय हैं। मानसरोवर का जल भूमि के भीतर के मार्गों से मीलों दूर जाकर उन नदियों के स्रोत के रूप में व्यक्त होता है।

मानसरोवर के आसपास या कैलाश पर कहीं कोई वृक्ष नहीं, कोई पुष्प नहीं। सच तो यह है कि उस क्षेत्र में छोटी घास और अधिक से अधिक फुट सवा फुट तक ऊँची उठने वाली एक कंटीली झाड़ी को छोड़कर और कोई पौधा नहीं होता। मानसरोवर का जल सामान्य शीतल है। उसमें मजे से स्नान किया जा सकता है। उसके तट पर रंग-बिरंगे पत्थर और कभी-कभी स्फटिक के भी टुकड़े पाये जाते हैं।

स्वामी प्रणवानन्द जी के मतानुसार हिमालय पर्वत अनन्तकाल से शिव-पार्वती का निवास स्थान है। सुर, असुर, नर, यक्ष, किन्नर, सिद्ध विधाधर, नाग, अप्सरा, हहाहूहु मानखंड 1 में और साधारणतया सभी पुराणों में कैलाश मानसरोवर की महिमा वर्णित है।

एक पौराणिक गाथा है कि जम्बू द्वीप के मध्य में विविध वर्णो से युक्त दिव्य मेरू पर्वत या कैलाश है। उसका पूर्व भाग ब्राह्मण जैसा स्वेत, दक्षिण भाग वैश्य जैसा पीत, उत्तर भाग क्षत्रीय जैसा रक्त वर्ण और पश्चिम भाग शूद्र जैसा श्यामवर्ण है। चारों दिशाओं में रक्षा के लिए चार पर्वत हैं। जिन पर क्रमशः कदम्ब, अश्वत्थ, जम्बु और औटुम्बर या वट के वृक्ष हैं। रामायण के किष्किन्धा काण्ड में लिखा

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गया है कि कैलाश के जिस भाग में मानसरोवर स्थित है, वह क्रोंच पर्वत है। महाभारत के भीष्मपर्व में कैलाश को हेमकूट कहा गया है। इसी प्रकार महाभारत के वन द्रोण तथा अनुशासन पर्व में कैलाश का पर्वत आता है। एक समय लंकापति रावण ने लगातार कई वर्षो तक कैलाशपति शंकर की घोर तपस्या की। इस पर भी वे प्रसन्न नहीं हुए और उसे दर्शन तक नहीं दिए। इस पर एक दिन रावण कैलाश शिखर के नीचे घुसा और चाहा कि इसे जोर से हिला दें ताकि शिव अपनी समाधि से उठकर इष्ट वरदान दें। उसके इस उद्देश्य को पहले ही से जानकर शिव ने रावण को कैलाश के नीचे दबा दिया, जिससे कि वह बाहर न निकल सके। तब रावण ने अपने दश सिरों में से एक को काटकर उसका सितार बनाया और शिव के परम प्रिय तांडव-नृत्य का स्तोत्र रचकर गाने-बजाने लगा। इस बात से प्रसन्न होकर शिव ने रावण को वरदान दिया।

एक समय सनक, सनन्दन, सनतकुमार सनत् सुजात आदि ऋषि कैलाश शिखर पर शिव को प्रसन्न करने के लिए तपस्या कर रहे थे। इस अवधि में 12 वर्ष तक अनावृष्टि होने के कारण आसपास की सभी नदियाँ सूख गई। स्नान आदि के लिए ऋषियों को बहुत दूर मंदाकिनी तक जाना पड़ता था। इसलिए उनकी प्रार्थना पर ब्रह्मा ने अपने मानसिक संकल्प से कैलाश के पास एक सरोवर का निर्माण कर स्वयं हंस का रूप धारण कर उसमें प्रवेश किया। ब्रह्मा की मानसिक सृष्टि होने के कारण इसका नाम मानस सरोवर पड़ा। अब इसे मानसरोवर या केवल मानस भी कहते हैं। इसके जल के ऊपर सरोवर के मध्य भाग में एक कल्प वृक्ष उत्पन्न हुआ। यह मानसरोवर बड़ा ही मोहक एवं सुन्दर है।

एक अन्य गाथा के अनुसार महाराजा मांधाता ने इस सरोवर का सर्वप्रथम पता लगाया था। मानसरोवर के दक्षिण की ओर के पर्वत पर मांधाता ने तपस्या की, जिससे वह अब भी मांधाता के नाम से प्रसिद्ध है। इसे गुरला मंधाता भी कहते हैं। तिब्बती भाषा में तो इसे नमोनानी या मेमोनानी कहते हैं। मांधाता तिब्बत में सबसे ऊँचा पर्वत है।

एक बार की बात है कि दत्रात्रेय ऋषि विंध्याचल से हिमालय का अवलोकन कर हिमालय को देखने गए। उन्होंने मानसरोवर में स्नान कर राजहंसो का दर्शन किया। इसके बाद कैलाश की एक गुफा में आसीन शिव पार्वती के दर्शन किए और पूछा- संसार में सबसे पवित्र स्थान कौन सा है? शिव ने उत्तर दिया सबसे पवित्र स्थान हिमाचल है। जिसमें कैलाश और मानसरोवर स्थित है। हिमालय का दर्शन तो दूर रहा, व्यक्ति उसका केवल ध्यान कर लेता है, उसके जन्मजन्मांतर के पाप धुल जाते हैं। इसका ध्यान काशी-दर्शन से भी बढ़कर है। यह वर्णन के परे है।

औषध प्रकार

ऋग्वेद में औषधियों के तीन प्रकार बताये गये हैं-

1. दिव्य
2. पार्थिव
3. जलीय

त्रिनों अश्निब्रना दिब्यानि भेषजात्रिः पार्थिवानि त्रिरूद् मदभ्यः॥

इसका अभि:प्राय तीन दोषों की निवृति अथवा त्रि:दुख (आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक) से निवृति हो सकती है। ऋग्वेद में पूरा सूक्त औषध सूक्त के नाम से विद्यमान है। जब से मानव ने जन्म लिया तभी से मानव शरीर को आधि-व्याधियों ने घेर लिया। रोग का पैदा होना किसी कारण से होता है। यथा-

निदानं त्वादि कारणम।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ये कारण कई प्रकार के होते है। वैदिक विश्वास के अनुसार रोग तभी जन्म लेता है जब कोई पैशाचिक शक्ति किसी कारण से हमारे शरीर में प्रवेश करती है। पैशाचिक शक्ति को वेदों में राक्षस्, अमीबा, रोगाणु (अथवा जीवाणु), प्रज्ञापराध, मातुधान आदि शब्द आये है। इन्हें कृमि भी कहते हैं। विष भी माना जा सकता है ये धृष्ट और अद्यृष्ट दोनों प्रकार के होते हैं। सम्भवतः ऐलोपैथी की इन्फैक्शन संकल्पना के पीछे यही वैदिक सिद्धान्त है। वैदिक भैषज्य में त्रिदोष भी असमानता अथवा प्रकोप रोगों का निदान माना जाता है। खानपान के कारण अथवा दुर्विचारों के कारण भी रोग होते हैं।

औषधि की परिभाषा और प्रकार

औषधियां जीवन रक्षक है और चिकित्सा का मुख्य साधन है। औषधियों का रस आयुवर्धक होता है। समुद्र को औषधियों का मूल कहा है। क्योंकि समुद्र जल वर्षा का कारण है। समुद्र में नाना प्रकार की औषधियां जन्म लेती है। सोम औषधियों का राजा हैं तथा सोम चन्द्रमा से सामर्थ्य ग्रहण करके बाकी औषधियों का सम्पादन करता है। वनस्पतियों तथा खनियों को औषधि कहा है। अशुंमती, कांण्डिनी, विशाखा, उग्राः पुरूषः जीवन्यः वीरूध कहा है। अथर्ववेद में सहस्त्रपर्ण्य, वलासनाशिनी, कृत्यादूषणी उदकात्मानः अपक्रीता, सहीयसीः, मणिः अमिशस्तिपा, अमीबचातनी, आंगिरसी, रोहन्ती, पयःस्वती, पुस्यवती, आंगिरसी, रोहनी ओषधियो का वर्णन आदि हैं। अथर्ववेद में दीर्घायुष्य की कामना सौ वर्ष की सीमा न रख कर 300 वर्ष की आयु सीमा की कामना की गई है-

त्रायुषं जमदग्नेः कस्यपस्य त्र्यापुषम्॥ (अथर्ववेद)

अवघ्नती

ऋग्वेद के विषघ्न सूक्त में इसका उल्लेख है। यह विषहर औषधि है। काटने वाले विषैले सर्पादि जीवों को मार डालती है। यह भी विषैले जीवों को मारती है यह ऐसी औषधि है जो समीप पर न दिखने वाले विषैले जीवों (सर्पादि) को नष्ट कर देती है। और दूर जाती हुई भी अपने पूर्व प्रभाव से अथवा मादकता आदि गुणों से उनका नाश करती है।

आंजन-आज्जन गन्धि

इस औषध का सभी वेदों में वर्णन है। ऋग्वेद में इसे सुगन्धित माना गया है। यह अपनी सुगन्धी से पूरे वन को सुगन्धित कर देती है। अन्य वेदों में यह चित्रकुट पर्वत तथा यमुना प्रदेश में होने को कहा है। इसे त्रैतकुट और यामुन भी कहते हैं। यह अंगभेद धातु रोग एवं संक्रामक रोगों में लाभकारी है।

उत्तानपर्णा

यह एक लता जाति की औषधि है। ऋग्वेद में इसकों सुभगा, देवजूता और सहस्वती नाम आये हैं। वाधनोपनिषद् नामक सूक्त में सौत को नष्ट करने के लिये और प्रतिरोधी पर विजय प्राप्त करने लिये प्रयोग में लाया जाता है-

उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति।
सपत्नी में पराधम पति में केवलं कुरूः॥

(वाद्यनोपनिषद)

यह वीर्य वर्धक, विषध्न, मेधावर्धक एवं विषैले व्रणों में हितकर है।

उर्जयन्ती

ऋग्वेद में अश्ववती, सोमावती, उदौजस आदि औषधियों के साथ इसकी चर्चा है। यह बल वीर्य और शौर्यवर्धक है। यह ऊर्जावर्धक है। ऊर्जा प्राप्त करने के लिये इसका उल्लेख आया है। यथा -

अश्वावती सोमावती मूर्जयन्ती मुदोजसम्।
आवित्सि सर्बौषधीरस्मा अरिष्ठतातये॥ (यजुर्वेद)

अवका/अवक

अवक अथवा अवका को शैवाल कहते हैं। जो जलीय स्थानों या समुद्र में मिलता है। यथा-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

समुद्रस्य त्वावकयाग्ने परिव्ययामसिः।

यह पित्तशामक और शीतल होता है।

सहमाना

यह सहस्त्रवीर्या, शक्तिवर्धक और वीर्यवर्धक, रक्षोघ्न और पुष्ठिकर औषधि है। सहमान का अर्थ है रोगों पर विजय पाने वाली औषधि।

सुगन्धितेजन

यजुर्वेद की मैत्रायणी संहिता में इसका उल्लेख है।

यामोषधीषु तो सुगन्धितेजने॥

यज्ञों में इसका विशेष प्रयोग होता है। कात्यायन श्रौतसूत्र में इसे सुगन्धितृण विशेष कहा है।

सोम

सोम का विस्तृत वर्णन चारों वेदों में है। इसी कारण सोम को औषधियों का राजा कहा है। वैदिक युग में सोम एक प्रसिद्ध औषधि थी। यह मुज्जवान् पर्वत पर होती थी। सोम को भूरे, हरित और अरूण वर्ण का कहा गया है। यथा-

या औषधीः सोमराज्ञीं बह्वीः शतविचक्षणाः।
तासामसी त्वमुत्तमारं कामम शं हृदे॥ (अथर्ववेद)

सोम को स्वादिष्ट और मदकारी कहा गया है। सामवेद में सोम को वर्षणशील आनन्दवर्धक मधुमान, पवित्र, सहस्त्रदा, बाजी एवं भूरिदावा कहा है।

सोमवती

सोमवती औषध का उल्लेख ऋग्वेद्, यजुर्वेद् में आया है-

अश्ववती सोमवती मूर्जयन्ती मुदोजसम्।

कह कर इसे ऊर्जा, ओजप्रदान करने वाली शक्तिप्रद औषध के रूप में वर्णित किया गया है।

हिरण्यपर्ण

हिरण्यपर्ण भी वैदिक औषधि है-

वनस्पति र्हिरण्यपर्णः वनस्पति शमितारं शतक्रतु।

यह औषध आरोग्यप्रद, शक्तिवर्धक वीर्यवर्धक है जो कि सुनहरी पत्तों वाली है।

मणिसन्धारण

अथर्ववेद में मणि द्वारा रोगों की चिकित्सा अथवा आपदाओं एवं काष्टों का निवारण इष्ट-सिद्धि आदि अनेक प्रयोजनों की प्राप्ति के लिये मणिधारण किया जाता है। मणि का निर्माण औषधीय तत्व धारक कतिपय वृक्षों लताओं एवं अन्य वनस्पतियों की शाखाओं, पत्रों और मूलों से किया जाता है। औषधियों के किसी भाग के टुकड़े करके उनके छिद्र कर पिरो कर धारण करना मणिधारण कहलाता है। मन्त्र बल से इसकी शक्ति को व्यापक और समृद्ध किया जाता है। मणि को बना कर अंग पर बांधना अथवा धारण करना मणि चिकित्सा का एक रूप है। इन मणियों का अलग-अलग प्रभाव है। विजय शक्ति की प्राप्ति, जरा-मृत्यु अथवा मृत्यु आदि का निवारण, तत्काल लाभ प्राप्त करना आदि है। इस प्रकार मणि धारण के दो उद्देश्य हैं :

1. रोग शमना
2. शक्ति सम्पन्नता तथा सुख प्राप्ति।

अमीवर्तमणि

कौशिक सूत्र में इसके निर्माण विधि का उल्लेख है। अथवेवेद में वर्णित मंत्र को स्वर्ण के बीच में रखकर ताम्बा, चांदी अथवा लोहे या सीसे में मठ कर त्रयोदशी से तीन दिन तक दही और मधु से पूर्णपात्र में रखें। फिर धागे में पिरो कर कुशा पर स्थापित कर मन्त्रों से यज्ञ में अभिचारित कर के बांधें।

आज्जनमणि

यह अज्जन वृक्ष और खनिज से बनाई जाती है। यह दुःस्वप्न नाशन है।

औदुम्बर मणि

यह उदुम्बर (गूलर) से बनाई जाती है। यह पुष्टिवर्धक स्वास्थ्य प्रदायक हैं। दर्भमणि, (कुश) द्वारा निर्मित।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रतिसरमणि

यह तिलक वृक्ष के पत्ते एवं शाखा भाग को दधि-मधु में तीन रात डुबा कर रखें। उसके बाद कवच भी भांति धारण करें।

फालमणि

खदिर के काष्ठ से बनाई जाती है। इसके धारण के वेदों में अनेक लाभ बताये गये है।

शस्त्रक्षत/सत

शस्त्रक्षत अथवा किसी प्रकार के घाव-चोट को शान्त करने के लिये अथर्ववेद में जलसेचन का सर्वोत्तम विधान बताया गया है। घाव पर स्वच्छ शीतल जल की धारा से घाव का उपचार किया जा सकता है। जल से भीगी पट्टी रखना अथवा जल में घात को रखना भी क्षत का उपचार है। जल घावों को ठीक करने वाला है। वेदों में जल चिकित्सा का विशेष महत्व दिया है।

अस्थिभग्न

चिकित्सा में अरून्धती, सिर्लाची, अर्जुन, पलाश, लाक्षा आदि से अस्थिभग्न को यथापूर्व सामान्य स्थिति में लाने का उल्लेख है।

अजश्रृंगी

यह उग्रगन्धा औषधि है। शत्रुनाशिका होने से इसे अराटकी भी कहते हैं। यह अजश्रृंग के आकार वाली होती है। यह रोगाणु नाशक और शक्तिवर्धक है। यथा-

अजश्रृंगी अराटकी तीक्ष्णश्रृंगी। (आयुर्वेद)

अद्यृष्ठदहनी

यह रक्षोघ्न, कृमिघ्न तथा रोगाणुओं को मारने वाली औषधि है। अथर्ववेद के पैप्पलाद संहिता में इसका उल्लेख आया है, कि इस औषध को खोद कर निकाला जाता है-

इमां खनाभ्योषधिः अधृष्ठ दहनीमहम्। (अथर्ववेद)

अपस्कम्भ

सायणाचार्य ने अपस्कम्भ का अर्थ क्रमुक (कृमुक) वृक्ष किया है। इससे धनुष बनता था। इसलिऐ धनुष को कार्मुक कहते हैं। यह आग्नेय वृक्ष है। यह स्वादु और रक्तवर्ण का होता है। यज्ञ में इसकी धृताक्त समिधा डाली जाती है। कौशिक सूत्र में इसे सर्प विषघ्न कहा है-

अपस्कम्भस्य शल्पाद् निखोचमहं विषम्।

यह विष होकर भी विष को शान्त करता है-

विषस्य विषामौधम्। (अथर्ववेद)

कतिपय विद्वान इसे भिल्वतरू और शम्बर भी कहते हैं। आयुर्वेद में क्रमुक से लोध और पूग (सुपारी) अर्थ लिया है।

अभिरोरूद

अभिरोरूद को आसुरी औषध कहा है। सायणाचार्य के मतानुसार यह सौर्वचल (सूर्यवेला) नाम की औषधि है। यह वशीकरण के लिये प्रयुक्त की जाती है। इसे प्रियंकरणी एवं वर्चस्व भी कहा है। अथर्ववेद में कहा है कि इसके द्वारा इन्द्र ने देवों पर अपनी प्रभुता स्थपित की थी-

येनानि चक्र आसुरीन्दुं देवेभ्यस्परि,
भेषजमभिरोरूदम॥
इदं खनाम्योषधिं माम्पभ्यभिरोरूदम्॥ (अथर्ववेद)

अभ्रिखाता

यह विष निवारक औषध है। इसे प्रक्री भी कहा है। धन्वन्तरिनिघण्टु में प्रक्री से प्रक्रीर्य कहा गया है। इस आधार पर यह करज्न, उदकीर्य, अंगारवल्ली, गुच्छकरज्ज एवं रीठाकरंज यह पांच हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भारत में औषध द्रव्यों का आयात एवं निर्यात

आयुष और अनायुष्य द्रव्यों के परिज्ञान से आयुर्वेद का आरम्भ होता है। अतः द्रव्यों का काल निर्णय एक कठिन कार्य है। संभवत यह आयुर्वेद के ही समान अनादि है। किन्तु व्यावहारिक अनुभव के द्वारा नए-नए द्रव्यों का परिज्ञान होता गया। जिसके कारण क्रमशः उपयोगी द्रव्यों की संख्या में वृद्धि होती गई। इसके अतिरिक्त पारस्परिक सम्पर्क के कारण एक देश से दूसरे देश में द्रव्यों का आयात निर्यात होता रहा है, जिससे अन्य देश में होने वाली औषधियों का प्रवेश अन्यत्र हुआ जो कालक्रम से आत्मसात कर ली गई। भारत का सम्पर्क अन्य देशों से अत्यंत प्राचीन काल से रहा है। असीरिया, बैबीलोन, (काबुल), मिस्त्र, चीन, तिब्बत, मंगोलिया आदि देशों के साथ भारत का सम्पर्क व्यापारिक रुप में चिरकाल से रहा हैं। जिसके माध्यम से द्रव्यों का आदान प्रदान होता रहा हैं और हड़प्पा का सीधा सम्पर्क 2300 ई. पू. से कहा जाता है। सिन्धु का बना सूती कपड़ा समुद्री मार्ग से काबुल पहुंचता था। अथर्ववेद के तैमात, अलगी, विलगी, उरुगला और 'ताबुव' शब्द भी काबुली भाषा के कहे जाते हैं। बावेरुजातक (335) में भी इसकी पुष्टी होती है। स्थल और जल मार्गों से द्रव्य एक देश से दूसरे देश में जाते रहे हैं। मधुक और मरिच स्थल मार्ग से आते थे। (काशिका-5/1/77) सप्पाराक जातक (463) से पता चलता है, प्राचीन भारतीय नाविकों को एक और सुवर्णद्वीप (मलेशिया), रत्नद्वीप (लंका) और दूसरी ओर फारस की खाड़ी, लाल सागर और भूमध्य सागर का पता था। अतः द्रव्यों के इतिहास के अध्ययन के लिये देश की प्राकृतिक संपदा के अतिरिक्त अन्य देशों के साथ सम्पर्क, वाणिज्य के केन्द्र एवं मार्ग, समय-समय पर विदेशियों के आक्रमण एवं प्रभुत्व आदि बातों पर भी विचार करना आवश्यक होता है। वाङ्मय इस ज्ञान का प्रमुख स्त्रोत है। इसमें सांस्कृतिक वाङ्मय, यात्रा विवरण, राजाओं का रोजनामचा (जहांगीरनामा) आदि राजवृत्त (आइने अकबरी आदि) अन्य देशों का इतिहास, वाणिज्यवृत्त, राजनीतिक इतिहास आदि प्रमुख हैं।

भारत में प्राचीन काल में यूनानियों तथा शक-कुषाणों का सम्पर्क हुआ। गुप्त काल में रोम के साथ व्यापार बढ़ा। मध्य काल में अरब के व्यापारी सर्वत्र छा गये। उनके माध्यम से द्रव्य एक देश से दूसरे देश में जाने लगे। यह स्मरणीय है कि एक ओर उनका सम्पर्क यूरोप और अफ्रीका तथा दूसरी ओर चीन और भारत से था। कुस्तनतुनिया एक समय विश्व का प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र था। जहां यूरोप, अरब, चीन, मध्य एशिया और भारत के व्यापारी परस्पर मिलते थे और द्रव्यों का विनिमय करते थे। प्राचीन काल में बाल्हीक भी ऐसा ही केन्द्र था।

मध्य काल में तुर्कों, अफगानों और मंगोलों का भारत पर अधिपत्य भी एक महत्वपूर्ण घटना है। इनके साथ अनेक ऐसे द्रव्य यहां प्रसिद्ध हुये जो पहले अज्ञात थे। वे अपने साथ अरब के देशों से हकीम भी लाये जिनके सम्पर्क से तत्कालीन चिकित्सा विधियां भी प्रभावित हुई। यह स्वाभाविक

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

है कि राजा जिन द्रव्यों का व्यवहार करते हैं, उनकी प्रजा भी उनका अनुसरण करने लगते है। जो पद्धति राजा को प्रिय होती है उसका प्रचार आसानी से हो जाता है। उसी प्रकार आधुनिक काल में पुर्तगाली, फ्रांसीसी और अंग्रेजों का आगमन एक विशिष्ट घटना है। इसी समय कोलम्बस ने अमेरिका की खोज की और इसके बाद वहां के अनेक द्रव्य जो अब तक बाहर अज्ञात थे, प्रविष्ट हो गये।

बौद्ध जातकों के अनुसार पश्चिमी समुद्र तट पर भरुकच्छ, सुप्पारक तथा सोवीर और पूर्वी समुद्र तट पर करम्बिय, गंभीर और सैरिव मुख्य बन्दरगाह थे। जहां से जलमार्गों द्वारा वस्तुओं का आयात निर्यात होता था। अन्तर्देशीय और विदेशी व्यापार में चन्दन का विशिष्ट स्थान था। अगुरु, तगर तथा कालीयक की भी मांग थी। सिंहल और दूसरे देशों से नानाविध रत्न आते थे तथा नीलम, ज्योति रस, सूर्यकांत, चन्द्रकान्त, माणिक्य, वैडूर्य, हीरक और यशद आदि हाथीदांत भी प्रचलित था।

महाभारत (2/27/25-26) के अनुसार दक्षिण सागर के द्वीपों से चन्दन, अगुरु, स्वर्ण और रजत संभवतः बर्मा और मध्य एशिया से आते थे। मोती और रत्न सिंहल से आते थे। सिंहल रत्नद्वीप कहा गया है और प्रवाल भूमध्य सागर से, हीरक शायद बोनिया से आते थे। कपिश (काबुल) से शराब आती थी। उत्तरापथ का व्यापारिक मार्ग हैमव मार्ग और दक्षिणपथ का दक्षिणपथ है। हैमवत मार्ग बलख से हिन्दूकुश होकर भारत आया था। और दक्षिणपथ शंख, हीरक, रत्न, मोती और सोने के व्यापार के लिए प्रसिद्ध था।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में व्यापारिक वस्तुओं पर शुल्क का विधान है। इस प्रसंग में शंख, हीरक, मुक्ता, प्रवाल, रत्न, हरताल, मनःशिला, सिन्दूर, धातुएं चन्दन, अगुरु, कटुक, मद्य, हाथीदांत, कपास, गंधद्रव्य, औषध, लवण, क्षार, तैल आदि का उल्लेख है जिससे इनके प्रचलित व्यापार का बोध होता है। कौटिल्य के अनुसार मौर्यकाल में रत्नों का व्यापार खूब चलता था। अनेक रत्न तथा उप रत्न देश के कोने-कोने से तथा अनेक विदेशों से आते थे। कीमती रत्न बलूचिस्तान के मूला दर्रा और सिंहल से आते थे। बिल्लौर, विन्ध्य पर्वत और मालावार से आता था। नीलम और जमुनिया लंका से आते थे। हीरे बरार, मध्य प्रदेश, अश्मक (गोलकुण्डा) और कलिन्ग से आते थे। अलसन्दक नामक प्रवाल सिकन्द्रिया से आता था। मौर्य युग में गन्ध द्रव्यों की भी बड़ी मांग थी। चन्दन के अनेक प्रकार दक्षिण भारत, जावा सुमात्रा, तिमौर और मध्य एशिया (सुवर्णद्वीप) तथा आसाम से आते थे। अगुरु आसाम, मलेशिया, हिन्दचीन और जावा से आता था।

कनिष्क का साम्राज्य उत्तर में पेशावर से बुखारा, समरकन्द और ताशकन्द तक फैला हुआ था। खेतान और सारनाथ तक उसकी सीमा थी तथा वह सीर दरिया से ओमान के समुद्र तक फैला था। उस युग में कुशाणों और रोमन साम्राज्य का सम्बंध काफी दृढ़ था। इस काल में हाथीदांत, रेशमी कपड़े, रत्न, जड़ी बूटियां, मसाले आदि रोम को जाने लगे और वहां से सोना भारत में आने लगा। दक्षिण में कोलकई, काबेरीपटन, मुचिरि आदि प्रमुख व्यापारिक केन्द्र थे। जहां से समुद्री मार्ग खुलते थे। रोम में भारतीय मोती की बड़ी मांग थी। काली मिर्च, जटामांसी, दालचीनी और इलायची अधिकतर अरब यात्री स्थल मार्ग से लाते थे। औषध द्रव्यों में इनके अतिरिक्त सोंठ, गुग्गुल, लवंग, हींग अगुरु का स्थान था। नील, शक्कर और तिल का तैल भी जाता था। भारतीय नींबू, केले, आड़ू और जर्दालु खाने तथा औषध में काम आते थे। हीरा, अफीम, स्फटिक, जमूनिया, वैंडूर्य, नीलम, माणिक्य, पैरोजा आदि रत्नों की मांग रोम में बहुत थी। रोमन व्यापारी मातों से मुरा और लोबान का निर्यात करते थे। अदन और मोजा

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

लोहबान के बड़े केन्द्र थे। लोहबान जहां हद्रमीत (लोहबान का देश) से आता था। यहां तुरूष्क का व्यापार भी होता था। मोजा अरब व्यापरियों का मुख्य अड्डा था। जहां से बोल आदि बाहर भेजे जाते थे। रोमन व्यापारी भारतीय माल के लिये अदन या सकोतरा जाते थे। जहां यूनानी, अरबी और भारतीय व्यापारियों से उनकी भेंट होती थी। फ्रांस की खाड़ी के बन्दरगाहों में भारत से तांबा, चन्दन, सागवान तथा शीशम की लकड़िया आती थी। भारतीय व्यापारी लाल सागर होकर सिकन्द्रिया पहुंचते थे और रोम साम्राज्य के यूनानी व्यापारी, क्रमशः सीधे भारत तक आने लगे। बार्बरिकोन के बन्दरगाह सेकुष्ठ, गुग्गुल, दारुहरिद्रा, जटामांसी, पिरोजा, लाजवर्द, नील आदि बाहर भेजे जाते थे।

भडौच (भुजकच्छ) के बन्दरगाह से निर्यात होने वाले द्रव्यों में जटामांसी, कुष्ठ, गुग्गुल, हाथीदांत, अफीम, दारुहरिद्रा (रसांजन), पीपली आदि प्रमुख थे। आयातित द्रव्यों में तांबा, रांगा, सीसा प्रवाल, पुखराज, तुरुष्क, संखिया, अंजन आदि मुख्य थे। भड़ौच सात वाहनों की राजधानी पैठन (प्रतिष्ठान) और दक्षिणापथ के प्रसिद्ध नगर तेर (तगर) से सम्बंध था जहां से दक्षिण का माल वहां पहुंचता था। सुपारा के अतिरिक्त, कल्याण का बन्दरगाह भी काम में आने लगा था। दक्षिण में केरल का बन्दरगाह मुजिरिस अत्यंत प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र था। यहां अरब और रोमन जहाज लगे रहते थे। यहां से काली मिर्च, तेजपात, मोती, हाथीदांत, जटामांसी, रत्न कच्छुए की खोपड़ी आदि बाहर जाते थे और बाहर से सिंगरिफ आदि आता था। कोयम्बटूर में वैडूर्य की खाने थी। संभवतः चेरो (केरलियों) के हाथ में कालीमिर्च के व्यापार का एकाधिकार था, पाण्डवों के हाथ में मोती का और चोलों के हाथ में बैडूर्य का। पाण्डवों के राज्य में समुद्र तट पर एलानकोट (क्किलोन) और कोलकोई दो बन्दरगाह थे। रोमन और यूनानी व्यापारी पूर्वी समुद्र तट पर भी जाते थे। जहां पाण्डुचेरी, कावेरी पट्टनम्, मसुली पट्टन आदि बन्दरगाह थे। कलिन्ग में भी हीरे मिलते थे और वहां से तेजपात, जटामांसी और मोती आदि बाहर भेजे जाते थे संभवत यूनानी व्यापारी वहां जाते थे। टॅलिमी ने उन्नीस नगरों का नाम दिया है। जिनमें तामलुक (ताम्रलिप्त) और पाटलीपुत्र प्रमुख हैं। अरबों ने भारत से कपूर, हरड, बहेडा, जायफल, नारियल, इमली, देवदारु, निर्यास, पान, सुपारी, शीतल चीनी, कालीयक आदि का भी निर्यात करना प्रारम्भ कर दिया था। तुरुष्क, अंजन, मैनीसिल और संखिया का आयात होता था। मूंगा भूमध्य सागर से, शीशा स्पेन से, तांबा साइप्रस से रांगा लुसिटानिया और मलेशिया से आता था। कक्कोल (मल्य प्रायद्वीप का एक स्थान) से बड़ी इलायची, लवंग और अगुरु का निर्यात होता था। तक्कोलम् नामक एक गांव मद्रास के पास भी है। जिसमें 'श्री काकुलम' बना है। सबसे अच्छा चन्दन मैकासार और तिमोर से और सर्वोत्तम अगुरु चम्पा और अनाम से आता था। गोशीर्ष चन्दन मैकासरी चन्दन है।

जैन वाङ्मय में व्यापार की वस्तुओं में केशर, अगुरु, चोआ, कस्तूरी, शंख और नमक का मुख्यतः उल्लेख है। जैन साधु यात्रा में कुछ आहार द्रव्य, औषधियां, मल्हम पट्टी साथ लेकर चलते थे। उस काल में चम्पा से ताप्र लिप्त और वहां से सुवर्णद्वीप और कालियद्वीप (जंजीवार) तक जहाज बराबर चला करते थे। अनेक सुगन्धित द्रव्य, रत्न और सुवर्ण यहां आते थे और यहां से दालचीनी, मुरा, जटामांसी, अगर, तगर, नख, कस्तूरी, जायफल, जावित्री, कूठ आदि द्रव्य बाहर भेजे जाते थे। ईरान से भी व्यापारिक सम्बन्ध था। वहां शंख, चन्दन, अगर और रत्न भारत से जाते थे और ईरान मंजीठ, चांदी, सोना, मोती और मूंगे भेजता था।

गुप्त युग में चीन और भारत का सम्बन्ध

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

और निकटतर हुआ, जो सन् 61 में हान राजा सिंग के काल में स्थापित हुआ था। अधिक संख्या में भारतीय मध्य एशिया और हिन्दचीन भी जाने लगे थे। इस काल में भी भृगुकच्छ, सुपारा, कल्याण और ताम्रलिप्ति मुख्य बन्दरगाह थे। कॉसमस (छठी शती) लिखता है कि सिंहल उस समय व्यापार का प्रमुख केन्द्र था और समुद्री मार्ग में वह भारत की मध्यस्तता करता था। कल्याण का बन्दरगाह तांबा, तीती और एरण्ड के व्यापार के लिये प्रसिद्ध था। तो सिन्ध के बन्दरगाह में कस्तूरी, एरण्ड और जटामांसी का व्यापार प्रमुख था। कांसमस ने लवंग प्रदेश और चीन का भी उल्लेख किया है।

7वीं शती में चीन ने अपना समुद्री व्यापार बढ़ाया। इधर अरबों का भी प्रभुत्व बढ़ा, उन्होनें, फारस की खाड़ी पर अधिकार कर लिया और भारत में भडौच तथा थाने पर भी धावा बोल दिया। नवीं शती तक अरब इतने प्रबल हो गये थे कि 14वीं शती तक लालसागर से लेकर दक्षिणचीन के समुद्र तक इन्हीं का बोलबाला रहा। अरबी व्यापारी चीन तथा पूर्वी द्वीप समूह के स्थानों से सामान भारत के बन्दरगाहों पर लाते थे और वहां से पुनः यूरोप आदि देशों में मिलते थे। सिन्ध पर अधिकार होने के बाद अरबों का व्यापार और बढ़ा बसरा भारतीय व्यापार का केन्द्र बन गया। यहां से अरब जाने वाले द्रव्यों में प्रमुख थे- कपूर, लवंग, जायफल, बकम, चन्दन, कस्तूरी, कबाबचीनी, नारियल हाथीदांत, रतन, कालीमिर्च, अगुरु, शंख, कुलंजन, दालचीनी, हर्रे, तूतीया, बेंता, सुपारी तथा अन्य जड़ी बूटियाँ और गन्ध द्रव्य बसरा से खजूर आता था। तांकिन में अगर, सीप, नमक, लोहा, सोना, चांदी आदि अनाम में कपूर, कस्तूरी, चन्दन, सीसा, रांगा आदि कम्बुज में हाथीदांत, विविध अगुरु, डामर, सोंठ मल्य प्रायद्वीप में इलायची, अगर, विजयसार, गोंद, पूर्वा सुमात्रा में कच्छपपृष्ठ, कर्पूर, लवंग, अगुरु, चन्दन और इलायची, बोर्निया में चार तरह के कपूर, कच्छुए की खोपड़ी, जावा में हाथीदांत, मोती, कपूर, सौंफ, लवंग, इलायची, पीपल, मिर्च, सुपारी, गंधक, केसर, सिंहल में रतन का व्यापार प्रमुख था। भारत के मालाबार के समुद्र तटीय व्यापार में निर्यात का सामग्री रत्न, शीशा, इलायची आदि अन्य गन्ध द्रव्य तथा आयात के द्रव्यों में चन्दन, लवंग, कपूर, रेवन्दचीनी, इलायची और अगूरु प्रमुख थे। गुजरात में नीम, विजयसार की गोंद, हरड अरब देशों को जाती थी। चोल मण्डल से मोती, हाथीदांत, मूंगा, शीशा, इलायची आदि द्रव्य बाहर जाते थे।

13वीं शती में वेनिस नगर विश्व का एक प्रधान व्यापारिक केन्द्र था। वहां एक व्यापारी माकों पोलों ने मध्य एशिया के राजा किबलई खां के आमंत्रण पर मध्य एशिया, चीन और भारत का भ्रमण किया और 1295 ई. में इसके एक मित्र ने उसके वृत्तांत को लिपिबद्ध किया। इस यात्रा विवरण से तत्कालीन व्यापारिक स्थिति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। अतः उसके संबद्ध अंश उद्घृत किये जा रहे हैं-

1. आर्मस (फ्रांस) के बन्दरगाह पर भारत के सभी लोगों से व्यापारी पहुचंते थे तो मसाले, औषधियां, रत्न, मोती, हाथीदांत आदि लाते थे।
2. बसरा में संसार भर में सबसे अच्छे खजूर होते थे। भारत से जो माल यूरोप को जाता था, वह बसरा में बेचा जाता था।
3. सपर्गन में सर्वोत्तम खरबूजे होते थे।
4. कैकन में सैधव नमक की पहाड़ियां है जो विश्वभर में सर्वोत्तम मानी जाती है।
5. सक्खर से रेवन्दचीनी संसार के सभी भागों में भेजी जाती थी।
6. कनबूल (मध्य एशिया) नामक स्थान विश्व का एक प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र था।
7. कचानफु में अदरक, कुलिंजन और अनेक औषधियां होती थी जो विश्व के अन्य भागों में अज्ञात थी।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

8. तिब्बत में कस्तूरी और अनेक औषधियां होती है।
9. कनगिड नगर के बाद कपूर के जंगल हैं।
10. चीन के समुद्र में अनेक द्वीप हैं जहां सुगन्धित वृक्ष, मसाले, औषधियां, अगुरु, पीपली और कालीमिर्च होती है।
11. जावा में पीपली, जायफल, कुलिंजन, पालक, कबाबचीनी, लवंग, मसाले और औषध द्रव्यों होते हैं।
12. निकोबार द्वीप में श्वेत और रक्त चंदन, नारियल, लवंग, बकम और औषधियां।
13. सिंहल- सर्वोत्तम बकम, रत्न।
14. मालाबार- पीपल, सोंठ, नारियल, कबाब चीनी।
15. गुजरात- नील, पीपल, सोंठ, कपास।
16. सकोतरा- अम्बर।
17. मडगासकर- अम्बर, लाल चंदन, हाथीदांत।
18. जंजबीर- हाथीदांत।

मध्य काल में अरब की बढ़ती शक्ति के कारण सिकन्दर पर यूरोप वासियों का प्रभुत्व प्रायः समाप्त हो गया और इसके विकल्प में कुस्तुनिया चीनी और भारतीय मालों की मण्डी के रुप में उभरा। कुस्तुनिया के पतन के बाद वैनिस व्यापारिक उत्कर्ष पर आया और वेनिस के व्यापारी विश्व भर में छा गये।

मालाबार प्राचीन काल से एक प्रमुख बन्दरगाह रहा है। विशेषतः कालीकट मसालों, पीपल, सोंठ और अन्य भारतीय सामानों के व्यापार के लिये प्रसिद्ध रहा, पुर्तगाल से वास्कोडिगामा नामक नाविक 1498 ई. में कालीकट पहुंचा। वहां के राजा ने उसे उपहार स्वरुप बहुत सा लोहबान और 50 थैलियां कस्तूरी की दी। 1505 ई. में इन लोगों ने कालीकट में एक किला बना लिया। भारत में फिरगियों का यह प्रथम केन्द्र बना। धीरे-धीरे सैनिक शक्ति के सहारे पुर्तगालियों ने अरब व्यापारियों को वहां से खदेड़ दिया और समस्त व्यापार अपने हाथों में कर लिया। 1506 ई. में इन लोगों ने सिंहल, मैडगास्कर और सकोतरा की खोज की। इसके पूर्व 1494 ई. में कोलम्बस अमेरिका की खोज कर चुका था जिससे अनेक नये द्रव्य विश्व भर में प्रचलित हुए। 1500 ई. में ब्रजील की खोज हुई जहां से (बकम) ब्राजिलवुड, यूरोप को भेजा जाने लगा। इसके पूर्व यह भारत से जाता था। 1510 ई. में पुर्तगालियों ने अपनी राजधानी गोवा में स्थापित कर ली 1511 ई. में मलक्का पर आक्रमण किया और 1515 ई. में वे चीन पहुंचे। 1564 ई. में मोलक्कस पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार सारा समुद्री व्यापार पुर्तगालियों के हाथ में आ गया। वेसपुच्ची का कथन है कि जब पुर्तगाली कालीकट पहुँचे। वहां की यात्रा में पीपल, दालचीनी, अदरक, सोंठ, लवंग, जायफल, जावित्री, कस्तूरी, जबाद, तुरुष्क, लोबान, स्नायु, मस्तकी, धूप, बोल, सफेद और लाल चन्दन, अगुरु, कपूर, अम्बर, अफीम, मुसब्बर और अनेक जड़ी बूटियां एकत्रित थी। रत्नों में हीरा, माणिक्य और मुक्ता प्रमुख थे।

पुर्तगालियों की सफलता से प्रेरित होकर 1594 ई. में डचों का आगमन हुआ। 1600 ई. में अंग्रेजों की योजना प्रारम्भ हुई। 1633 ई. में फ्रांसीसी बेड़ा भी पहुंचा। अपनी कूटनीति से अंग्रेजों ने अन्ततः भारत पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। उपरोक्त ऐतिहासिक सामग्री का संकलन आचार्य प्रियवर्त शर्मा जी विरचित द्रव्य गुणविज्ञान चतुर्थ से साभार उद्धतः। शीर्षक लेख में कतिपय द्रव्यों की तालिका दी गई है। जिनमें अधिकतर विदेशी मूल के विदेशी पादप हैं। इन औषध द्रव्यों का समावेश भावप्रकाश आदि निघण्टुकारों ने किया है। यूनानी हकीमों ने उपयोगिता के आधार पर अपने ग्रन्थों में इनका समावेश किया है जिनका प्रचलन यूनान में होता था। भारत की जलवायु में इनकी खेती की जा रही है। जिनका कि उपयोग औषध द्रव्यों, शाकों, फलों, पुष्पों एवं खाद्यान्न के रुप में किया जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उत्तराखण्ड के वन संसाधनों के सरंक्षण एवं विकास के कुछ बिन्दु

गंगा, यमुना, घाघरा (काली) एवं रामगंगा और उनकी सैकड़ों सहायक नदियों से परिपूर्ण उत्तराखण्ड में प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता के कारण मानव बस्तियां बसी। देश के एक बड़े हिस्से को जल संसाधन उपलब्ध कराने वाला यह भाग वनों, जड़ी बूटियों, खनिजों और प्राकृतिक सौन्दर्य का भण्डार रहा है। इसके साथ ही यहां के निवासियों ने अनेक धर्मस्थलों की स्थापना करके इसे धर्म-क्षेत्र के रूप में प्रतिष्ठापित कर दिया और यह देवभूमि के नाम से प्रख्यात हो गई।

पुराणों में हिमालय के जो पांच खण्ड बताये गए हैं, उनमें केदारखण्ड और मानसखण्ड क्रमशः गढ़वाल और कुमाऊं के नाम से आज दो कमिश्नरियों के रूप में विद्यमान है।

पूर्व में नेपाल, उत्तर में तिब्बत, पश्चिम में हिमाचल प्रदेश तथा दक्षिण में उत्तर प्रदेश के उपजाऊ मैदानों से घिरा उत्तराखण्ड अपनी जल-संपदा और वन संपदा के कारण काफी समृद्ध रहा है। विकट भौगोलिक स्थितियों और सहज जीवन-यापन की दुरूहताओं के बावजूद इस क्षेत्र में लोगों ने विरासतें बसाई तो इसका कारण प्रचुर मात्रा में जंगलों से प्राप्त होने वाली बहुविध सुविधाएं ही थी।

उत्तराखण्ड पहले दो अलग रजवाड़ों के वंशानुगत शासन से संचालित होते रहे हैं। रजवाड़ों के उत्थान, पतन के लम्बे दौर के बाद कुमाऊं में चन्द्रवंशी तथा गढ़वाल में पंवारवंशी राजाओं का आधिपत्य क्रमशः अठारवीं सदी के आखिर तथा उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में गोरखाओं ने तोड़ा जिसकी परिणति अंततः 1815 में अंग्रेजों के आधिपत्य के साथ हुई। कुमाऊं तथा गढ़वाल का एक हिस्सा गोरखाओं को खदेड़ने में की गई अंग्रेजी हुकूमत की मदद के कारण उनके साम्राज्य में विलीन हो गया जबकि टिहरी गढ़वाल की राजशाही भारत की आजादी के बाद भारत संघ में विलय के बाद समाप्त हो गयी।

ब्रिटिश शासन द्वारा उच्चाधिकार सम्पन्न कमिश्नर के माध्यम से कुमाऊं का शासन आरम्भ किया गया और ब्रिटिश गढ़वाल सहित 3 जिले बनाए गए। नैनीताल, अल्मोड़ा और गढ़वाल। ये तीन जिले कुमाऊं के नाम से जाने जाने लगे। जो सरकारी नियम कानून बनते रहे वे कुमाऊं के नाम से इस पूरे भू-भाग पर लागू होते रहे।

1948 के बाद टिहरी रियासत के विलिनिकरण के बाद टिहरी गढ़वाल चौथे जिले के रूप में कुमाऊं कमिश्नरी से जोड़ दिया गया। 1960 में उत्तरी सीमा पर हुई हलचलों के कारण अल्मोड़ा, गढ़वाल और टिहरी की सीमांत तहसीलों-पिथौरागढ़, चमोली और उत्तरकाशी जो अपने कायिक विस्तार के कारण मूल जिले से काफी बड़े क्षेत्रफल वाली थी, पृथक-पृथक जिलों के रूप में उच्चीकृत की गई और कुमाऊं कमिश्नरी में जिलों की संख्या बढ़ कर

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सात (कुमाऊं-3 और गढ़वाल-4) हो गई, तीनों सीमांत जिलों को सघन विकास के लिए उ. प्र. शासन द्वारा विशेष दर्जा दिया गया, तब से उत्तराखण्ड शब्द लोक व्यवहार में प्रचलित हो गया जिसे उत्तराखण्ड सर्वोदय मण्डल ने काफी लोकप्रिय बनाया। 1968 में कुमाऊं कमिश्नरी का विभाजन कर गढ़वाल को अलग कमिश्नरी बना दिया गया। 1973 में देहरादून को मेरठ मण्डल से अलग कर गढ़वाल मण्डल से संबंध कर गढ़वाल को पूराने स्वरूप में वापस लौटा दिया गया। 1994 में नैनीताल जिले के तराई वाले हिस्से को अलग कर एक नया जिला उधम सिंह नगर और 1997 में पिथौरागढ़ व अल्मोड़ा जिलों को तोड़ कर चम्पावत तथा बागेश्वर और चमोली, टिहरी और पौड़ी जिलों को तोड़ कर रूद्रप्रयाग के रूप में नया जिला बना दिया गया। नवम्बर 2000 में हरिद्वार जिले को मिला कर 13 जिलों से उत्तरांचल प्रदेश बना दिया गया।

इस क्षेत्र में बसे लोगों की कृषि हेतु उर्वरा भूमि सहजता से प्राप्त हो जाती थी। पानी की पर्याप्त और सहज उपलब्धता तथा वनों से प्राप्त होने वाली लकड़ी फल व सब्जियों की प्रचुरता के कारण लोग सुखी और स्वावलम्बी जीवन व्यतीत करते थे। आबादी कम थी और प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता बहुत संसाधन भी ऐसे जिन पर वे अपना मालिकाना हक समझते थे। कहीं कोई रोक नहीं, कोई विवाद नहीं। फल, सब्जियों, ईंधन, चारा, ईमारती-लकड़ी, कृषि-उपकरण, गृह उद्योंगों के लिए कच्चा माल जैसी लोक जीवन की आवश्यकता का 60 से 80 प्रतिशत अकेले जंगलों से सहज रूप से प्राप्त हो जाता था। केवल 20 से 40 प्रतिशत आवश्यकताओं की पूर्ति ये समाज अपनी मेहनत व अन्य स्त्रोतों से कर लेते थे।

इस दौर में उत्तराखण्ड में सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक प्रगति का दौर चला। अनेक तीर्थ-स्थलों की स्थापना की गई। लोक-कला और लोकसंस्कृति, साहित्यसृजन और सामाजिक व्यवस्था के क्षेत्र में काफी प्रगति हुई। जिससे उत्तराखण्ड को देश की संस्कृति, सभ्यता और सामाजिकता का अग्रणी माना जाने लगा। उत्तराखण्ड अनाज, पशुधन तथा उसके उत्पादों, वनौषधियों, जड़ी-बूटियों, वन्य फलों-मेवों आदि के लिए डेढ़ दो सदी पहले तक काफी प्रसिद्व रहा। पशुधन मुख्य रूप से भेड़-बकरियों और उनके मांस और ऊन का व्यापार उत्तराखण्ड वासी बड़े पैमाने पर करते थे। इसी समृद्धि के कारण विभिन्न राजवंशों ने इस भूभाग को हथियाने के लिए समय-समय पर आक्रमण किए और अंततः अंग्रेजी व्यवस्था ने इसे हड़प लिया।

उत्तराखण्ड से उद्गमित युमना, भागीरथी, भिलंगना, मंदाकिनी, अलकनन्दा, पिण्डर, मन्दाकिनी, बिरही, विष्णुगंगा, रामगंगा, काली, गौरी, धौली, जैसी नदियों और अपने सैकडों नदी नालों की बदौलत उत्तराखण्ड दुनिया के सर्वाधिक जल-सम्पदा वाले भूखण्डों में से एक है। इन नदियों को जहां हिमाच्छादित पर्वत शिखरों से हमेशा जल प्राप्त होता रहता है, वहीं चौड़ी पत्तियों के सघन वन इन नदियों को सदा पानी मुहैय्या कराने के बड़े कारक रहे हैं। उत्तराखण्ड के घने और समृद्व वनों को पूरे देश की समृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसके दो तिहाई से अधिक हिस्से पर वन-क्षेत्र मौजूद थे जो अब घटकर आधे से भी कम पर सिमट के रह गए हैं।

वर्तमान समय में उत्तराखण्ड के कुल 53,485 वर्ग किमी. भौगोलिक क्षेत्रफल में से 23,260 वर्ग किमी. पर वन है। उत्तराखण्ड के विभिन्न जिलों में वन-भूमि तथा वनों की सघनता की स्थिति इस प्रकार है :

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जिला	भौगोलिक क्षेत्र	1999 का निर्धारण		योग
		घने वन	खुले वन	
अल्मोड़ा	5,385	2,071	466	2,537
चमोली	9,125	2,530	622	3,152
देहरादून	3,088	1,239	331	1,570
गढ़वाल	5,440	2,198	978	3,176
हरिद्वार	2,360	265	320	585
नैनीताल	6,794	2,920	649	3,569
पिथौरागढ़	8,856	2,188	824	3,012
टिहरी गढ़वाल	4,421	1,807	753	2,560
उत्तरकाशी	8,016	2,631	468	3,099
योग	53,485	17,849	5,411	23,260

परम्परागत व्यवस्था में बाहरी हस्तक्षेप

प्रकृति द्वारा प्रदत्त संसाधनों का उपभोग उत्तराखण्ड वासी निर्बाध रूप से करते थे लेकिन लापरवाह होकर नहीं। प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण और पोषण उनके व्यवहार का एक महत्वपूर्ण अंग था। सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक व्यवस्थाओं में हजारों वर्ष पहले रचित साहित्य, मुख्य रूप से पौराणिक कथाएं और आख्यान तथा लोक व्यवहार की मर्यादायें इसका उदाहरण है।

उत्तराखण्ड के तीर्थों की यात्रा कई हजार वर्ष पहले से चल रही है। दुर्गम स्थानों में स्थापित इन तीर्थों, बुग्यालों और वन में जाने और प्रकृति के अनुरूप व्यवहार करने के लोगों के अपने नियम थे जिन्हें सामाजिकता और धार्मिकता का पुट देकर अधिक पुष्ट बनाया गया था। पुराणों और उपनिषदों में जल, वृक्ष, वनस्पति, पुष्प आदि की पूजा और संरक्षण के अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किए गए थे जिन्हें आज भी कमोवेश हम लोक-व्यवहार में पाते हैं। लोगों में उन संसाधनों के संरक्षण और संवर्द्धन के परम्परागत संस्कार विद्यमान थे, जो लोकोपयोगी थे। फलों के वृक्षों को न काटना, सघन वनों और बुग्यालों में शोर न करना, जल-श्रोतों की पूजा, उनके समीप मल-मूत्र का त्याग न करना, वनस्पतियों और पुष्पों का अनावश्यक व असामयिक दोहन न करना जैसे संस्कार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचते हुए आज भी जीवित हैं जबकि इनके लिए कोई 'एक्ट' नहीं था, न कोई दण्ड-विधान ही तब मौजूद था।

उत्तराखण्ड वासियों को भूमि, वन और जल के निर्बाध उपयोग से वंचित करने का सिलसिला उन्नीसवीं शताब्दी में तब प्रारम्भ हुआ जब अंग्रेजों ने वनों तथा भूमि पर अपना अधिकार जताना और जमाना आरम्भ कर दिया। 1915 में कुमाऊं और गढ़वाल के एक हिस्से पर कब्जा करने के बाद अंग्रेजी साम्राज्य का आरम्भ नैनीताल में कमिश्नर की पद-स्थापना के साथ हुआ। 1817 से 1823 के बीच कमिश्नर ट्रेल ने भूमि तथा वनों की नाप-जोख कराई जिसे ट्रेल बंदोबस्त अथवा साल अस्सी (विक्रमी संवत 1880) के बंदोबस्त के नाम से जाना जाता है। इससे पहले कुमाऊं में जब गोरखाओं ने चन्दवंशियों को पद-च्युत कर अपना राज कायम किया, तब

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उन्होंने भी राजस्व वसूलने के लिए वनों और गांवों का सर्वेक्षण कराया था लेकिन कमिश्नर ट्रेल ने अधिक व्यापक नाप-जोख कराई और गांवों की सीमाएं निर्धारित की। ट्रेल के बाद बैटन ने भूमि पर सरकार के अधिकारों का सिद्वान्त प्रतिपादित किया। अंग्रेजी व्यवस्था ने भूमि तथा वनों से राजस्व वसूलने के लिए, कर और व्यापारिक दोहन आरम्भ कराया। भारत के समृद्व वनों का प्रबंध ठेकों पर दिया जाने लगा तथा वनों का विनाश बड़े पैमाने पर शुरू हुआ। इसके बाद कमिश्नर हैनरी रैमजे ने वनों के प्रबंधन की दिशा में काम शुरू किया तथा वनों के प्रबंधन के लिए 1865 में पहला वन अधिनियम बनाया गया। 1868 में पियर्सन नामक सैन्य अधिकारी को प्रथम वन संरक्षक नियुक्त किया गया और वन विभाग औपचारिक रूप से अस्तित्व में आया। 1878 में नया वन अधिनियम बना। इसके अलावा 1878, 1893, 1904 तथा 1917 में वनों की अलग-अलग सीमाएं तय की गई। 1927 में भारतीय वन अधिनियम बनाया गया जो काफी व्यापक था और उसे आज भी संदर्भित किया जाता है। अक्टूबर 1893 में कुमाऊं कमिश्नरी की समस्त बेनाप भूमि सुरक्षित वन घोषित कर राजस्व विभाग के अधीन कर दी गई। इससे लोगों की निर्वाध जीवनचर्या पर भारी अंकुश लग गया।

1911 से 1917 के बीच कुमाऊं कमिश्नरी के अधिकाधिक क्षेत्रफल को आरक्षित वनों की श्रेणी में लाया गया तथा ग्रामीण व्यवस्था में सरकारी हस्तक्षेप लगातार बढ़ता चला गया। इससे ग्रामीणों में इस व्यवस्था के प्रति आक्रोश मुखर हुआ। इसकी प्रतिक्रिया अनेक प्रकार से देखी गई। खास कर वनों पर लोगों ने ध्यान देना बंद कर दिया तथा अग्निकांडों का एक अविरल क्रम आरम्भ हो गया। सरकारी हुक्मरानों के विरूद्ध आवाज उठनी आरम्भ हो गयी और उनके द्वारा प्रचलित कुली-बेगार और उतार प्रथा का विरोध आरम्भ हो गया।

लोगों के बढ़ते विरोध को कम करने के लिए उ. प्र. (तत्कालिन सयुक्त प्रांत) सरकार को कुमाऊं फारेस्ट ग्रीवान्सेज कमेटी का गठन करना पड़ा। जिसने लोगों के विरोध को कम करने हेतु अनेक सुझाव दिए।

कुमाऊं फारेस्ट ग्रीवान्सेज कमेटी ने मुख्यत: 1911-17 के बीच आरक्षित वनों से संबंधित सुझाव दिए। जिसके बाद सरकार ने श्रेणी-एक के गैर वाणिज्यिक मूल्य के वनों को राजस्व अधिकारियों के नियंत्रण में कर दिया तथा उसमें लोगों को कास्तकारी की छूट दे दी। श्रेणी-दो के जंगलों को वन विभाग के अधीन रखा गया।

कमेठी ने यह भी सुझाव दिया कि गांव के समीपवर्ती वनों को पंचायतों के नियत्रंणाधीन कर देना चाहिए। इस सुझाव पर 1927 में एक अधिकारी इस उद्देश्य के लिए नियुक्त किया गया।

1927 में एक व्यापक वन अधिनियम बना जिसमें वनों, वनाधिकारों, ग्राम वनों को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया। 1931 में पहली वन पंचायत नियमावली बनी, जिसमें पंचायती वनों के गठन की प्रक्रिया, उसके कार्य तथा दायित्वों को स्पष्ट किया गया।

परम्परा में सरकारी हस्तक्षेप

पंचायतों और पंचों के न्याय की व्यवस्था देश के अन्य भागों की तरह उत्तराखण्ड में सहज रूप से चल रही थी वे अन्य कार्यों के अलावा वनों और जल-श्रोतों तथा उनके युक्ति-युक्त उपयोग और संरक्षण पर ध्यान देते थे और उनका नियमन करते थे। लेकिन अंग्रेजी व्यवस्था ने वन पंचायती नियमावली में ऐसे प्रावधान कर दिए कि पंचायतें बन तो गई लेकिन वे पूरी तरह सरकारी मुखापेक्षी बन कर रह गई।

अंग्रेजों ने व्यवस्था और विकास के नाम पर जिस प्रकार से नियम, कानून यहां थोपे, उससे हमारी पुरानी सामाजिक व्यवस्था कमजोर हो गई। वन पंचायत में घुमा-फिरा कर सरकारी-तंत्र को ग्रामीणों पर थोपने की जो साजिश रची गई, उससे हम

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आजादी के पचास साल बाद भी मुक्त नहीं हो पा रहे हैं। फिर भी वन पंचायतों के आस्तित्व में आने से लोगों का रोष कुछ कम हो गया और वन विभाग के नियंत्रण वाले आरक्षित वनों के अलावा राजस्व विभाग के अधीन सिविल वन तथा पंचायती वनों की श्रेणीयां प्रमुखता से हो गई।

कुमाऊं फारेस्ट ग्रीवान्सेज कमेठी के पंचायती वनों के गठन का सुझाव जब सरकार ने मान लिया तो ग्रामीणों में उसके अनुकूल प्रतिकिया हुई तथा इस दिशा में पहल आरम्भ हो गई। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि वन पंचायत नियमावली 1931 में स्वीकृत हुई, लेकिन उत्तराखण्ड में पहली वन पंचायत जिला अल्मोड़ा में लमगड़ा में 1925 में ही बन गई। 1930 में नैनीताल, अल्मोड़ा और गढ़वाल जिलों में 24 और 1931 में 30 पंचायतों का गठन किया गया, इनमें सबसे ज्यादा 31 अल्मोड़ा में और 22 गढ़वाल में बनी।

उत्तराखण्ड वासियों ने प्राकृतिक संसाधनों मुख्यतः वनों और भूमि के निर्बाध उपयोग में सरकारी व्यवधान के विरूद्ध जबदस्त प्रतिकार किए तथा विभिन्न स्तरों पर अपने विरोध दर्ज कराये। अपने वनों पर सरकारी कब्जे के खिलाफ लोगों ने सरकारी घोषित किए गए वनों को भी हानि पहुंचायी और प्रकटतः पहली बार सरकार और जनता दो खेमों में बट कर एक-दूसरे के विरोध में खड़ी हो गयी।

इसके साथ ही हम यह भी देखते है कि जैसे ही लोगों को मौका मिला उन्होंने प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण का कोई भी मौका नहीं खोया। सरकार ने वन पंचायतों की कल्पना को स्वरूप देना आरम्भ किया तो लोगों ने इस अवसर का लाभ उठाया तथा वन पंचायतों की संरचना में बढ़-चढ़ कर भागीदारी की और अपनी दैनिक जरूरतें पूरी करते हुए उनका अस्तित्व बचायें रखा।

सरकारी की ओर झांकने की प्रवृत्ति का सूत्रपात

जैसा कि स्वाभाविक था कि अंग्रेजी साम्राज्यवादी व्यवस्था इस देश में सुशासन की व्यवस्था के लिए नहीं, बल्कि अपने राजनैतिक व व्यावसायिक हित साधने के लिए आयी थी। देश के मानव और प्राकृतिक संसाधनों का जितना अधिकतम शोषण हो सकता था, उन्होंने किया और वनों के संरक्षण की भी जो व्यवस्था बनाई, उसकी पृष्ठभूमि में भी अपने दीर्घकालीन हितों को ही ध्यान में रखा।

अंग्रेजी साम्राज्यवादी व्यवस्था ने जो सबसे बड़ा काम किया वह था जनता की अपनी परंपरागत व्यवस्था को पंगु बना कर सरकार का मुखापेक्षी बनाना। यहीं कारण है कि लोगों के जीवन-यापन के आधार वनों पर कब्जा कर लिया तथा उनके प्रति ग्रामीणों ने शत्रुता का प्रभाव पैदा कर दिया। जिन वनों से लोग अपनी जीविका और जीवनी-शक्ति प्राप्त करते थे, वे उन्हें ही हानि पहुंचाने लगे। व्यवस्था ने जो नियम-कानून बनाए, उसमें सरकार और उसके तंत्र को मुख्य तथा जनता को गौण बना दिया। इसके पक्ष में सरकारी व्यवस्था के संचालकों ने सामाजिक तोड़-फोड़ करके अपने पक्ष के पोषण के लिए एक ऐसा वर्ग तैयार कर दिया जो अपने निहित स्वार्थों के लिए सरकार के पक्ष में खड़ा हो गया और उसकी श्रेष्ठता सिद्व करने में जुट गया। शिक्षा में भी इस ढ़ंग का जाल बुन लिया गया कि उससे निकलने वाला मानव-संसाधन अपनी सामाजिक अभिवृद्वि के कार्यों में जुटने के बजाय सरकारी नौकर बनने में गौरवान्वित होने लगा। इसने पूरी उत्तराखण्डी व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर दिया।

वनों के संरक्षण और विकास के नाम पर 1927 में जो भारतीय वन अधिनियम बनाया गया और बाद में 1931 में वन पंचायत नियमावली बनायी गई, उससे वनों तथा वनवासियों के हित कम और सरकार के हित ज्यादा प्रभावकारी ढ़ंग से सिद्व होने लगे। इससे जो सबसे बड़ा नुकसान हुआ, वह यह है कि सारा सामाजिक ताना-बाना बिखर कर रह गया।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

1947 में भारत अंग्रेजी साम्राज्यवाद से मुक्त हो गया और व्यवस्था हमारे हाथ में आ गई। लेकिन इसके बाद भी वनों और उन पर आश्रित लोगों के अर्न्तसम्बन्धों को सहीं संदर्भ में समझने तथा तद्नरूप नियम-कानून बनाने की फुर्सत हमारी सरकार को नहीं मिली। 12 मई, 1952 को स्वतंत्र भारत की नई वन नीति घोषित की गई लेकिन इसमें भी वन और जन को एक-दूसरे से जोड़ने के प्रयास नहीं हुए। 1980 में वन (संरक्षण) अधिनियम बना और केन्द्र सरकार ने वनों की व्यवस्था को अधिक केन्द्रीकृत कर दिया। इन नीतियों-कानूनों से वनों का अपेक्षित विकास नहीं हुआ लेकिन उत्तराखण्ड के निवासियों के अंग्रेजों द्वारा प्रदत्त वनाधिकारों में इन कानूननों के द्वारा कोई छेड़छाड़ नहीं की गई, नहीं उन्हें युक्तियुक्त बनाने की कोशिश की गई।

इस बीच 1964 में श्रेणी एक जंगल फिर से वन विभाग के अधीन कर दिए गए। केवल पंचायती वन यथावत रखे गए। 1972 में संशोधित वन पंचायत नियमावली तथा वन्य जीव संरक्षण कानून और 1976 में वृक्ष संरक्षण कानून तथा नए वन पंचायत नियमावली बनायी गयी। इन कानूनों द्वारा क्रमशः वन्य जीवों के आखेट पर पूर्ण प्रतिबंध लगाए गए तथा उ. प्र. के ग्रामीण और उत्तराखण्ड क्षेत्र में निजी भूमि से वृक्षों के कटान हेतु सक्षम अधिकारियों से पूर्व अनुमति प्राप्त करना अनिवार्य कर दिया गया। कुछ वृक्षों को सुरक्षित घोषित करते हुए उनके कटान को प्रतिबंधित करने का नियम भी बनाया गया। 1988 में भारत सरकार ने एक नई वन नीति घोषित की जिसमें वन व जन को एक-दूसरे से संबंद्व किए जाने तथा वनों के समीप रहने वाले और वनों पर निर्भर लोगों के हितों की व्यापक सुरक्षा की बात कही गई। इधर उत्तरांचल सरकार ने भी जल्दी में नई वन पंचायत नियमावली 2001 बनाई। जिसमें वन पंचायतों में वन विभाग के कर्मचारियों को पंचायतों का पदेन सचिव का प्राविधान करके पंचायतों की स्वायतता पर प्रश्नचिन्ह् लगा दिया है। इस प्रकार वन पंचायतों पर वन विभाग अपने अधिकार थोपने का प्रयत्न कर रहा है जिससे लोग फिर आक्रोषित हैं।

जनता के हितों पर सरकारी अधिकारियों की पकड़

1817-23 में आरम्भ हुये बन्दोवस्त से लेकर 2001 के वन पंचायती नियमावली तक के पौने दो सौ वर्षों में वनों, वनभूमि तथा प्राकृतिक संसाधनों का तथा लोगों के प्राकृतिक अधिकारों पर अपने अधिकार थोपने का जबरदस्त अभियान सरकार द्वारा चलाया गया। पहले अंग्रेजी सत्ता ने शोषण के लिए और आजादी के बाद विकास के नाम पर संसाधनों पर सरकारी कब्जा बरकरार रखा गया। इससे लोगों में इन संसाधनों के प्रति स्वभावतः उत्पन्न मोह समाप्त होता चला गया। उनके संरक्षण और बेहतर उपयोग की परम्पराओं में लगातार ह्रास होता चला गया। फलतः जहां एक ओर सरकार ने राजस्व की अधिकाधिक वसूली के लिए संसाधनों, मुख्यतः वन संपदा का अंधाधुंध शोषण किया, वहीं लोगों ने भी ने उनसे अधिकाधिक लाभ लेने तथा कम से कम संरक्षण की मनोवृत्ति बना दी है। इसका परिणाम यह हुआ कि वनों का तेजी से ह्रास होता चला गया और पूरे प्राणि जगत का पोषण करने में सक्षम वन अपने ही अस्तित्व के लिए जुझने लग गये।

अब जब वनों के ह्रास के कारण सरकारों को सीधे प्राप्त होने वाला राजस्व मिलना कम हो गया और इसके विपरित अनेक प्राकृतिक प्रकोपों से जुझने के लिए मजबूर होने के साथ ही बढ़ती जनसंख्या और उससे भी आगे इस बढ़ती जनसंख्या की उपभोक्तावादी संस्कृति के लगातार विस्तार के कारण आवश्यकताओं में गुणात्मक रूप से हो रहे विस्तार ने एक गंभीर संकट तथा खतरे का रूप ले लिया तथा दूसरी ओर प्राकृतिक संसाधनों पर अवलम्बित पर्वतीय, आदिवासी और ग्रामीण आबादी को सहजता

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

से उपलब्ध होने वाले ईधन व चारे सहित अन्य वनोत्पादों का मिलना बंद हो गया तथा जल-श्रोतों के समाप्त होने, मिट्टी कटाव व भूस्खलनों के लगातार विस्तार से बाढ़ों का अविरल सिलसिला शुरू हो गया और इससे जन-धन की व्यापक हानि से राष्ट्रीय उत्पादन प्रभावित होने लगा तथा मौसम में अंसतुलन के कारण अवर्षण और सूखे की विकराल स्थिति सामने आने लगी तो चिन्ताओं का एक नया दौर आरम्भ हो गया।

सत्तर के दशक में दुनियां में जहां पर्यावरणीय संकट पर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सोच-विचार आरम्भ होने लगा, वहीं उत्तराखण्ड के दूरस्थ इलाकों चमोली जिले में रचनात्मक कार्यों की संस्था दशोली ग्राम स्वराज्य मंडल इस पर व्यवहारिक कार्य संचालित कर रहा था।

1964 में स्थापित इस संस्था का घोषित उद्देश्य ही ग्राम स्वराज्य, समतामूलक समाज की रचना तथा वनों का समुचित उपयोग और संरक्षण था और वह लोगों के परम्परागत अधिकारों की वकालत न केवल शब्दिक रूप से कर रही थी बल्कि इसके लिए व्यवहारिक कार्यक्रम भी चला रही थी। इसके लिए उसने पहले सामाजिक विघटन के कारणों के खिलाफ संघर्ष कर सामाजिक संगठनात्मक प्रवृत्तियों को उभारा। इसमें श्रम की महत्ता को प्रतिष्ठित करना, जातिवाद और छुआछूत को मिटाना, ठेकेदारों के शोषण से श्रमिकों को बचाना, नशे के खिलाफ वातावरण बनाना तथा महिला शक्ति को संगठित कर सामाजिक सरोकारों से जोड़ना जैसे महत्वपूर्ण कार्य शामिल थे। उत्तराखण्ड का प्रख्यात नशाबंदी आंदोलन तथा उसका सफल परिणित इसका उदाहरण था, जब गांव की साधारण महिलाओं ने पहली बार जेल से लेकर राष्ट्रपति तक पहुंच कर सरकार की नीतियों की सफल खिलाफत की तथा उसे पूरे उत्तराखण्ड में नशाबंदी घोषित करने के लिए बाध्य कर दिया।

वनों से लोगों को प्राप्त होने वाले परम्परागत हकों को युक्तिसंगत और सहज बनाने की दिशा में भी दशोली ग्राम स्वराज्य मंडल ने पहल की। इसमें कई बार वनाधिकारियों से टकराव भी होता रहा है। 1970 में चमोली जिले में ही गंगा की प्रमुख धारा अलकनन्दा की प्रलयंकारी बाढ़ ने जो तबाही मचाई, उसकी गूंज भारतीय संसद तक में हुई। संस्था ने बाढ़-पीड़ितों के बीच राहत कार्य चलाया तथा बाढ़ के कारणों का अध्ययन भी किया। इस अध्ययन में पीड़ित क्षेत्र के लोगों से अधिक जानकारी मिली। जिसका निष्कर्ष यह था कि इस बाढ़ से पहले पूरे क्षेत्र में भारी वन-काटन हुआ था जिसने धरती पर वृक्षावरण कम किया और साथ ही धरती को इतनी बुरी तरह से रौंद दिया कि वह अतिवृष्टि की मार को झेल नहीं पायी। पानी के साथ मिट्टी और वन कटान के अवशिष्ट का घनत्व विनाश का कारण बन गया।

चिपको आंदोलन

इसके बाद दशोली ग्राम स्वराज्य मंडल ने वनों के संरक्षण को प्राकृतिक आपदाओं से बचाव का बड़ा कारण मानते हुए वनों के संरक्षण का सिद्वांत प्रतिपादित किया। 1973 में सरकारी नीलामी से बचाने के लिए चिपको आंदोलन चलाया गया तो मंडल, रामपुर-फाटा से आरम्भ होकर मार्च 1974 में रेंणी तक पहुंचते काफी प्रसिद्व हो गया। चिपको आंदोलन ने जहां पेड़ों को बचाने के लिए अंहिसक प्रतिकार और आत्म-सर्मपण का भाव प्रदर्शित किया, वहीं वनों के प्रति वनवासियों का मोह भी दर्शाया। महत्वपूर्ण तथ्य यह था कि महिलाओं ने वनों को अपना मायका (मातृ-गृह) करार दिया। जहां से उनका खून का अटूट रिश्ता होता है और जो अपनी बहिन-बेटियों के लिए हमेशा सद्भावना रखता है, उनकी अभिवृद्वि के लिए प्रयत्नशील रहता है तथा सुख-दुःख में शक्ति व सार्मथ्य पर उनकी मदद करता है। वास्तव में वन मनुष्य और प्राणि मात्र के प्रति यहीं व्यवहार करता है। महिलाओं के मुख से

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

निकले ये सहज भावपूर्ण शब्द अत्यन्त व्यापक और गूढ़ भी है।

चिपको आंदोलन ने वनों की अभिवृद्धि को वनवासियों की अभिवृद्धि से जोड़ते हुए एक 6 सूत्रीय मांग-पत्र सरकार को दिया था जिसमें सरकार को कहा गया था :

1. वन नीति का मुख्य उद्देश्य मृदा और जल संरक्षण में वनों की मुख्य भूमिका में प्रतिष्ठित करना। इसके लिए हिमालय-क्षेत्र में नदियों के जलागम क्षेत्रों और मृदा-क्षरण अथवा भूस्खलन प्रभावित संवेदनशील क्षेत्रों में वनों में व्यापारिक कटान पूर्णतः प्रतिबंधित करना। ऐसे क्षेत्रों को चिन्हित करना।
2. वनों, वन-भूमि और वन-संपदा का सहीं सर्वेक्षण किया जाना तथा उपलब्ध वनो उपज से प्रथमतः वनों पर निर्भर लोगों की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति का समुचित प्रावधान किया जाना।
3. बंजर भूमि पर लोगों के माध्यम से वनीकरण का कार्यक्रम युद्ध-स्तर पर आरम्भ किया जाना। इस कार्यक्रम को ग्रामीणों के रोजगार से जोड़ा जाना तथा सामाजिक वानिकी-वन खेती को प्रोत्साहित किया जाना।
4. वनों से संबंधित प्रत्येक कार्य में ठेकेदारी पद्वति को समाप्त किया जाना। वन-कर्म की प्रत्येक विद्या में स्थानीय लोगों को जिम्मेदारी सौंपी जाना। इसके लिए ग्राम स्तर पर ग्रामीण श्रमिकों को संगठित कर श्रमिक समितियां बनायी जाना। वन पंचायतों व ग्राम पंचायतों को सक्षम बना कर इन कार्यों में सम्मिलित किया जाना।
5. वनोपजों पर आधारित लघु उद्योग-धंधे वन क्षेत्रों में स्थापित किए जाना। उन्हें इनके संचालन हेतु वनों से अपरिहार्य रूप से दोहित होने वाले काष्ट व लघु वनोउपजों पर आधारित कच्चा माल, तकनीकी मार्ग-दर्शन और वित्तीय सहायता प्रदान की जाना। इस निमित एक व्यवाहरिक तंत्र स्थापित किया जाना।
6. यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि औद्योगिक महत्व की तीव्र उगने वाली काष्ट प्रजातियों का रोपण बड़े पैमाने पर किया जा रहा है। इससे सहज व मिश्रित वनों का ह्रास संभावित है। इसलिए वृक्षारोपण में हिमालयी प्रकृति, परिस्थितियों व आवश्यकताओं के अनुरूप प्राजातियों का ही रोपण किया जाना। मध्य हिमालय में भी कई तेज बढ़वार वाली प्रजातियां है, जैसे उतीस, स्यान, गढ़पीपल, गढ़भैस, काकड़ा, पांगर, बकैन, कैमू, लोद आदि। इनका रोपण किया जा सकता है लेकिन स्थानीय आवश्यकता व परिस्थितियों को किसी स्थिति में भी अनदेखा नहीं किया जाना।

चिपको आंदोलन की ये मांगे लोगों की परम्परा, अनुभव, आवश्यकता तथा हिमालय की परिस्थितियों के अनुरूप थी। उन्हें ईमानदारी से लागू किया जाता तो अभी तक हमें सकारात्मक परिणाम प्राप्त होने लगते लेकिन हमारी सरकारों के पास चिन्ता और चर्चा का समय तो है लेकिन व्यवाहरिक कार्यक्रमों को बनाने और लागू करने की न तो फुरसत है और नहीं इच्छा-शक्ति है। इसके लिए समुचित तंत्र भी नहीं है।

दशोली ग्राम स्वराज्य मंडल द्वारा चिपको आंदोलन शुरू करने और उसमें महिलाओं तथा आम आदमी को आगे बढ़ाने का परिणाम यह हुआ कि लोगों को वनों के महत्व और अपनी शक्ति का अनुभव हुआ और इसकी मुखर अभिव्यक्ति के रूप में कई स्थानों पर स्वतः स्फूर्त आंदोलन आरम्भ हुए। जिन्होंने वनों को सरकारी कुल्हाड़ी से कटने से बचाया ही, कई मौलिक मुद्दों को भी उभारा। जोशीमठ और भ्यूंडार में भौगोलिक संवेदनशीलता का मुद्दा उठा तो डुंगरी पैंतोली में महिलाओं ने सवाल उठाया कि जब जंगलों और घर-गृहस्थी का सारा कार्य महिलाएं करती है तो पंचायतों में जंगल बेचने या हस्तांतरित करने में उनकी राय क्यों नहीं ली जाती है? सिरोली में ग्रामीणों ने वन-विभाग और वन-निगम की मिली भगत से वन विभाग द्वारा ही

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तय नियमों के उलंघन का मुद्दा उठाया तो बछेर में महिलाओं ने वनाधिकारियों से सवाल किया कि जंगल के सूखे पेड़ बेच दोगे तो गांव वालों के चुल्हें कैसे जलेंगे? आखिर गांव वालों को भी जिन्दा रहने का हक है। फिर गांव के उपरी हिस्से में बड़े पैमाने पर पेड़ काटने से भूमि की जो टूट-फूट होगी उससे बरसात में गांव को जो नुकसान होगा, उसका क्या होगा? मालई-बैनोली में महिलाओं ने बांज के जंगल में वन विभाग द्वारा जबरदस्ती ठूंसे जा रहे चीड़ के पेड़ों पर सवाल उठाया कि क्या यही वन विभाग का वन-विज्ञान है?

चमोली जिले के पिछड़े माने जाने वाले सीधे-सादे ग्रामीणों के इन सवालों और इनके पक्ष में किए गए आंदोलनों ने वन विभाग के अफसरों को अपनी गलती सुधारने पर विवश किया। चमोली जिले में ही चिपको आंदोलन की प्रभावकारी सक्रियता ने वनाधिकारियों, उनके वन-विज्ञान पर आधारित वनों की कार्य-योजना के अनुसार कटान कार्य निरस्त करने को मजबूर कर दिया। उसके बाद तो सरकार ने इन बिंदुओं पर कई कानून बनाए और अनेक निषेधादेश जारी किए।

स्थानीय संसाधनों पर आधारित वानिकी और पर्यावरण संवर्द्धन

दशोली ग्राम स्वराज्य मंडल ने जहां एक ओर पेड़ों को काटने से बचाने के लिए चिपको आंदोलन प्रारम्भ किया, वहीं भूस्खलन और भूक्षरण से प्रभावित क्षेत्रों तथा गांवों में बंजर भूमि को हरा-भरा बनाने के लिए ग्रामीणों, मुख्यतः महिलाओं को संगठित कर वानिकी और पर्यावरण संवर्द्धन शिविरों की एक श्रृंखला शुरू की जिसके उत्साहजनक परिणाम सामने आए हैं। कई गांव इस अभियान से हरे-भरे हो गए हैं। जिनसे ग्रामीणों को फल, घास-चारा और जलाऊ लकड़ी व ईमारती लकड़ी प्राप्त होने लगी है। जल-श्रोतों का ह्रास रूका है तथा भूक्षरण, भूस्खलन व बाढ़ से अस्थिर हुए भूभागों में स्थिरता लौटी है। इस तथ्य का कई वैज्ञानिक संस्थाओं ने अपने शोध व अध्ययनों में उल्लेख किया है। दूसरी तरफ सरकार की निषेधात्मक कार्यवाहियां और वन विकास के लिए किए जा रहे बहुविध प्रयासों का बहुत लाभकारी असर नहीं हो पाया है और अरबों-खरबों रूपये खर्च करने के बाद भी देश का वनावरण बढ़ने के बजाय घट गया है और आज वन विभागीय स्तर पर वनों के प्रति कोई आशा का भाव जागृत नहीं हो पाता जबकि दशोली ग्राम स्वराज्य मंडल द्वारा प्रेरित कार्य धरती पर दिखायी दे रहे हैं तो इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि सरकारी कार्य कलाप जनता से जुड़ाव पैदा करने में असफल रहे हैं जबकि संस्था का कार्य जनता को प्रेरित कर उनके माध्यम से ही संचालित किए जाते हैं। सरकारी कार्यों में काम किसी तरह लक्ष्य पूरे करने भर के लिए होते हैं जबकि ग्रामीणों के कार्यों में उनकी इच्छा, ज्ञान, शक्ति व भावना समाहित होती है। यही मूल कारण है जो दोनों के बीच अंतर करते हैं।

अब पूरी दुनिया के प्राकृतिक संसाधन, विशेष रूप से वन उस मुकाम पर पहुंच गए हैं, जहां वे आम लोगों की न्यूनतम जरूरतों को पूरा कर पाने में असमर्थ हो गए हैं और स्वयं अपने अस्तित्व को भी बचाने में असमर्थ हो गए हैं। इसलिए वनों पर आधारित ग्रामीणों-गरीबों का जीवन-यापन दूभर हो गया है। इसके अलावा बढ़ते प्राकृतिक प्रकोप तथा पर्यावरणीय असुंतलन पूरी दुनियां के लिए चुनौती बन गए हैं। इसलिए यह निश्चित है कि यदि प्राकृतिक संसाधनों का समुचित संरक्षण नहीं होता और वनावरण को प्रयत्न पूर्वक नहीं बढ़ाया जाता तो जीवधारियों के लिए यह बसुन्धरा जीवन के संकट का कारण बन जायेगा।

इस प्रकट तथ्य से निपटने के लिए बातें तो काफी हो रही हैं लेकिन ऐसे व्यवाहरिक कार्यक्रम नहीं बन पा रहे हैं जो धरती पर उतर सकें। उसके प्रमुख कारण ये हैं-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

1. प्राकृतिक संसाधनों पर समाज का नियंत्रण हटा कर सरकारी नियंत्रण की जो पृष्ठभूमि साम्राज्यवादी प्रवृत्ति ने आरम्भ की थी, उसे अपनी सर्वभौमिक सत्ता ने भी नहीं बदला।
2. सरकारी तंत्र का मूल ताना-बाना साम्राज्यवादी व्यवस्था ने अपने (सरकारों के) निहित स्वार्थों के लिए बुना था। साम्राज्यवादी व्यवस्था के समापन के बाद भी इसका मूल चरित्र नहीं बदल पाया।
3. प्राकृतिक संसाधनों, मुख्य रूप से वनों से संबंधित कानूनों में सरकारों की भूमिका मुख्य और लोगों की भूमिका गौण बना दी गई जबकि होना यह चाहिए कि यह विचार उभारा जाय कि संसाधन लोगों के हैं और उनके संरक्षण में मुख्य भूमिका लोगों की ही है। सरकारों की भूमिका लोगों की क्षमता के विकास, उन्हें तकनीकी मार्ग-दर्शन तथा आवश्यक संसाधन उपलब्ध कराने तक सीमित रहे।
4. संसाधनों के संरक्षण के लिए वातावरण बनाने, समुचित कानूनी प्रावधान करने तथा आवश्यक वित्तीय व अन्य प्रविधान करने की दिशा में कारगर कदम उठाने के वांछित प्रयास नहीं किए जा सके।
5. समाज ने भी संसाधनों के उपभोगधिकारों की तो चर्चा की लेकिन उनके संरक्षण और विकास को अपना कर्तव्य मानने की प्रवृत्ति विकसित नहीं की और न सरकारों पर इसके लिए समुचित दबाव बनाया।

आगे का रास्ता

अब जब कि यह प्रायः तय सा है कि प्राकृतिक संसाधनों की स्थिति संभाले बिना कोई चारा नहीं है और सरकारों और जन-पक्षों की ओर से इस दिशा में बढ़ने की बातें की जा रहीं हैं तो ऐसी व्यवाहरिक कार्य-योजनाएं बनानी होंगी जो परिणाम मूलक हो और वास्तविक तौर पर अवक्रमित और बंजर भूमि पर हरियाली का वातावरण तैयार कर सकें।

इसमें सबसे पहला कार्य होना चाहिए नियमों-कानूनों को इस दिशा में सहयोगी बनाने तथा कार्यक्रमों को सरकार प्रणीत कार्यक्रमों के बजाय लोक कार्यक्रम के रूप में आगे बढ़ाने की। इसके लिए विद्यायी प्रावधानों की समीक्षा की आवश्यकता है और सरकारों के स्तर पर मानसिकता में बदलाव भी जरूरी है।

1952 में स्वतंत्र भारत की वन-नीति की घोषणा में देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का एक तिहायी और पर्वतीय श्रेत्रों के दो तिहायी भू-क्षेत्र को वनाच्छादित करने की बात कही गई थी लेकिन इसके लिए जो तंत्र था वह 1927 में बने भारतीय वन अधिनियम से शासित होता है। वन विभागीय कर्मचारियों की संख्या भले ही गुणात्मक रूप में बढ़ी लेकिन वन-क्षेत्र बढ़ने के बजाय सिमट कर दस प्रतिशत के आसपास रह गए। अट्ठाईस वर्ष बाद 1980 में वनभूमि के गैर वनीकरण की तेज रफ्तार को रोकने के लिए वन (संरक्षण) अधिनियम बनाया गया और उसके आठ वर्ष बाद 1988 में उसको अधिक कठोर बनाया गया। इसी वर्ष नई वन-नीति भी घोषित की गई जिसका घोषित लक्ष्य लोगों का वन-कर्म से जोड़ना तथा वनों का प्रथम लक्ष्य वनवासियों की आवश्यकता पूरी करना माना गया। लोगों को वन-कर्म में भागीदार बनाने के लिए संयुक्त वन प्रबंध की कार्य-नीति तय की गई। इसके लिए राज्य सरकारों को केन्द्रीय सहायता तथा विश्व बैंक से भी सहायता मिल रही है लेकिन इसकी सफलता भी इसलिए संदिग्ध है कि इसमें भारत के विभिन्न समाजों, उनके परिवेश, मान्यताओं और परम्पराओं को कार्य-नीति के केन्द्र में नहीं रखा गया। इससे लोगों का मनोयोग पूर्वक जुड़ाव नहीं हो पायेगा और अंततः परिणामों की सफलता भी संदिग्ध रहेगी।

हमारे विचारकों, नीति-नियंताओं और योजनाकारों को सबसे पहले इस मनोवृत्ति को त्यागना होगा कि देश और उसके संसाधनों का संरक्षण केवल सरकार की ही जिम्मेदारी है और वहीं समर्थ भी है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हमें पिछली लोक-परम्पराओं को सामने रखकर अपने मानव संसाधन पर विश्वास करने की हिम्मत जुटानी होगी।

अभी तक सरकारी तंत्र की मनोवृत्ति यह है कि लोगों के सर्वांगींण विकास का सारा ठेका उसी का है। इसी मानसिकता के आधार पर लोक-भागीदारी का सिद्वांत निकला है यह सिद्वांत सरकारी दम्भ का प्रर्दशन मात्र है।

हमारे अनुभव है कि लोगों को संसाधनों के सरंक्षण के कार्यक्रम बनाने में जुटाया जाना चाहिए। इस संबंधी उनकी क्षमता का विकास करने का दायित्व सरकार ले। लोग अपने परिवेश, परम्परा और आवश्यकता के अनुरूप कार्य-योजनाएं बनाएं तथा व्यवस्था-तंत्र आवश्यकतानुसार उनकी मदद करे। उन्हें विज्ञान व तकनीकी के सरल व सस्ते ऐसे विकल्प उपलब्ध कराए जाएं जिन्हें वे आसानी से ग्रहण व आत्मसात कर सकें।

इस प्रयोग से लोगों का सुसुप्त मनोबल जागृत होगा। उनका पुरूषार्थ व स्वाभिमान जागेगा तथा एक उद्देश्यपूर्ण प्रयास की दिशा में बढ़ने के गौरव की अनुभूति उन्हें होगी जबकि आज यहीं कार्य सरकारी तंत्र के माध्यम से उन्हीं के द्वारा होता है, लेकिन उसमें उनकी हैसियत मजदूर, दलनायक या ठेकेदार से अधिक नहीं होती। इसके अलावा वर्तमान सरकारी कार्य-संस्कृति में लोक संगठनों की उपेक्षा एक सामान्य बात है।

प्रत्येक गांव का अपना वन

हिमालय क्षेत्रों के अलावा भारत के अन्य पर्वतीय व वन क्षेत्रों को जोड़ें तो करीब दस करोड़ लोग वनों के बीच निवास करते हैं। उनकी जीविका का साठ से अस्सी प्रतिशत वनों से प्राप्त होता है। वहीं देश की चालीस प्रतिशत जनसंख्या खाना पकाने के लिए ईधन के लिए कमोवेश वनों पर ही निर्भर है। कोई भी कानून उन्हें चुल्हा जलाने के लिए ईधन जुटाने से नहीं रोक सकता। इसके अलावा पशुओं की लगातार बढ़ती संख्या के बोझ का एक बड़ा हिस्सा वनों पर अवलम्बित है। इसलिए वनों का क्षेत्र और सघनता बढ़ाए बिना इन जरूरतों को पूरा करने का दूसरा उपाय नहीं है।

अनुभवों से यह बात स्पष्ट हुई है कि हमारे पास वन-भूमि की कमी नहीं है। मानव-शक्ति भी बहुत है। अतः इन दोनों में समुचित सामंजस्य स्थापित किया जाए। लेकिन यह कार्य मौजूदा सरकार-तंत्र और साथ ही आम लोगों की मनोवृत्ति को यथास्थिति रखते हुए संभव नहीं है। इस मनोवृत्ति को एकाएक बदला भी नहीं जा सकता। ऐसा कारगर तंत्र तैयार करना होगा जो दो अलग-अलग मनोवृत्तियों से संचालित सरकारी-तंत्र और जनता को एक सूत्र में पिरोने और उनकी सम्मिलित शक्ति को एक ही दिशा में प्रवाहमान करने में समर्थ हो।

इस पूरी स्थिति पर गहन और व्यवाहरिक प्रयोग करने के बाद हमारा निष्कर्ष है यह कि यदि वनों को अपनी आवश्यकता की पूर्ति में सक्षम बनाना है तो दो सदी पहले की ग्रामीण व्यवस्था को वर्तमान संदर्भ में व्यवहार में उतारना होगा। इसके लिए हमारी कल्पना है कि प्रत्येक ग्राम का अपना वन हो।

यहां यह स्पष्ट करना जरूरी है कि प्रत्येक गांव का अपना वन कल्पना-वर्तमान सरकारी पंचायती राज की तर्ज पर ऊपर से थोपा हुआ जैसा नहीं बल्कि लोगों के अपने विचार और इच्छा से उनके अपने प्रयासों से तैयार किया हुआ होगा।

हमारा मानना है कि गांवों में मुख्य रूप से पर्वतीय और वन-क्षेत्रों में लोगों की वनों पर अधिकतम निर्भरता होने के कारण वे वनों के ह्रास से होने वाले त्रासों को झेल रहे हैं तथा उनकी सहज जीवनचर्या अत्यन्त दूभर हो गयी है। अतः उनके सामने अपनी जरूरतों को पूरी करने के लिए अपना वन बनाने का अवसर उपलब्ध कराया जायेगा और उसके लिए भूमि, तकनीकी व वित्तीय संसाधन आदि उपलब्ध कराये जायेंगे तो वे निश्चित तौर पर उसे अपनायेंगे।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जैसा कि पहले वन पंचायतों के गठन में हमने देखा कि कठिन औपचारिकताओं के बाद भी ग्रामीणों ने उसमें बढ़-चढ़ कर भागीदारी की जबकि वन पंचायत नियमावली में जनता को प्रभावी भूमिका में रखा ही नहीं गया है। राजस्व विभाग के वे अधिकारी वन पंचायतों के गठन और नियमन के लिए जिम्मेदार बनाए गए है जो प्रशासक की भूमिका में लोगों का विश्वास अर्जित नहीं कर सकते। उन्हें वनों की तकनीकी जानकारी बिल्कुल नहीं होती बल्कि उनका वनों और ग्रामीणों से कोई सरोकार भी नहीं होता। उनका सरोकार अधिकारियों को प्रसन्न रखना और अपने कर्तव्यों का औपचारिक निर्वहन मात्र होता है।

ग्राम वन की हमारी कल्पना यह है कि पर्वतीय व वन क्षेत्र के प्रत्येक गांव का अपना वन हो जिसके लिए भूमि राजस्व न हो, आरक्षित वनों से भी भूमि लेकर ग्राम वन बनाए जाने चाहिए तथा उसके संचालन के लिए वन पंचायत गाठित की जानी चाहिए। वन पंचायत को सरकारी हस्तेक्षप से मुक्त रखना चाहिए। उसके सदस्य केवल वे ही लोग बन सके जो उस गांव की सीमा में कृषि, पशुपालन, उद्यान अथवा इनसे संबंधित ग्रामीण कार्यों से जुड़े हो। महिलाओं की बहुलता इसमें अनिवार्य बनायी जाए तथा यह प्रावधान रखा जाए कि जो इन व्यवसायों को अथवा गांव की सीमा से बाहर अपना कार्य क्षेत्र बना ले, वह स्वतः ही वन पंचायत की सदस्यता से च्युत हो जायेगा। वन पंचायतों के गठन, निरीक्षण का दायित्व खण्ड विकास अधिकारी का हो। वन पंचायत को ग्राम वन की योजनाएं बनाने, क्रियान्वित करने तथा उसके लाभ वितरण के सर्वोच्च अधिकार हो सरकारी तंत्र केवल तकनीकी मार्ग दर्शन, संसाधन उपलब्ध कराने, वातावरण बनाने तथा लोक क्षमता के विकास तक सीमित रहे।

इसके लिए प्रशासनिक अहंकार, सत्ता के अभिमान और कानूनों की बंदिशों से ऊपर उठने की आवश्यकता होगी। इसी के अनुरूप वन-नीति घोषित करनी होगी, वन कानून और वन पंचायत नियमावली को ढालना होगा और पंचायती राज में ऐसे प्रावधान करने होंगे कि गांवों के संसाधनों का बहुमुखी विकास हो। ग्रामीण संस्थायें अधिकारों की टकराहट से बचें और अपने कर्तव्यों पर आधारित सामाजिक अवधारण को पुष्ट कर सकें। विकास की अवधारणा के मूल में संसाधनों के विकास को स्थापित करना होगा तभी हम प्राकृतिक संसाधनों के ह्रास से उत्पन्न चुनौतियों का सामना करने में सफल हो पायेंगे।

चण्डी प्रसाद भट्ट, पर्यावरणविद, चमोली

संदर्भ :

1. भट्ट चण्डी प्रसाद/पहाड़ी रमेश प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण एवं विकास के कुछ मौलिक बिन्दु, अंतरराष्ट्रीय एकीकृत पर्वतीय विकास केन्द्र (ICIMOD) काठमांडू, नेपाल द्वारा आयोजित हिन्दकुश-हिमालय क्षेत्र में सामुदायिक वन प्रबन्ध में स्थानीय संस्थाओं की भूमिका-कार्यशाला में 16-20 मार्च, 1998 को काठमांडू में प्रस्तुत।
2. वन स्थिति रिपोर्ट 1999 अनुपूरक बिहार एवं झारखंड, मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश एवं उत्तरांचल (नवगठित राज्यों हेतु) भारतीय वन सर्वेक्षण (पर्यावरण एवं वन मंत्रालय) देहरादून, उत्तरांचल।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उत्तराखण्ड में वन पंचायत आधारित सामाजिक-आर्थिक संसाधन विकास व्यवस्था एवं सुझाव

सामाजिक वानिकी और संरक्षण दोनों की दिशायें विपरीत धुव्रिय हो गयीं और यह शब्द स्वयं में भ्रमजाल रहा है। जबकि सामाजिक वानिकी का सीधा तात्पर्य था, लोगों को वनों से जोड़ना, उनकी जीविका व अन्य संसाधनों के साथ वनों के महत्व के प्रति जागरूक करना। जब लोगों में वनों के प्रति आकर्षण बढ़ता तो संवर्द्धन और संरक्षण दोनों स्वतः आधार पा जाते। परन्तु ऐसा व्यवहार में नहीं है। सामाजिक वानिकी और वन संरक्षण की प्रशासनिक व्यवस्थायें और नीतियाँ व्यवहार में कुछ और हैं। सिद्धान्त में कुछ और जनता की भागीदारी कहीं नहीं है, बाहर से थोपी गई परियोजना व व्यवस्थायें है। जनता की आस्था से जुड़ा विकास कार्यक्रम नहीं है।

एक पौराणिक प्रसंग है। वर्षा ऋतु के पश्चात् शरद ऋतु के आगमन काल में श्रीकृष्ण ने समस्त व्रजवासियों को धन्यवाद ज्ञापन के रूप में उत्सव मनाने की तैयारी करते देखा। उत्सव के उमंग में प्रसन्नचित्त गोपों को देख कर कौतुहलवश कृष्ण ने बड़े-बूढ़ों से पूछा- आप लोग जिस कारण इतना प्रसन्न हैं वह ''इन्द्र-यज्ञ'' क्या है?

कोऽयं शंक्रमखो नामयेन वो हर्ष आगत।

नन्दगोपों ने कहा ''मेघ और जल के स्वामी इन्द्र हैं, रसरूपी जल की वर्षा से सभी प्राणी उत्पन्न होते है, अन्न पैदा होता है, शाक पैदा होता हैं। गौएं तुष्ट व पुष्ट होकर सन्तति व दूध देती हैं, कोई भूखा नहीं रहता, इन्द्र पृथ्वी के जल को सूर्य की किरणों द्वारा आकर्षित कर मेघों द्वारा पृथ्वी पर बरसा देते हैं। इसीलिए समस्त राजा, हम और अन्य मनुष्यगण यज्ञों द्वारा इन्द्र की पूजा करते हैं''।

कृष्ण ने समाज के अनुकूल तर्क रखा- ''हे तात! हम न तो कृषक हैं और न व्यापारी, हमारे देवता तो गौएँ हैं, हम वनवासी हैं, गोपालक हैं। खेतों के अन्त में सीमा है, सीमा के अन्त में वन हैं और वनों के अन्त में समस्त पर्वत हैं। ये पर्वत ही हमारी परम गति हैं। पर्वतों के वन ही हम चक्रचारियों (वन-पर्वतादि में स्वछन्द विचरने वाले) के लिए पर्वत की पूजा ही श्रेष्ठ हैं। अतः आज से गिरी यज्ञ अथवा गो यज्ञ का प्रचार होना चाहिए। ब्राह्मण (लोग मन्त्र यज्ञ), कृषक सीर यज्ञ (हल की पूजा) करते हैं और क्षत्रिय शस्त्र-शास्त्र की पूजा करते है। अतः पर्वत और वनों में रहने वाले हम लोगों को गिरी यज्ञ व गो यज्ञ करना चाहिए।''

प्रसंग से एक बात स्पष्ट है। परिणाम की पूजा नहीं की गई, परिणाम का उपचार नहीं किया गया। वनों के सरंक्षण-संवर्धन की बात नहीं की गई। गो यज्ञ व गिरी यज्ञ रूपी कारण का संरक्षण सवंर्धन व सम्मान किया गया। लोक जागरण हुआ, श्रद्धा व उल्लास पूर्ण उत्सव हुआ, वन, वनवासी और अन्य प्राणी जीत गये। जीवित और रोजगार, आर्थिक समृद्धि, पर्यावरण संरक्षण आदि के सतत विकास (Sustainable Development) का मार्ग प्रशस्त हो गया। इन्द्र (Lord of administrative power)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हार गये और कृष्ण (Attractive power of sustainable livelihood) जीत गये।

आज का समय भौतिकवादी है, भौतिकवादी यथार्थ नहीं अर्थ भोग की लिप्सा में डूबते जा रहें हैं, धनैषणा अपसंचय, कलह, बेईमानी व अहंकार को ही बढ़ाता है। तब भला सतत विकास का आधार क्या होगा। कैसे बढ़ेंगे वन? कैसे बचेंगे वन? कैसे होगा जिवीकोपार्जन? वर्तमान विकास अन्धा विकास है। आडम्बरयुक्त और नैतिकता विहीन है। कार्य योजना के लिए बजट चाहिए, बजट उपयोग के लिए आदमी चाहिए, आदमी को कैडर चाहिए, कैडर वाला मिटींग में व्यस्त है, मीटिंग में आंकड़ा देखा जाता है। आंकड़ा व्यवस्था पर निर्भर है। यहाँ गाँव-गाँव के लोग, लोगों का उत्साह, वनों से प्यार, गिरीयज्ञ का उत्साह तो है ही नहीं।

शासन व सरकार का उद्देश्य होना चाहिए कि वह विकास हेतु कार्यरत इकाईयों को परियोजना, उद्देश्य, वित्त, संसाधन एवं नीतिगत दिशा-निर्देश उपलब्ध करा कर कार्य के लिए स्वतंत्र कर दें और उनके प्रबन्धन में हस्तेक्षप न करें। नीतिगत दिशा निर्देशों के विपरीत अगर व्यवस्था की जा रही हो तो वहाँ मार्ग दर्शन करें अथवा जरूरत के अनुसार परिवर्तन करें, परन्तु ऐसा नहीं हो रहा है। उत्तराखण्ड का एक ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत है :

उत्तराखंड बना इसलिए कि वन और वनवासियों को जोड़ा जाय, पलायन रूके, सतत विकास की लहर गांव से उठे, परन्तु अभी ऐसा नहीं हो सका है, अपितु मानसिकता और सामाजिक संघटन को तोड़ने वाला मद्यपान राजस्व सम्वर्धन का मानक बनता जा रहा है।

वन सम्पदा, नद जल, विविधता युक्त जलवायु, तीर्थस्थल, मनोरम पर्यटन स्थल, बुग्याल, जड़ी-बूटियाँ, हिमाच्छादित शिखर और ग्लेशियर आदि हमारे स्थाई संसाधन हैं। ऊर्जा प्रदेश और हर्बल प्रदेश की अवधारणा इन्हीं पर टिकी है, तीर्थाटन तो यहाँ की धरोहर है। जिन्हें संभालना व सवांरना होगा। मोटे अनाजों की कृषि, मसाला वर्ग, फलोद्यान, मौसमी सब्जी, पुष्प कृषि, ऊन-उद्योग, जड़ी-बूटी, कृषि, पर्यटन, बहुमूल्य जड़ी-बूटियाँ आदि श्रमसाध्य संसाधन हैं क्योंकि इनको बढ़ायेगें तो बढ़ेगे। छोड़ देगें तो पुनः संकुचित हो जायेंगे। देहरादून, पिथौरागढ़ कभी चाय व बासमती के लिए प्रसिद्ध थे आज नहीं है। तीसरी व्यवस्था संयुक्त संसाधनों यथा उद्योग, व्यवसायिक चिकित्या व्यवस्था, विविधतायुक्त उच्च शैक्षाणिक व्यवस्था और बाजार विकास आदि की है। जिनका स्थायित्व अपने-अपने विभिन्न कारकों पर निर्भर करता है, जिसका कारक उत्तम होगा वह तेजी से विकास पायेगा और टिकाऊ होगा। समुदाय आधारित विकास के लिए यह देखना जरूरी है कि समाज और व्यक्ति के आस्था से जुड़े सरोकारों को साथ लेकर कार्यक्रम बने तब जनता का जुड़ाव होगा। गोवर्धन पूजा आज भी होती है, इन्द्र उत्सव नहीं।

उत्तराखण्ड वन पंचायतों को अजीविका संसाधन के स्थिर विकास के लिए उत्तम कारक माना जा सकता है। ये वन पंचायतें 5 एकड़ प्रति परिवार के दर से भी प्रबन्धन के लिए व्यवस्थित की जाये तो उत्तराखण्ड आबादी का 5 लाख जनता को स्थाई ओर अस्थाई रोजगार निकटस्थ प्राप्त हो जायेगा। प्रत्येक वन पंचायत में उसके क्षेत्रफल जलवायु, भौगोलिक संरचना, प्राकृतिक संसाधन व ढॉचागत व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए निम्नोक्त विकास कार्य में से अनुकूल कार्यों की परियोजना व कार्यकारी योजना बनाये जाने पर ध्यान केन्द्रित किया जाना चाहिए। क्योंकि सभी स्थानों पर एक सी योजना लागू नहीं हो सकती।

वन पंचायतों की परियोजनाओं के संचालन एवं प्रबन्धन के लिए निम्नोक्त व्यवस्था की जा सकती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

क्र. स.	मुख्य विकास कार्य		लाभ
1.	वृक्षरोपण	– इमारती काष्ठ – औषधोपयोगी प्रजाति – फल व पुष्प प्रजाति – चारा व ईंधन प्रजाति	1. वन संवर्धन व संरक्षण। 2. प्रजाति संरक्षण व संवर्धन। 3. जैव विविधता विकास।
2.	पशुपालन	– गो वंश व महिष वंश – भेड़ व अजा वंश – कस्तूरी मृग व मृग पालन – शंशक व कुक्कुट पालन	4. जल संचय, संरक्षण व उपयोग। 5. आय संसाधनों में समृद्धि। 6. पौष्टिक खाद्य पदार्थों में वृद्धि।
3.	जल संचय व संरक्षण	– मत्स्य पालन – जलज पादप उत्पादन	7. उद्यम संसाधनों में वृद्धि।
4.	कृषि कार्य	– औषध पादप – सुगंध पादप – रंग–रोगन – बॉस व रिंगाल उत्पादन	8. उर्जा संसाधनों में वृद्धि। 9. प्राकृतिक उर्वरक उत्पादन वृद्धि। 10. ईंधन व चारा की सतत वृद्धि।
5.	स्थानीय उद्यम	– ऊर्जा उत्पादन, जल, ताप, सौर व पवन – घराट, पिसाई व ऊर्जा – ऊन, काष्ठ व बॉस व ऊर्जा उद्योग – रेशा उद्योग – धूप, हवन सामग्री – शहद उद्योग	11. भू–क्षरण, भूस्खलन पर रोक। 12. निकटस्थ श्रमसम्पादित आय। 13. सामाजिक संकुल व बन्धुत्व का विकास। 14. भौगोलिक जलवायुक्षरण पर रोक।
6.	बाजार व्यवस्था	– विपणन कार्य व बाजार स्थापन	15. समुदायिक व एकीकुत ग्राम्य विकास के धन का सदुप्रयोग।

वित्तिय व्यवस्था

ग्राम्य विकास, सामुदायिक विकास, जनजाति विकास, चिकित्सा–आयुष, उद्यान–रेशम, प्राइमरी व माध्यमिक शिक्षा, जलागम, पर्यटन व तीर्थाटन, पर्यावरण व वन विभिन्न कार्यक्रमों के कुल बजट 20 प्रतिशत धनराशि इस कार्य में व्यय की जानी अनिवार्य है।

प्रशासनिक हस्तक्षेप

प्रशासनिक हस्तक्षेप बिल्कुल न हो, मुख्य प्रबन्धन समिति के निर्णयों पर ही कार्यवाही हो, मुख्य प्रबन्धन नियामक अपने निर्धारित कार्यक्रम, व्यवस्था, व्यय, पुरस्कार, दण्ड या अन्य निर्णयों के लिए स्वयं में सक्षम व स्वतंत्र हों तथा इनमें ऐसा व्यक्ति न घुसे जिसका पंजीकरण सदस्य के रूप में न हो।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बाजार

वन पंचायत के विभिन्न उत्पादों के क्रय-विक्रय संवर्धन के लिए निम्नलिखित सहयोग मिले :

1. विज्ञापन, प्रकाशन, प्रदर्शनी अयोजन तथा वाहय भागीदारी व्यय में।
2. विभिन्न विभागों द्वारा विभिन्न विषयों पर प्रशिक्षण कैम्पों का आयोजन व प्रशिक्षण।
3. राज्य सरकार द्वारा उत्पाद विक्रय के केन्द्रिय बाजार की स्थापना।

लाभांश वितरण

1. प्रारम्भिक स्थिति में लाभार्थी का व्यय 25 प्रतिशत हो और राज्य सरकार का 75 प्रतिशत।
2. अर्थोपार्जन चक्र प्रारम्भ होने पर धन वसूली तक 70 प्रतिशत राज्य सरकार ले 30 प्रतिशत लाभार्थी के खाते में जाये। लागत पूंजी वसूली पाने के पश्चात् काश्तकार को लाभांश 90 प्रतिशत और राज्य सरकार को 10 प्रतिशत दिया जाये।
3. इस धन से सरकार का कोई प्रशासनिक हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए ।

मुख्य प्रबन्ध

- वन पंचायत के निकटस्थ परिवारों से वन पंचायत विकास संचालन हेतु सशर्त इच्छा पत्र का आमंत्रण कर चयनिय लाभार्थियों का प्रशिक्षण (अन्तः व वाह्य) व अनुबंधात्मक पंजीकरण किया जाना।
- मुख्य प्रबन्धन समिति वन पंचायत के सदस्यों द्वारा गठित कर परियोजनात्मक सहयोग के लिए ''परियोजना विशेषज्ञ समिति'' ''विषय विशेषज्ञ समिति'' निरीक्षण व निर्देशित समिति, वित्तिय सलाहकार समिति तथा बाजार एवं विपणन समिति का गठन करना होगा।
- वन पंचायत के लिए चिन्हित परियोजनाओं का हस्तान्तरण कर। परियोजना में चिन्हित निर्माण कार्य, सामग्री व व्यय व्यवस्था के लिए मुख्य प्रबन्धन समिति के कार्यों की अर्धवार्षिक व वार्षिक समीक्षा त्रुटि सुधार आडिट व दिशा-निर्देश तीन वर्षों तक अथवा अर्थोपार्जन चक्र प्रारम्भ होने तक किया जाये।
- लाभार्थी को क्षेत्र आबंटन की प्रथम अवधि 3 वर्ष, द्वितीय अवधि 7, तृतीय अवधि 11 वर्ष, इस प्रकार 21 वर्षों तक एक व्यक्ति के नाम व्यवस्था रह सकती है। लाभार्थी के लापरवाही, असहयोग, कर्त्तव्यहीनता आदि की स्थिति में चेतावनी वा अनुबंध का अन्य के हस्तान्तरण कर दिया जाये।
- कार्य, नियम व व्यवस्था में पारदर्शिता, ईमानदारी, समर्पण युक्त निर्णयात्मक अधिकार लाभार्थी व प्रबंधन समिति को दिया जाये। लाभार्थी यदि प्रथम अवधि में उत्कृष्ट रहकर राज्य पुरस्कार प्राप्त करता है तो वह एक और क्षेत्र ले सकता है।
- अर्थोपार्जन चक्र प्रारंम्भ होने तक लाभार्थी प्रबंधन समिति को वासुदेव अंश (पोषक धनराशि) प्रदान की जाये। जो 50 प्रतिशत अनुदान व 50 प्रतिशत न्यूनतम कृषि ऋण के रूप में हो।
- लाभार्थी परिवार के लिए चिकित्सा, शिक्षा, बाजार, आवागमन प्रशिक्षण, कार्यशाला आदि की व्यवस्था राजकीय स्थाई बजट से की जाये।

इस प्रकार वन पंचायतों के विकास के लिए ''स्वावलम्बन विकास'' की प्रक्रिया स्थापित करनी होगी। जिसमें शासन व विभागाध्यक्षों को शामिल नहीं किया जाये। इसमें वन पंचायतों के प्रबन्धन समिति द्वारा नीमित व चयनित व्यक्ति ही तीन वर्ष के लिए सदस्य रहेगें। उक्त सभी समितियों के सहयोग व नीतिगत मामलों के लिए 6 सदस्य उच्चस्तरीय राज्य समिति हो जिसके पदेन अध्यक्ष मुख्य सचिव हो।

उत्तराखण्ड वन पंचायत द्वारा आधारित सामाजिक, आर्थिक संसाधन व्यवस्था एवं सुझावों का क्रियान्वयन प्रयोगात्मक स्वरूप का क्रियान्वयन अनिवार्य है।

डॉ. मायाराम उनियाल

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वनीकरण रोजगार में उत्तराखण्ड वन विभाग एवं पंचायतों की सहभागिता से सतत विकास एवं वृक्षारोपण

उत्तराखण्ड देवभूमि प्राकृतिक नैसर्गिक वन सम्पदा से भरपूर प्रदेश है। जल, जंगल और जमीन उत्तराखण्ड की प्रमुख सम्पदा है। हिमालयी भू-भाग की पर्वत श्रेणियाँ, हरी-भरी मखमली बुग्याल, रंग बिरंगे फूलों से सुशोभित चरागाह, अनेक किस्म की जीवनदायनी जड़ी-बूटियां, वन्य जन्तु, पशु-पक्षी तथा हिमालय से प्रवाहित गंगा, जमुना, अलकनन्दा आदि पवित्र नदियाँ में प्रचुर जैव शक्ति और उर्जा के स्रोत की विपुल सम्पदा छिपी हुई है।

अब तक समझा जाता रहा है कि उत्तराखण्ड की वन सम्पदा आर्थिक दृष्टिकोण से समुचित विकास एवं परियोजनाओं के अभाव से शोचनीय रही है।

पर्यावरण प्रदूषण की समस्या भी दिनों दिन भयानक होती जा रही है। जल, वायु और भूमि का सन्तुलन बिगड़ने के कारण वातावरण प्रदूषित होते जा रहा है। ओजोन परत में छेद बढ़ता जा रहा है। प्राकृतिक जलाशयों, हिमनदों के स्रोत खिसकते जा रहे हैं या समाप्त हो रहे हैं। धरती में जल का अनुपात घटता जा रहा है। हिमालय की सम्पदा का अनैतिक विदोहन तथा जंगलों के कटाव के कारणों से भी वनों का अनुपात कम होता जा रहा है। इसलिए यह जरूरी हो गया है कि हिमालय में संसाधनों के अपेक्षित जानकारी के लिये हिमालय की उत्पत्ति, संरचना, जड़ी-बूटी वन सम्पदा एवं जल सम्पदा खनिज सम्पदा आदि पहलुओं को अच्छी तरह से समझना होगा, तभी हम उत्तराखण्ड की वन सम्पदा का वास्तविक मूल्यांकन कर पायेगें शीर्षक लेख में इसके समाधान में वनीकरण रोजगार में उत्तराखण्ड वन विभाग, पंचायतों, वन पंचायतों की सहभागिता के सतत विकास के मूलभूत विषय में सामग्री के में विस्तृत जानकारी देने के प्रयास किया जाना आवश्यक है, इसके लिये पंचायतों के माध्यम से महिलाओं की भागीदारी, नवयुवकों को वनीकरण योजना में सहभागिता में भागीदारी एवं महिला मंगल दल, महिला-स्वयं सहायता समूह, स्थानीय-महिला समूह, आंगनबाड़ी आदि स्वयंसेवी संस्थाओं के सहयोग से वनीकरण विकास की रणनीति समाधान के विषय में जानकारी देने का प्रयास किया गया है।

परिचय

विज्ञान एवं तकनीक के अभूतपूर्व विकास ने एक ओर जहाँ अनेक घातक रोगों के निदान एवं चिकित्सा के क्षेत्र में जड़ी-बूटियों एवं परम्परागत दादी मां के नुस्खों द्वारा विशेष सफलता प्राप्त की है। वहीं इन कृत्रिम उपादानों के प्रयोग ने मानव मात्र को प्रकृति की गोद से अत्यन्त दूर कर दिया है। जल वायु, भूमि एवं प्रकाश जैसे परमावश्यक उपादानों से जो प्रकृति के नैसर्गिक अवदान के रूप में उपलब्ध है। इससे आज का मानव प्रकृति के असन्तुलन के कारण वंचित होता जा रहा है। अपने भोग-विलास एवं भौतिकवादी प्रवृतियों के कुकृत्यों द्वारा वायु, भूमि, वन एवं जल के प्राकृतिक स्रोतों तथा गंगा जैसी

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पवित्र नदियों को कल-कारखानों के दूषित रसायनों के पानी के द्वारा प्रदूषित कर प्राणवायु (आक्सीजन) में जहर घोल कर तथा जंगलों के अन्धाधुन्द कटाई के कारण वनों का नगरीकरण करता हुआ आज का अधिकतर समाज आत्महन्ता ही नहीं मानव सभ्यता का सबसे बड़ा शत्रु बनता जा रहा है और खाद्य सामग्री में अन्धाधुन्द रसायन खादों एवं रसायनिक कीटनाशी घोलों दवाओं के कारण नित नयें रोगों का प्रकाश में आना एक आज की नियति बन गई है। इसका मूल कारण प्रकृति के नैसर्गिक नियमों की अवहेलना, भारतीय संस्कृति एवं संस्कारों का पालन न करना तथा आहार-विहार के नियमों का पालन न करना तथा पर्यावरण प्रदूषण के बढ़ते दबाव के कारण मानव एवं प्राणिमात्र जीव-जन्तु आदि का जीवन खतरे में है। समय रहते इस दिशा में चिन्तन करके सामाजिक चेतना को जागृत करने की आवश्यकता है।

हमारे देश की जनसंख्या भी अवाधगति से बढ़ने के कारण चीन की अपेक्षा भारत का नम्बर एक होने का अनुमान है। जनसंख्या वृद्धि का दबाव हमारे प्राकृतिक संसाधनों पर बुरा असर डालेगा। इस दिशा में भी बुद्धिजीवियों, राज्य सरकारों एवं समाजसेवियों को गहनरूप से चिन्तन करने की आवश्यकता है। इसके लिये हमें नये विकल्प तलाशने होगें। उत्तराखण्ड के नैसर्गिक एवं प्राकृतिक धरोहर के संरक्षण और सतत विकास के रणनीति के तहत पर्यावरण संरक्षण के उपयोगी वृक्ष जल सम्पदा के मूल स्रोतों को सुरक्षित रखने वाले पौधों, औषधीय जड़ी-बूटियों का संरक्षण, सम्वर्धन एवं कृषिकरण के साथ वानकी के महत्व को बढ़ावा देना होगा। वानकी के विकास एवं आवश्यक वन नीति में सरलीकरण, ग्रमीणों की भागीदारी में पंचायतों, वन पंचायतों, महिला मण्डल, स्वयंसेवी संगठनों को आपसी तालमेल एवं समन्वय के साथ-साथ उत्तराखण्ड के सतत विकास के लिये रणनीति योजना बद्ध रूप से तैयार करने की आवश्यकता है।

हाल के वर्षों में विज्ञान के क्षेत्र में हुई प्रगति ने कुछ नये प्रश्नों को जन्म दे दिया है। जिसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण है पर्यावरण की सुरक्षा, पर्यावरण का अर्थ है कि **''प्रकृति प्रदत्त वातावरण''** अर्थात् प्रकृति प्रदत्त जैविक विविधता, जल, भूमि, वायु, जंगल, वन्य जीव आदि का प्राकृतिक सन्तुलन बनाये रखना उसके साथ अनैतिक छेड़छाड़ न करना अर्थात वातावरण में आपसी पारस्परिक सहयोग से प्रदूषण रहित विकास कार्यों में योगदान करना है।

जैसा कि उपरोक्त प्रसङ्ग में स्पष्ट किया गया है कि अनैतिक रूप से जरूरत से ज्यादा प्रकृति प्रदत्त प्राकृतिक वातावरण में विकास के नाम पर जो बिना सोचे समझे विकास योजनायें प्रारम्भ की जाती हैं। उसके भावी दुष्परणिाम काफी विनाशकारी बन सकते हैं। जिनमें प्रमुख रूप से निम्न विकास योजनायें इस प्रकार से है :

1. बांध व सिंचाई योजनायें

यद्यपि बढ़ती जनसंख्या के खाद्यान्न जुटानें हेतु सिंचाई कार्यों का विस्तृत रूप से विस्तार हुआ तथा इन बड़े बांधों के निर्माण से सिंचाई सुविधा से बढ़ी है परन्तु इनसे पर्यावरण की भारी क्षति हुई है। बांध के डूब क्षेत्र में तथा दलदलों की कृषि हेतु उपयोगी हजारों जीव जन्तु एवं वनस्पतियां समाप्त हो गई हैं। स्थानिक जलवायु में परिवर्तन के कारण रोग प्रतिरोधक क्षमता भी नष्ट होती जा रही हैं। दुर्लभ प्रजातियाँ नष्ट होती जा रही हैं। उर्वरा मिट्टी इन बड़े बांधों में तलछठ हो जाने के कारण जमीन की उर्वरा शक्ति नष्ट होती जा रही हैं। सड़कों के निर्माण काल में प्रयुक्त डायनामाईटों (विस्फोटों) के कारण पार्श्ववर्ती चट्टानों में दरारें उत्पन्न होती जा रही हैं जिसके कारण जमीनें धंसती जा रही है एवं जल रिसाव का खतरा बढ़ता जा रहा है। बांध में अवरूद्ध

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भण्डार, बढ़ता तापक्रम, आद्रता, परिवर्तित वायुचक्र के कुप्रभाव से नयी बिमारियाँ पैदा होती जा रही हैं। अपरिमित जलराशि के दबाव से भूकम्पों की सम्भावना बढ़ती जा रही हैं। भूमि का क्षारीकरण बढ़ता जा रहा है। इसके समस्याओं के निराकरण के उपाय खोजने होंगे।

2. उद्योगों को निरापद बनाने की आवश्यकता

औद्योगीकरण से भी पर्यावरण प्रभावित हुआ है। बड़े-बड़े कल कारखानों से विस्तृत अवशेषों का शुद्धिकरण की आज सर्वाधिक आवश्यकता है। इन्हें अघोषित रूप से नदी एवं तालाबों में मल-मूत्र एवं घातक रसायनों को डालने से हानिकारक तत्व सीसा, पारा, कैम्वीयम आदि विनाशकारी तत्वों के कुप्रभाव के कारण मानव स्वास्थ्य खतरे में है।

3. बढ़ती आबादी एवं आधुनिक सभ्यता का दबाव

नगरों एवं शहरों में दबाव तथा आधुनिक मलमूत्र व्यवस्था (सीवर प्रणाली का अभिशाप) जीवदायनी पवित्र गंगा, जमुना, भागीरथी, भिलंगना आदि नदियों को झेलना पड़ रहा है। घरों एवं छोटे उद्योगों से कतिपय संक्रमण वाली बिमारियाँ दिनों दिन बढ़ती जा रही है। इन विषय परिस्थितियों के समाधान के उपाय तलाशने होंगे। वर्तमान में अबाधगति से बढ़ते मल व गाद के निक्षेपण के कारण कुछ ही वर्षों में कीचड़ के रूप में परिवर्तन हो जायेगा। इस समस्या के समाधान हेतु अभी से दूरगामी योजनायें बनाने की आवश्यकता है।

4. यातायात के साधनों द्वारा विषैली गैस

भू-गर्भ से निकले ईंधन का यातायात के प्रचुर उपयोग होने से वायुमण्डल में कार्बनडाई आक्साईड, कार्बन-मोनो आक्साईड, सल्फरडाई आक्साईड आदि घातक गैसों के दुष्प्रभाव से मानव स्वास्थ्य खतरे में है। विषाक्त हवा एवं ट्रेफिक के अनियन्त्रित विषैले गैस से खाँसी, श्वास (दमा) फेफड़ों की बिमारी के शिकार जनसमुदाय हो रहा है। तीव्रतर यातायात के शोर से ध्वनि प्रदूषण के कारण मनुष्य की श्रवण शक्ति का ह्रास होता जा रहा है। अतः इन पर भी नियन्त्रण करना नितान्त आवश्यक है।

5. कीटनाशकों के उपयोग पर पुनर्विचार

फसलों व पौधों पर लगने वाले रोगों का नाश करने हेतु कीटनाशक दवाओं का तीव्रता से प्रयोग बढ़ता जा रहा है। तेज कीटनाशक दवाओं का खाद्य पदार्थों में उपयोग मानव के लिये बहुत हानिकारक है। इसके समाधान हेतु जैविक कृषि तकनीक विकसित के साथ-साथ जैविक कृमिनाशक दवाओं का उपयोग करना अनिवार्य है। प्राकृतिक सन्तुलन की दशा में रोगों पर स्वतः नियन्त्रण हो सकेगा।

6. ऊर्जा के वैकल्पिक साधन

कोयला आदि खानों का खनन परमाणविक विखण्डन से प्राप्त ऊर्जा किसी न किसी रूप से वायुमण्डल को प्रदूषित करते हैं। एक टन कोयले के उपयोग हेतु 11.60 घनमीटर हवा चाहिये। इसलिये सुपरता विद्युत योजनाओं के स्थान पर पन-बिजली योजनायें तथा सौर उर्जा को बढ़ावा देना चाहिये। जो सर्वथा निरापद और प्रदूषण रहित है। गोबर अथवा वायोगैस का देशव्यापी जाल विकसित करने से उर्जा हर गांव में सुलभ करानें में महत्वपूर्ण भूमिका होगी।

7. बुनियादी शिक्षा-एक नई चेतना

आज सर्वोपरि आवश्यकता है कि पर्यावरण का बुनियादी ज्ञान माध्यमिक कक्षाओं से अनिवार्य रूप से दिया जाय। विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं इंजीनियरिंग कालेजों में प्रदेश की जलवायु एवं भूगोल के आधार पर इसके भारतीय संस्कृति में पर्यावरण विषय सामग्री के अध्ययन की व्यवस्था पर जोर दिया जाय। यह भी आवश्यक है कि अभियान्त्रिकी की हर शाखा में पर्यावरण का विस्तृत

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विषय अनिवार्य रूप से शामिल किया जाय, तभी हमारी भविष्य की योजनायें अधिक सुसंगत एवं प्रभावकारी बन सकेंगी।

अतः उपरोक्त बिन्दुओं पर गहन विश्लेषण करते हुये वनीकरण (वानकी) रोजगार में वन विभाग एवं पंचायतों की सहभागिता के समन्वय एवं कार्य योजना के माध्यम से उत्तराखण्ड के प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, सम्वर्धन एवं रोजगार के मार्ग प्रशस्त हो सकते हैं। संक्षिप्त रूप में जलवायु एवं भूमि के उपादेयता में वानकी (वनीकरण) एवं जलवायु के अनुसार वृक्षारोपण हेतु उपयोगी पादपों की जानकारी देने का प्रयास किया गया है।

8. वननीति में विवेक पूर्ण नियमन की आवश्यकता

(अ) आजादी के बाद देश की नयी परिस्थितियों को देखते हुये पुनः वन अधिनियम में परिवर्तन की जरूरत महसूस की गयी। अब वनों के आर्थिक महत्त्व को स्वीकार करने साथ ही जल स्रोतों एवं पर्यावरण सन्तुलन को बनाये रखने का विचार भी सामने आया है। स्वतन्त्र भारत के आर्थिक विकास के क्षेत्र में वन संसाधनों के व्यापक महत्त को स्वीकारा गया। अतः सन् 1952 में स्वतन्त्र भारत की वन नीति निश्चित की गयी वन अधिनियम 1978 की भांति इसके अन्तर्गत भी वनों का विभाजन किया गया तथा शहरी भूमि के प्रसार द्वारा वनों के विनष्ट होने की गति को कम करने, वनवासी जनता में इधर-उधर खेती करने की प्रवृति (झूम) को रोकने की व्यवस्था की गयी तथा सन् 1894 में ब्रिटिश शासन ने सुरक्षित भूमि की सीमा निश्चित करते हुए वनवासी जनों की रोजमर्रा की जरूरतों को पूरा करने के लिए निर्णय लिया गया। इस प्रकार वन अधिनियम ने व्यापक जनता के हित के नाम पर वनवासी जनता के बचे-खुचे अधिकार भी छीने और वन अधिकारियों को और अधिक अधिकार देकर अपने दायित्व की इतिश्री कर ली। इस प्रकार सामान्य जनता के पास गाँव की वन भूमि से चारा, ईंधन, वनोपज एकत्रित करने के नाममात्र के अधिकार छोड़कर (जो कि प्रत्येक राज्य में अलग-अलग है।) वन विभाग वन संरक्षण में जुट गया।

(ब) एक लम्बे समय के बाद सरकार ने 1952 की राष्ट्रीय वन नीति के स्थान पर 1980 में एक नया वन अधिनियम प्रस्तावित किया, व्यापक जन-विरोध के कारण यह अधिनियम 1981-82 में पारित नहीं किया गया।

इस वनवासी जनता के लम्बे समय से चले आ रहे, ईंधन-चारा इकठ्ठा करने के अधिकार को कुचल कर कोई वन नीति सफल नहीं हो पायेगी। जब तक वन, वनवासियों, वन विभाग के मध्य मधुर सम्बन्ध स्थापित करने वाली वन नीति नहीं आयेगी, तब तक वनों के संवर्धन एवं संरक्षण की कल्पना व्यर्थ है। 'वन' सम्बन्धी चर्चा में आज तक नीति विषयक चर्चाएं हुई हैं वे एकपक्षीय तो हैं ही, कहीं-कहीं वे जन विरोधी भी हुई होती हैं। 'वन' क्योंकि सामाजिक सम्पदा हैं, क्षेत्रीय प्राथमिकताओं को उनसे मिला कर देखना उचित नहीं होगा। ऐसी आशा की जानी चाहिए कि नयी सरकारी नीति में, जिसकी घोषणा राज्य सरकार या केन्द्र सरकार करने वाली हो, शीघ्र होने वाली है, ये तमाम पहलू विवेक सम्मत रूप में निर्णय करने की दिशा में नियमावली जनहित में प्रस्तुत कर सकेगी।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उत्तराखण्ड में औषधीय पादपों का वनीकरण एवं वृक्षारोपण

औषधीय-वानिकी का महत्व एवं विस्तार

वानिकी विज्ञान की ऐसी शाखा है जिसमें वनों का उत्पादन, इनका संरक्षण तथा वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्तों एवं व्यवहारिक ज्ञान तथा उसके संसाधनों के उपयोग का विवेचन किया जाता है। इसमें वनों का उत्पादन करके अंतिम पातन तक देखभाल करना, प्रतिकूल परिस्थितियों में उनको बचाना, वन वर्द्धन पद्धतियाँ, वन प्रबन्ध, वन मापिकी, अर्थशास्त्र मूल्यांकन तथा उनका उपयोग आदि सम्मिलित है। वन वर्द्धन, वन विज्ञान की वह शाखा है जो वन पैदा करके अन्तिम पातन तक उसकी देखभाल से सम्बंध रखती है। वन अधिकारियों एवं कर्मचारियों के लिए वन वर्द्धन का ज्ञान होना बहुत ही आवश्यक होता है क्योंकि किसी देश या राज्य में प्राकृतिक वनों का पुनरूत्पादन करने तथा उनका परिपालन करने अथवा वहाँ पर पायी जाने वाली औषधीय वृक्ष प्रजातियों के वन लगाने का दायित्व उसके कर्तव्यों का एक महत्वपूर्ण अंग होता है।

देश की जनसंख्या में वृद्धि तथा वनों का तेजी से घटता हुआ क्षेत्रफल उसके महत्व को और भी अधिक बढ़ाता है। इनसे प्राप्त होने वाली वन उपजों, उनको प्राप्त करने के तरीके, विभिन्न वन उपजों के उपयोग तथा उन पर निर्भर उद्योग आदि वन उपयोग की परिधि में आते हैं। वन वित्त, वन-अर्थशास्त्र तथा मूल्यांकन आदि भी इसके पहलू हैं लेकिन इनका सामान्य कर्मचारी के लिए अधिक आवश्यक नहीं है। इनको छोड़कर वन विज्ञान में, निम्नलिखित केवल तीन शाखायें शेष बचती हैं :

1. वन वर्द्धन पद्धतियों (Silvicultural Systems)
2. वन मापिकी (Forest Mansuration)
3. वन प्रबन्ध (Forest Management)

इन तीनों शाखाओं का भी कार्य क्षेत्र काफी विकसित है तथा इसका विस्तृत ज्ञान वन कर्मचारियों के लिए बहुत ही आवश्यक है।

वानिकी का महत्व (Importance of Forestry)

वनों का प्रत्यारोपण रक्षणात्मक उद्धेश्य, उत्पादक तथा सामाजिक उद्धेश्यों के लिये महत्वपूर्ण समझा जाता है। स्व. प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी (Jan. 13, 1983) के शब्दों में :

"The protection and development of forests are necessary for the survival of human civilization. This does not mean over looking the productivity role of forests in economic development. Development without destruction and protection with production should be our objectives. Efficient harvesting and utilisation of wood as a forest produce of prime importance."

रक्षणात्मक उद्देश्य का मुख्य आशय मुख्यतः प्राकृतिक दशाओं से रक्षण के लिये होता है। ऐसे स्थान जहाँ पर भूमि आवरण में थोड़ी भी कमी से मृदा एवं जल संरक्षण पर अत्यधिक दुष्प्रभाव पड़ने की संभावना जो वहाँ पर वनों अर्थात वृक्ष तथा अन्य वनस्पति को प्राकृतिक दशाओं से रक्षण के लिए सुरक्षित हो जाता है। इस प्रकार के वनों से कोई

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भी उपज प्राप्त नहीं की जाती है तथा उनको रक्षण वन (Production forestry) कहा जाता है। इस प्रकार के वन काष्ठीय एवं औषधीय वनस्पतियों से पूर्णतः अथवा भागतः आच्छादित होते हैं, जिनका उद्देश्य मुख्यतः सरिता प्रवाह के विनियमित (Regulate) करने मृदा क्षरण रोकने, स्थानान्तरी बालू को बाँधने जड़ी-बूटी उत्पादन या अन्य किसी लाभकारी प्रभाव के पाने के लिए होता है।

जलवायु एवं भूमि के उपादेयता में वानिकी (Arboriculture in relation to climate & soil)

भूमि खनिज तत्वों एवं पानी का भंडार कही जाती है जहाँ से पौधे इनका उपयोग करते हैं। भूमि में पौधों की जड़े फैली रहती है जहाँ से खनिज तत्वों व पानी का शोषण करती है। इस प्रकार से मिट्टी के भौतिक एवं रासायनिक संगठन का पौधों के लिये अधिक महत्व समझा जाता है। मिट्टी के भौतिक एवं रासायनिक संगठन को, भूपरिष्करण क्रियाओं, जल निकास व जीवांश पदार्थों को मिला कर बदला जा सकता है।

वनों का रोपण लगभग सभी प्रकार की भूमियों से सम्भव हो सकता है। ऐसे बिन्दु जहाँ पर जल कटाव अधिक होता है बहुत सी घासें जैसे दूब *(Cynodon dactylon)* कैन्टकी ब्लू *(Poa Pratensisa)* इत्यादि तथा पौधे जैसे बबूल *(Acacia arabica)* खैर *(Acacia catechu)* आदि का रोपण किया जा सकता है। सामान्य रूप से अच्छी जीवांश पूर्ण मिट्टी में वृक्षावलियाँ ठीक प्रकार से पनपती हैं।

भूमि

हमारे देश में विभिन्न प्रकार की मिट्टियाँ पाई जाती हैं, जिनके अनुसार ही वृक्षों का चुनाव लगाने के लिये किया जाता है। मिट्टियाँ की किस्में निम्न प्रकार है :

चिकनी मिट्टी (Clay Soil)

ये बहुत ही बारीक कणों से संगठित होती हैं जिसको भारी मिट्टी भी कहते हैं। सूखने के पश्चात् इसमें कार्य करना कठिन होता है। इसमें पानी का निकास उपयुक्त नहीं पाया जाता है, जिससे जलानुवेदित दशा उत्पन्न हो सकती है। इसमें बालू व जीवांश पदार्थ मिला कर व अधिक भूपरिष्करण क्रियायें करके पौधे उगने के उपयुक्त बनाया जा सकता है। इस मिट्टी में बहुत से पौधे जैसे *Eucalyptus robusra, Casuarina equisetfolia, Salix alba, Bischofia javonica,* महुआ *(Bassia latifolia)* इत्यादि उत्पन्न किये जा सकते हैं।

रेतीली मिट्टी (Sandy Soil)

चिकनी मिट्टी की तुलना में इसके कण अधिक बड़े आकार के होते हैं। पानी इससे शीघ्र निकल जाता है, क्योंकि इसका संगठन पर्याप्त ढ़ीला (Loose) होता है। इसमें जीवाश्म पदार्थों की कमी देखी जाती है। इस प्रकार की मिट्टी पौधे उत्पन्न करने के लिये उपयुक्त नहीं समझी जाती परन्तु फिर भी इसमें बहुत से पौधे जैसे- *Casuarina equisetfolia, Casuarina muricata, Prosopis juliflora, Albizzia lebbeck, Acacia arabica, Dalbergia sissoo, Ipomea carnia, Salix tetrasperma, Arundo domax* इत्यादि पौधे सफलतापूर्वक उत्पन्न किये जा सकते हैं।

दोमट मिट्टी (Loam Soil)

दोमट मिट्टी में चिकनी व रेतीली मिट्टी अच्छे अनुपात में मिश्रित होती है। इसमें खनिजांश व जीवांश अच्छी मात्रा में पाये जाते हैं। पानी का निकास भी उचित होता है। यह मिट्टी पौधों के लिये सभी प्रकार से उपर्युक्त समझी जाती है। इस प्रकार की मिट्टी में सभी प्रकार के पौधे सफलता पूर्वक उत्पन्न किये जा सकते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ग्रेवली मिट्टी (Gravally Soil)

इस प्रकार की मिट्टी में रेत की अपेक्षाकृत चट्टानों की अधिक मात्रा होती है। इसको चूना, खाद, पानी द्वारा अधिक उपयुक्त बनाया जा सकता है। इस प्रकार की मिट्टी में *Cedrus deodara, pines* इत्यादि पौधे उत्पन्न किये जा सकते हैं।

एल्यूविअल मिट्टी (Alluvial Soil)

यह नदियों के किनारे व समुद्र के डेल्टाओं में पाई जाती है। यह रेत, मिट्टी तथा छोटी-छोटी चट्टानों के टुकड़ों से मिश्रित होती है। यह जीवांश पदार्थ से परिपूर्ण होती है। इसमें पौधों को सुगमता पूर्वक उत्पन्न किया जा सकता है। इस प्रकार की मिट्टी में बहुत से पौधे जैसे- *Casuarina equisetifolia, Anacardium oxidentable, Callophyllum inophyllum* तथा *Acacia equisetifolia* इत्यादि उत्पन्न किये जा सकते हैं।

मक एवं पीट मिट्टी (Muck or Pent Soil)

यह भूमि जीवांश पदार्थ से अधिक युक्त होती है। इसमें अधिकतर पौधों एवं उसके भागों तथा अवशेषों के सड़ने आदि से ही जीवांश पदार्थ की वृद्धि होती है। इस मिट्टी की जल धारण क्षमता अधिक होती है। इसमें लगभग सभी प्रकार के पौधों को उत्पन्न किया जा सकता है।

ऊसर एवं क्षारीय मिट्टी (Saline And Alkaline Soil)

इस मिट्टी में क्षारीय लवण अधिक मात्रा में पाये जाते हैं मिट्टी में कुछ गहराई तक कंकड़ों की कड़ी परत पाई जाती है। इसमें कुछ चुने हुये पौधों को ही पैदा किया जा सकता है जैसे कि- *Prosopis juliflora, Acacia arabica, Tamarix pubiscenes, saueda traticusa, Salsola foetida, Butea frondosa, Tamarix articulata Prosopis juliflora, Casuarina equisetiflolia* इत्यादि।

जलवायु (Climate)

किसी स्थान की जलवायु वहाँ की वर्ष भर की वर्षा, रोशनी, आर्द्रता, तापक्रम तथा हवा के दबाव के औसत को कहा जाता है। यह बिल्कुल निश्चित है कि इन सभी कारकों का प्रभाव विभिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न होता है।

पौधों के उत्पादन में जलवायु का विशेष महत्व समझा जाता है। इसमें सबसे प्रमुख कारक तापक्रम होता है। तापक्रम के आधार पर समस्त वन उत्पादक क्षेत्र को निम्न तीन भागों में बांटा जा सकता है :

1. मैदानी क्षेत्र (Tropical Zone)

इस क्षेत्र में अत्यधिक गर्मी के साथ आर्द्र जलवायु पाई जाती हैं इस क्षेत्र में इस प्रकार के पौधें को उत्पन्न किया जा सकता हैं कि- *Acacia senegal, A. modesta, Prosopis juliflora, P. spicigera zyzyphus jujuba, Leptotene spertium, Dedonea viscosa, Calotropis procera, Balanites aegyptiaca, Allanthus excelssa, Dalbergia sissoo, Pongamia pinnata Azadiracbta indica, Bauhinia, variegata,* इत्यादि।

2. तराई क्षेत्र (Sub-tropical Zone)

इस क्षेत्र में गर्मी कम होती है। यहाँ पर- *Acacia modesta, cassia fistula, Albizzia lebbeck, ingadulcis sp. Dalbergia sissoo, Azadirachta indica* इत्यादि पौधे पैदा किये जा सकते हैं।

3. पहाड़ी क्षेत्र (Temperate Zone)

इन क्षेत्रों में ठंडक अधिक पड़ती है अतः निम्न जलवायु चाहने वाले पौधों को यहाँ पर पैदा किया जा सकता है जैसे कि- *Pinus longifolia, P. excelsa, P. helipensis, P. pondorosa, Cupressus orizonica, Robinea sp. cedrus deodora* इत्यादि।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तापक्रम के अतिरिक्त जलवायु के अन्य कारकों का प्रभाव पौधों के उत्पन्न करने पर पड़ता है ऐसी परिस्थिति में जहाँ वर्षा अधिक होती है तथा जलानुवेदित दशा पैदा हो जाती है, बहुत से पौधे जैसे *Eucalyptus robusta, E. rudis, Casuasina equisetifolia, Bischofia javonica jambolava, Arundoddonax, Butea frondosa, Tamarix articulata, Pterospermum acerifolium, spium sebiforum* इत्यादि पौधे सफलतापूर्वक पैदा किये जा सकते हैं।

वनीकरण में उपयोगी औषधीय पादप (वृक्षारोपण:)

1. अर्जुन - *Terminalia arjuna Wedd.*

तराई भावर व गंगा के मैदानी भागों में बीज द्वारा लगाया जा सकता है। रोपण के लिए उपयुक्त समय वर्षा के उपरान्त होता है।

2. अशोक - *Saraca indica Linn.*

इसका रोपण गर्म इलाकों में बीजों द्वारा पौधे बना कर अगस्त माह में किया जाता है।

3. अग्निमन्थ/अरणी - *Clirodinadron phlomidis Linn.*

इसका रोपण गर्म प्रदेश में बीज द्वारा व कटिंग द्वारा किया जाता है।

4. आरग्वध/अमलतास - *Cassia fistula Linn.*

तराई भावर क्षेत्र में बीज द्वारा उगाया जा सकता है। पर्वतीय घाटियों में भी सफलता पूर्वक उगता है।

5. आमलकी/आंवला - *Emblica officinalis Gaertn.*

तराई भाबर क्षेत्र में बीज द्वारा उगाया जा सकता हैं।

6. कायफल/काफल - *Myrica nagi Thumb.*

पर्वतीय क्षेत्र में 5-7000 फीट तक बीज द्वारा उगाया जा सकता है। वर्षा ऋतु में नर्सरी बना कर दो वर्षों उपरान्त पौधों का रोपण किया जा सकता है।

7. कुटज/इन्द्रयव - *Holarrhena antidysenerica Wall.*

मैदानी भागों से लेकर 3500 फीट तक हिमालय की तराई में बीजों द्वारा उगाया जा सकता है। बीजों द्वारा नर्सरी वर्षा ऋतु में तैयार कर डेढ़ वर्ष उपरांत पौधों का रोपण कर सकते है।

8. कदम्ब - *Anthocephalus cadamb Mig.*

तराई व हिमालय के मैदानी भागों में बीज द्वारा लगाया जा सकता है।

9. कपित्थ/कैंथ - *Feronia elephenta Corr.*

गंगा के मैदानी क्षेत्रों में बीज द्वारा लगाया जा सकता है।

10. कचनार - *Bauhinia variegata Linn.*

बीजों द्वारा इसकी नर्सरी में पौध बना कर हिमालय व तलहटी भागों में लगाया जा सकता है व सफलता पूर्वक होते देखा गया है।

11. गम्भारी - *Gmelina arborea Roxb.*

तराई भावर व तलहटी भागों में बीजों द्वारा पौध बना कर रोपण किया जाता है। बीजों के उगने के लिये गर्म व नम जलवरायु की बहुत आवश्यकता होती है। पौध 5 इन्च की ऊंचाई तक पहुंचने पर ही इसका रोपण करना चाहिये।

12. गुग्गुल - *Commiphera mukul (Hook ex Stocks).*

इसको पहाड़ों की सूखी ढ़लानों जहां स्नूही *(Eiphordia Sp.)* की झाड़ियां व अन्य पौधे जैसे कूरी *(Lantana canara) Phoenix sp. Rhus sp.* इत्यादि उगते हैं में सफलता पूर्वक उगने की सम्भावनायें हैं। लेखक द्वारा जहां एक ओर राजस्थान, गुजरात में इसको उगते हुये देखा गया वहीं आसाम में भी अच्छी प्रकार उगता पाया गया। इस पौधे की

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रकृति इस प्रकार की है कि पहाड़ों में पड़ने वाला पाला इसको हानि नहीं पहुंचा सकता। शुष्क ढलानों पर यह साथ ही मिट्टी के कटाव को भी रोकेगा। इसकी कटिंग लगा कर सफलता पूर्वक उगा सकते हैं। उत्तराखण्ड के शुष्क पहाड़ियों पर प्रयोग किया जा सकता है।

13. तालीश - *Abies webbiana Linn.*

1000 फीट से ऊपर उगाया सकता है। बीज शिशिर ऋतु में बोये जा सकते हैं।

14. तालीश (स्थोणैयक) - *Taxus-baccata Linn.*

बीज द्वारा हिमालय क्षेत्र में 6000-10000 फीट तक कमजोर रेतीली भूमि में उगाया जा सकता है। हिमालय की ऊसरी क्षेत्र में (Alpine zone) प्राय: बर्फ गल जाने पर मई-जून में नर्सरी बनायी जा सकती है तथा जुलाई-अगस्त में अगले वर्ष रोपण किया जाना चाहिये।

15. तेजपात - *Cinnamomum tamala Nees.*

बीज हिमालय की तलहटी में बीज द्वारा पौध तैयार कर रोपण किया जाना चाहिए।

16. देवदारू - Cadrus deodora Loud.

बीज द्वारा 5-10000 फीट तक उगाया जा सकता है। वर्षा ऋतु में नर्सरी तैयार कर दो वर्षों परांत पौधों का रोपण किया जा सकता है।

17. दाड़िम/अनारदाना - *Punica granatum Linn.*

तने की कटिंग व बीज द्वारा पर्वतीय क्षेत्रों में उगाया जा सकता है।

18. धूना - *Canarium bengalense Roxb.*

यह एक विशाल वृक्ष है। यह नम स्थानों में विशेष कर उत्तर पूर्व की छोटी पहाड़ियों, छोटे सरोवरों इत्यादि के किनारे पाया जाता है। इसे बीजों द्वारा उगाया जा सकता हैं। यह वृक्ष 20-25 साल में ही समुचित ऊंचाई-मोटाई में प्राप्त होता है। इसके तने के घाव से निकाला जाने वाला रेजिन अति उत्तम धूप बनाने में प्रयोग होता है।

19. निम्ब/नीम - *Azedirachta indica A. Juss.*

बीज द्वारा तराई भावर क्षेत्र में उगाया जा सकता है। यह सभी मृदाओं में अच्छी तरह लग सकता है।

20. पलाश - *Butea monesperma (Lamk) Robert.*

तराई भावर क्षेत्र में बीज द्वारा लगाया जा सकता है। वर्षा ऋतु में आरम्भ में बीज द्वारा रोपण उपयुक्त है।

21. पाढल/पाटला - *Stereospermum suaveolens DC.*

हिमालय के तराई क्षेत्रों में वर्षा ऋतु में बीज द्वारा उगाया जा सकता है अप्रैल-मई इसके लिए उपयुक्त समय है।

22. पद्मक/पंथा - *Prunus cerasoides D. Don.*

पहाड़ी इलाकों में वनीकरण के लिए बीजों, कटिंग व रूट स्टोक से किया जा सकता है।

23. विल्व - *Aegele marmelos Corr.*

बीज एवं तने की कटिंग द्वारा उगाया जा सकता है। बीज मार्च-अप्रैल में 30 सेमी. की दूरी में 7 कि.मी./ हैक्टेयर की दर से लगाये जाते हैं।

24. भुर्जपत्र - *Betula utilis Don.*

हिमालय क्षेत्र में 10-14000 फीट तक बीज द्वारा पाया जा सकता है अर्धनिर्मित रेतीले भूमि में सफलता पूर्वक उगता है।

25. मधूक/महुआ - *Madhuca indica Linn.*

तराई भावर व गंगा के मैदानी भागों में बीजों द्वारा उगाया जा सकता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

26. मधूकपुष्पी/च्यूंरा *Aesandra butyracea (Roxb.) Bachni.*

इसे 4-8000 फीट ऊंचाई वाले अच्छी ह्यूमस युक्त भूमि में बीज द्वारा पौध तैयार कर उगाया जा सकता है। उत्तराखण्ड का बहुआयामी वृक्ष है।

27. रूद्राक्ष- *Elacocarpus ganitrus Roxb.*

तराई भावर क्षेत्र में बीज द्वारा उगाया जा सकता है गूटी लगाने का प्रयोग भी सफल होता देखा गया है।

28. रोहिणी - *Soymida febrifuga Andr. Juss.*

गंगा के मैदानी क्षेत्रों में बीज द्वारा लगाया जाता है।

29. वरूण - *Crataeva religiosa Forsk.*

तराई व भावर क्षेत्र में बीज द्वार लगाया जा सकता है।

30. विड्.ग - *Embelia ribes Burm.*

हिमालय के तराई क्षेत्र में 3000-5000 फीट तक बीज द्वारा लगाया जा सकता है।

31. विषमुष्ठी/कुचला - *Strychnos nux-vomica Liun.*

गंगा के मैदानी क्षेत्रों में बीजों द्वारा उगाया जा सकता है।

32. विभीतक/वहेड़ा - *Terminalia belarica Roxb.*

हिमालय की तलहटी व तराई भावर क्षेत्र में लगाया जा सकता है। इसके बीज मार्च-मई में नर्सरी से लगाये जाते हैं और रोपण जुलाई में किया जाता है।

33. शेफालिका/हारसिंगार - *Nyctanthes arbortristis Linn.*

पर्वतीय क्षेत्र में लगे मैदानी भागों में बीजों तथा कटिंग का रोपण वर्षा ऋतु में किया जा सकता है।

34. शिग्रु/संहिजन - *Moringa pterygosperma Gaertn.*

हिमालय की तराई में बीज द्वारा लगाया जा सकता है।

35. श्योनाक/सोनापाठा - Oroxylum Indicum Vem.

हिमालय की तराई में बीज द्वारा लगाया जा सकता है।

36. सप्तपर्ण/छितवन - *Alstonia scholaris R.Br.*

हिमालय की तराई में बीज द्वारा लगाया जा सकता है।

37. अंकोल - *Alangium lamarki Thw.*

गंगा के मैदानी क्षेत्रों, तराई भाभर क्षेत्रों में बीजों द्वारा लगाया जा सकता है।

38. हपुषा/ठेलु - *Juniperus communis Liun.*

बीज द्वारा हिमालय क्षेत्र में 10-13000 फीट तक रेतीली व पथरीली भूमि में उगाया जा सकता है बीज को मई-जून में बो कर अगस्त में रोपण कर सकते हैं। नर्सरी तैयार होने में दो-एक साल लग सकते हैं। 3000 फीट हिमालय की तलहटी एवं तराई भावर क्षेत्र में उगाया जा सकता है। नरसरी में बीज द्वारा पौधा तैयार कर अन्य जगह रोपण किया जाता है।

39. हरीतकी/हरड़ *(Terminalia chebula).*

मध्यम आकार के वृक्ष, हिमालय की तलहटी में 1500 मीटर की ऊँचाई तक इसके पदपों का रोपण किया जा सकता है। इसके बीज मार्च मई में नर्सरी में लगाये जाते हैं और रोपण जुलाई-अगस्त में किया जाता है।

उत्तराखण्ड सरकार ने आयुष प्रदेश, हर्बल प्रदेश का दर्जा नियमानुसार घोषित किया हैं। इसके बड़े पैमाने पर वनीकरण योजना के अर्न्तगत आश्रित 'वनन' वनों एवं ग्रामीण पंचायत भूभाग में उपरोक्त 39 पौधों (पादपों) का वृक्षारोपण किया जाय ताकि आयुर्वेद औषधि निर्माण में शास्त्रीय प्रयोज्यागों में सुलभ हो सके।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उत्तराखण्ड के वनों का वर्णन व वृक्षों का धार्मिक महत्व

उत्तराखण्ड का समस्त भू-भाग देवात्मा हिमालय की उपत्यका में स्थित है। उत्तराखण्ड का अधिकांश भाग पर्वतों की भूमि है। उत्तराखण्ड में नाना प्रकार के वन-उपवन हैं। पुराणों में ब्रह्मा को वृक्षोत्पत्ति का कारण बताया गया है, ब्रह्मा के रोमों से औषधियों तथा फल-मूलों की सृष्टि हुई है-

औषध्यः फलमूलानि रोमभ्यस्तस्य जज्ञिरे।

पौराणिक मान्यताओं के अनुसार वनस्पति का उद्भव जलज के रूप में हुआ, परन्तु आधुनिक वनस्पति शास्त्रियों के अनुसार पृथ्वी पर जीवन का विकास जल में हुआ। जो शैवालों के रूप में (पृ. 120 पर देखें) हुआ था। यह विकास कई हजार करोड़ वर्ष पुराना है। ऐसा उल्लेख मत्स्य पुराण में मिलता है।

वनस्पतिशास्त्रियों के अनुसार पृथ्वी पर जीवन का विकास जल में हुआ जो शैवालों के रूप में हुआ था। यह विकास पांच करोड़ वर्ष के प्रारम्भ मत्स्य काल में हुआ था। जीव विकास की परिकल्पना के अनुसार सर्वप्रथम एक कोशिकीय जीवों और पौधों की उत्पत्ति हुई जो बाद में बहुकोशिकीय शैवालों, पौधों में परिणित हुए परन्तु पुराण सर्वप्रथम पौधों के रूप में कमल को मानते है, जो नारायण के नाभि कमल से उत्पन्न हुआ था-

त्रैलोक्यसारे विमल नाभ्यां पंकजमुद्भौ।

मनु के काल तक वट, जम्बू, कदम्ब, पीपल के पौधों का विकास हो चुका था ये सभी वृक्ष हिमालय से सम्बन्धित बताये गये हैं-

कदम्वस्तेषु जम्बूश्च पिप्पलो वट एवं च।

उत्तराखण्ड के वन विविध जाति के पादपों, लताओं और वेणु समूहों से व्याप्त थे-

नाना दुर्भलता गुल्मैर्नानामृगगणावृतैः द्रुमजातिरन्येश्च राजित वेणुकीचकै।

बद्रीनाथ का नाम तो बदरी अर्थात् बेर वनों के नाम पर ही कहलाता है, यह वन वनों में श्रेष्ठ कहा गया है। यह हाऊवरे जूनिपर है-

अरध्यानां यथा प्रोक्त वदर्यारव्य जज्ञितम्।

इस क्षेत्र में नाना प्रकार के वन समुदाय थे-

नाना पुण्य वनैर्युतम्।

कूर्माचल में दारूकावन है-

हिमाद्रिकुक्षिसंलग्न सुदिव्यं दारूकाननम्।

हेमकूट पर्वत पर पारिजात के सुन्दर वन हैं-

पारिजातवनं शुभम।

नागगिरि उत्तराखण्ड के पश्चिम में गोपीवन था-

पश्चिमे तस्य वै विप्रः गोपीकाननसंज्ञकम्।

वैताली तीर्थ के समीप चम्पक वन है। इसी प्रकार हिमालय पर चैत्ररथ, नन्दन, वैभ्राण व सावित्र नामक वनों का वर्णन पुराणों में किया गया है। इन सभी वनों में अनेक वृक्षों जामुन, कदम्ब, बेल, केथ, पलाश, नारंगी, जूही, अगस्त्य, गुलाब, मन्दार, कचनार, माधवी, कटहल, गूलर, पीपल, बड़, गूगल, भोज वृक्ष, नीम, नागेश्वर, कनेल, यमलाजुर्न, चन्दन, शमी आदि का वर्णन प्राप्त होता है। इस क्षेत्र में विल्व वृक्ष भी बहुतायात में पाये जाते हैं, नीलकंठ क्षेत्र सहस्त्र करपरिमित विल्व वृक्ष था-

विल्व वृक्षोऽस्तिः सहस्त्रकरसम्मितः।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इस क्षेत्र में अनेक फलों के वृक्षों का वर्णन् पुराणों में प्राप्त होता है। विशालापुरी में बदरी (बेर) के वृक्ष उत्पन्न होते थे इसलिए विशाला पुरी का नाम बदरीनाथ पड़ा। अलकनन्दा के तट पर आम, जामुन व बड़ के फल भी होते थे। इनके अतिरिक्त अनेक फलदार वृक्षों का वर्णन पुराणों में प्राप्त होता है। यद्यपि पुराणों में कल्पनातीत वर्णन वर्णित है, क्योंकि पुराणों में वृक्षों को सामान्य आकार से अत्यधिक विस्तार वाला बताया गया है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं की सभी कुछ कल्पनातीत है, क्योंकि जिन वृक्षों का वर्णन प्राप्त होता है वे आज भी समस्त उत्तराखण्ड में पाये जाते हैं।

वृक्षों का धार्मिक महत्व

सम्पूर्ण उत्तराखण्ड को देवभूमि के नाम से पुकारा जाता है। यहां पर स्थान-स्थान पर तीर्थ तथा मन्दिर हैं, जिनमें भगवान की आराधना की जाती है। इसलिए इस क्षेत्र में आराधना के लिए आराध्य के रूप में वृक्षों को भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इस क्षेत्र में वृक्षों को देवत्व के रूप में पूजा जाता है। तुलसी को समस्त वृक्षों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। तुलसी के संदर्भ में विष्णु कहते हैं कि तुलसी पत्र का जल पापनाशक होता है। तुलसीपत्र श्राद्ध, व्रत, दान, देव प्रतिष्ठा व पूजन में उपयोगी है। तुलसी की माला धारण करने से अश्वमेघ यज्ञ का फल प्राप्त होता है। इसे सभी वनस्पतियों में सर्वश्रेष्ठ कहा गया है-

पवित्ररूपा सर्वासु तुलसी सा च कीर्तिता।

आज भी मुख्य विष्णु मन्दिरों में तुलसी पत्र से ही पूजन किया जाता है। बदरीनाथ में आज भी तुलसी पत्र का ही प्रसाद प्रदान किया जाता है। तुलसी ही नहीं अपितु शिवप्रिय रूदाक्ष का भी इस क्षेत्र में अत्यधिक महत्व है। इसकी उत्पत्ति ईश्वर के आंसुओं से मानी जाती है-

तत्राश्रुविन्दुतो जाता महारूद्राक्षवृक्षकाः।

ये मुख्यतः 38 प्रकार के होते हैं-

रूद्राक्षा अष्टत्रिशत्प्रभेदतः।

इसको धारण करने से पापी मुक्त हो जाते हैं। पुराणों में पूजन स्वीकृत तथा अस्वीकृत पुष्पों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि मालती, बाग, अशोक, जूही, पाटल, तिलक, पीतक, नागर, केतकी के फूल भगवत् अर्चना में त्याज्य है तथा विल्वपत्र, तुलसीपत्र, शमीपत्र, भंग, तमाल, आमलकी, जलकमल आदि पुष्पों से पूजा की जाती है। ऐसी मान्यता है कि कुब्जाम्रक (कुब्जकुजा) (ऋषिकेश) में भगवान विष्णु ने स्वयं कुब्जाम्र रूप धारण किया था-

आम्ररूपं समाधाय कुब्जरूपस्य माधवः।

वृक्षों के धार्मिक महत्व को देखते हुए पुराणों में वृक्षों को काटना धर्म विरुद्ध बताया गया है-

छेदनं वृक्ष जातीनां द्वितीयं नरकं स्मृतम्।

पुराणों में वृक्षारोपण करने को कहा गया है-

प्रतिष्ठां ते गामिष्यान्ति यैस्तु वृक्षाः प्ररोपिताः।

ऋषि-मुनि भी अपने गृह आंगन में वृक्षारोपण करते थे। पार्वती ने अपने आंगन में अशोक वृक्ष लगाया था जिसके पाद प्रदेश में वे श्रम परिहार करती थी। राजा भी पुष्प लता, फल देवदार के वृक्ष लगाते थे-

लता पल्लव से धन्ना देवदारूभिरावृताः।

पार्वती जन्म पर हिमालय ने कदली के वृक्ष लगाये थे। विवाह पर केले के वृक्ष लगाये गये थे। इस प्रकार से माना जा सकता है कि यहां पर वृक्षों का धार्मिक महत्व अत्यधिक था, इनका प्रयोग विवाह, जन्म आदि संस्कारों में किया जाता था। पुराणों से ही वृक्षारोपण की परम्परा का विकास हुआ, जो वर्तमान में अत्यावश्यक कार्य बन कर उभरा है। वृक्ष केवल भोजन, रहन-सहन तथा धार्मिक महत्व के लिए ही उपयोगी नहीं थे अपितु यह प्राकृतिक सौन्दर्य में भी वृद्धि करते हैं। वामन पुराण में कहा गया है कि केदारखण्डीय हिमालय के पुष्पित अमलतास के वन स्वर्णा भरणधारी राजपूतों की तरह शोभायमान हो रहे

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

थे, उनके पीछे कदम्ब वृक्ष सेवक की तरह तथा प्रफूलित रक्ताशोक रणभूमि में रक्तंरजित सिपाही के समान लग रहे थे। बदरिकाश्रम के सन्दर्भ में कहा गया है कि बसन्त में यहां का सौन्दर्य अत्यन्त चित्ताकर्षक लगता है। बदरिकाश्रम में बसन्त रूप, पलाश के रक्त पुष्परूपी नखों से शिशिररूपी हाथी को विदीर्ण सा कर रहा है–

शिशिर नाममातंगम् बिदार्थ नखैरे रिव, बसन्त केसरी प्राप्तः पलाश कुसुमैमुर्नें।

ज्योतिष शास्त्र में नक्षत्र वाटिका एवं 27 नक्षत्रों के देवतुल्य पादपों का ग्रह शान्ति आरोग्य, सौभाग्य प्राप्ति के लिये पूजा की जाती हैं।

केदारखण्ड में केदार हिमगिरी के पाण्डुकेश्वर (बद्रीनाथ मार्ग पर) के समीप पुराण प्रसिद्ध सौगन्धित वन था, जो हमेशा विभिन्न प्रकार के पुष्पों, सतपत्रों एवं कल्पतरूओं से व्याप्त रहता है। देवता प्रायः कुबेर की अलकापुरी छोड़ वहां जाते थे–

हित्व यक्षेश्वरपुरी बनं सौगन्धिक च तत्र्, द्रुमैः
काम दुधैहिधं चित्र माल्यफलच्छदैः।
वन सौगन्धित चापि ददृशुस्तत्समीपतः।

यह वन आजकल फूलों की घाटी नाम से विश्व विख्यात है। इसको सर्वप्रथम 1931 में फ्रेन्क स्मिथ ने खोजा था। फूलों की घाटी ही नहीं अनेक स्थल सम्पूर्ण उत्तराखण्ड के प्राकृतिक सौन्दर्य को बढ़ा रहे हैं। जो अनेक पर्यटकों को आकर्षित करता रहता है। हरिद्वार तथा उधमसिंह नगर जो मैदानी जनपद हैं, को छोड़ कर समस्त उत्तराखण्ड वृक्षलताओं के झुरमुट में बसा हुआ है।

वृक्ष की महिमा

प्रवीन कुमार सिंह बिष्ट

जन जागृति से उद्धत साभार जनहित में अंकित

जमीं के इलाके, बीरान होते,
अगर ये न होते, अगर ये न होते।
इन्हीं से है रौनक, इन्हीं से हरियाली,
इन्हीं से है जीवन, इन्हीं से खुशहाली।
खेती के बदले, रेगीस्थान होते,
अगर ये न होते, अगर ये न होते।
इन्हीं से है बरखा, इन्हीं से है पानी,
इन्हीं से है जीवित, दुनियां में प्राणी।
दुनियां के प्राणी, निष्प्राण होते,
अगर ये न होते, अगर ये न होते।
इन्हीं से है कविता, इन्हीं से संगीत,
शेरों की गर्जना, कोयल के गीत।
दुनियां हमारी, सुनसान होती,
अगर ये न होते, अगर ये न होते।
जमीं के इलाके, बीरान होते,
अगर ये न होते, अगर ये न होते।

भावार्थ :

इस कविता में वृक्ष की महत्ता को दर्शाया गया है। संक्षिप्त में वृक्ष का महत्व इतना है कि अगर ये न होते तो इस दुनिया में जीव का अस्तित्व ही न होता क्योंकि सम्पूर्ण प्राणी जगत प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से वृक्षों पर निर्भर है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अपुष्पीय पौधे शैवाल, कवक, (फफूंद) फर्न उपयोग

1. प्राकृत

वास के आधार पर शैवाल समुदाय को नीचे लिखे 8 वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

1. मीठे जल में पाये जाने वाले शैवाल।
2. स्थलीय शैवाल।
3. फसल के खेतों में पाये जाने वाले शैवाल।
4. समुद्र शैवाल।
5. प्रदूषित स्थलों में पाये जाने वाले शैवाल।
6. अधिक ऊंचाई पर पाये जाने वाले शैवाल।
7. ऊसर भूमि में पाये जाने वाले शैवाल।
8. उष्ण भाग में पाये वाले शैवाल।

2. बी. जी. ए. खाद

नीले-हरे शैवाल को अधिक मात्रा में उगा कर सुखा लेते है और उसे पीस कर पाउडर के रूप में रख लिया जाता है जिसका प्रयोग 'जैविक खाद' के रूप किया जाता है। आजकल यह पाउडर पैकेट बन्द रूप में बाजरों में उपलब्ध है। ऊसर भूमि को उपजाऊ भूमि में परिवर्वित करने के लिए भी जल भराव करके उसमें नीले-हरे शैवाल को उगाया जाता है।

3. अगर-अगर

इस पदार्थ का प्रयोग शैवाल, कवक, वैक्टीरिया तथा जीवित ऊतकों के संम्बर्धन में किया जाता है। भारत में जिन वंशो से अगर-अगर प्राप्त किया जाता है। उनके नाम इस प्रकार है- जेलीडीउम, ग्रासीलारिया, कोन्ड्रस इत्यादि।

4. पालतू पशुओं के लिए भोजन

बड़े-बड़े समुद्री भूरे-शैवाल समुद्र से एकत्र करने के पशचात् सीधे ही पालतू पशुओं को चारे के रूप में दिये जाते है यह सिद्ध हो चुका है कि जो गायें इन्हें खाती है। अधिक अच्छा दूध देती है जिसमें मक्खन एवं चर्बी की मात्रा अधिक होती है। ऐसे शैवाल है लामीनारिआ, फुकुस, सरगास्सुम इत्यादि।

5. मनुष्य जाति के लिए खाद्य शैवाल

शैवाल की 70 से अधिक जातियाँ ऐसी है। जिनका मनुष्य खाद्य के रूप में प्रयोग करता है। तटवर्ती देशों में इसके अधिक प्रचलन है। चीन, जापान एवं फिलीपाइन्स देशों में पोरफिरा टेनेरा (लाल शैवाल) जिसे अमानोरी कहते है 'तथा इससे बने पदार्थ को असाकुस नोरी' कहते है, प्रचुर मात्रा में खाद्य के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसमें लगभग 30-35 प्रतिशत प्रोटीन, 40-45 प्रतिशत कार्बोहाइट्रेट तथा ए. बी. सी. एवं इ. विटामिन की मात्रा बहुत अधिक होती है। दूसरे शैवाल जैसे लामीनारिआ, उनडारिआ, नास्टॉक, मोनोस्ट्रोमा, एन्टेरोमार्फा का भी प्रयोग खाद्य के रूप में किया जाता है। एक कोशीय क्लोरेल्ला से भी बहुत ही पौष्टिक खाद्य प्राप्त होता है जिसकी पौष्टिकता सोयाबीन जैसी ही है।

उत्तराखण्ड एवं पहाड़ी प्रदेश में लिंगडू (*Pteridium aquilivem.* Polypoliavase) का शाक बना कर खाते है। यह पोष्टिक शाक है

अब तो अर्न्तराष्ट्रीय उड़ानों में एक कोशीय शैवालों जैसे: क्लेरेल्ला अथवा स्केनेडरस्मुस का प्रयोग आक्सीजन की प्राप्ति के लिए किया जाने लगा है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सीड बॉल से संवरेगी प्रकृति, हरे-भरे होंगे पथरीले क्षेत्र

प्रकृति को संवारने के लिए 'सीड बॉल' की मुहिम राज्य में अब गति पकड़ने लगी है। पहाड़ों की रानी मसूरी से लगा क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं है, जहां थत्यूड़, मगरा व बुरांसखंडा के जंगलों में स्कूली बच्चों के माध्यम से फेंकी गई सीड बॉल में कई जगह अकुंर फूटे हैं। इस बार भी इन क्षेत्रों के अलावा धनोल्टी, अगिंडा के ढंगारी व पथरीले इलाकों में सीड बॉल फेंके गए हैं। विद्यार्थियों को प्रकृति के संरक्षण को प्रेरित करने की इस मुहिम के तहत उनसे स्थानीय प्रजातियों के बीज भी एकत्रित कराए गए हैं। बीज के एवज में उन्हें प्रोत्साहन राशि भी दी जा रही है।

दक्षिण भारत में छाप छोड़ने वाले केरल के सीड बॉल मॉडल की तर्ज पर ऐसी ही मुहिम विषम भूगोल वाले उत्तराखंड में आकार ले रही है। वन महकमे के अलावा हिमालयी जड़ी बूटी एग्रो संस्थान जाड़ी समेत अन्य संगठनों ने भी यह मुहिम शुरू की है। मसूरी वन प्रभाग की मसूरी से लगी जौनपुर रेंज में महकमे ने इसे सीड बॉल नाम दिया है, जबकि हिमालयी जड़ी बूटी एग्रो संस्थान जाड़ी ने सीड बम। तरीका सबका एक जैसा ही है। मिट्टी व गोबर के गोलों के बीच में बीज डाल कर इन्हें सुखाया जाता है और उन क्षेत्रों में फेंका जा रहा है, जहां पौधारोपण के लिए पहुंचना मुमकिन नहीं है।

मसूरी की जौनपुर रेंज के बुरांसखंडा और साटागाड में 2017 में रेंज अधिकारी मनमोहन बिष्ट की पहल पर सीड बॉल की शुरूआत की गई। बिष्ट बताते हैं कि जब इन क्षेत्रों में पौधरोपण का कार्यक्रम शुरू किया गया तो बात सामने आई कि कई इलाकों में पहुंचना मुश्किल है। इसे चुनौती के रूप में लिया गया। जानकारी मिली कि केरल के कई क्षेत्रों में बीज के गोले बनाकर जंगलों में फेंके जाते हैं, जिसके बेहतर परिणाम आए हैं। बिष्ट बताते हैं कि इसके बाद थोड़ा मंथन किया गया और यहां के विषम भूगोल, बारिश व तेज हवा को देखते हुए ढंगारी व पथरीली क्षेत्रों के लिए ऐसे बीज गोले बनाने की ठानी गई, जो वहां टिक सकें। इसके लिए गोबर की खाद, चिकनी मिट्टी व कीटनाशक मिला कर छोटे-छोटे गोले बनाए गए और इनके भीतर डाले गए विभिन्न वृक्ष प्रजातियों के बीज। सूखने के बाद इन पर बाहर से लीसा, गोंद जैसे पदार्थ भी लगाए गए, ताकि जहां फेंके जाएं, वहां जमीन में टिक सकें।

तमाम स्थानों पर फूटे हैं अंकुर

बुरांसखंडा, साटागाड, थत्यूड़, मगरा में फेंके गए सीड बॉल में कई जगह अंकुर फूटे हैं। इस बार भी इन क्षेत्रों के अलावा अगिंडा व धनोल्टी के ढंगारी क्षेत्रों में विद्यार्थियों की मदद से सीड बॉल फेंके गए हैं।

छात्रों को प्रकृति से जोड़ने की मुहिम

सीड बॉल की मुहिम बच्चों द्वारा सिर्फ इन्हें फेंकने भर तक सीमित नहीं है, बल्कि इसके जरिये उन्हें प्रकृति से जोड़ा जा रहा है। रेंज अधिकारी बिष्ट बताते हैं कि क्षेत्र के इंटर कॉलेज बुरांसखंडा के अलावा थत्यूड़ के एस.जी.आर.आर. पब्लिक स्कूल, सरस्वती शिशु मंदिर व विद्या मंदिर के बच्चे अवकाश के दिनों में सीड बॉल के लिए बीज भी एकत्रित करते हैं। अब तक इन विद्यालयों के 23 बच्चों द्वारा चुलू, खुमानी, आड़ू, अश्वगंधा, जामुन, चेरी, किनगोड़ के बीज एकत्रित करके दिए हैं। इसके एवज में उन्हें प्रोत्साहन राशि दी जा रही है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वनौषधि गवेषक वैद्य मायाराम उनियाल के सन्दर्भ में वैद्य पं. रामनारायण शर्मा अभिनन्दन ग्रंथ के सम्पादक आचार्य रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी जी के उद्‌गार

प्रस्तुत लेख में विद्वान लेखक वैद्य मायाराम उनियाल ने वैद्य रामनारायण शर्मा जी के साथ तथा उनके द्वारा प्रदत्त प्रोत्साहन से जो द्रव्यान्वेषण के अभियान में हिमालय की उपत्काओं में चलाये जा रहे संजीव वर्णन अनेक खोजी हुई बूटियों के चित्रों के साथ यहां दिया है। उन्होंने एक अलग लेख रामनारयणी बूटि के बारे दिया है, जिसे खोजने में वैद्य जी ने अथक परिश्रम किया है। उसका भी समावेश इस लेख में कर दिया गया है ताकि वैद्य जी के व्यक्तित्व और कृतित्व का सटीक बोध पाठकों को द्रव्यान्वेषणदृष्टया दिया जा सके। रामनारयणी बुटि की खोज चित्रकुट वनखण्ड में की गई थी। श्री उनियाल शास्त्री स्वयं पर्वतीय हैं तथा पहाड़ पर चढ़ने, उतरने, चित्र लेने आदि में तो उन्हें कष्ट होता ही क्या है? मूलतः संस्कृत और आयुर्वेद के विद्वान होते हुये भी आधुनिक बाटनी और उसके वर्गीकरण के विषय में इतनी ही विपुल जानकारी उन्हें है कि अनेक वन विज्ञान विशारद तथा वनस्पति विज्ञान वेत्ता उनसे लाभन्वित होते रहते हैं।

जड़ी-बूटी से होगा जीवन में उत्थान

बालछम ग्राम, जनपद बागेश्वर, उत्तराखण्ड में जड़ी-बूटी प्रशिक्षण शिविर के अवसर पर डॉ. मायाराम उनियाल एवं डॉ. एस. फारूख स्थानिक लोगों को पाषाण भेद, वनप्शा, अष्टवर्ग आदि जड़ी बूटियों की पहचान कराते हुए

NTRODUCTION

The Himalaya Experimental Farm was established in 1954 by Mr. Manal and Mr. Misal for the purpose of cultivation of medicinal plants and herbs. This farm is registered Organic Farm by Uttrakhand Organic Certification Agency (USOCA), Uttrakhand. The farm is also registered with Herbal Research & Development Institute, Gopeshwar, Uttrakhand for cultivation of some CITES herbs.

The farm management is dedicated to promote conservation & cultivation of medicinal plants by training farmers for contract farming of organically grown certified herbs. Fish farming, Siri-Culture, Bee-Keeping, Vermi-composting goatry, country poultry and cattle farming is also done in the farm.

फार्म का उद्‌देश्य किसानों को जैविक खेती तथा कोन्ट्रेक्ट फार्मिंग की ट्रेनिंग देकर प्रमाणिक जड़ी बूटियों की खेती को बढ़ावा देना है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रूपायन, अमर उजाला-23

वैद्य मायाराम उनियाल

आमतौर पर किसी व्यक्ति का स्वभाव व्यक्तित्व, स्वास्थ्य और गुण-दोष एक पहेली बना रहता है। लेकिन उसकी राशि जान कर इन सबका अंदाजा लगाया जा सकता है। दरअसल, राशि और उसके स्वामी के स्वभाव एवं विशेषता का हमारे व्यक्तित्व पर पूरा असर होता है। वैदिक ज्योतिष में इन राशियों की संख्या बारह हैं। इनमें हर राशि का अपना एक स्वभाव, विशेषता और प्रतीक चिह्न होता है। प्रत्येक राशि का अपना एक स्वामी होता है, जो उस राशि को नियंत्रित करता है। ज्योतिष पद्धति के अनुसार, सूर्य और चद्रमा को एक-एक राशि की स्वामित्व प्राप्त है। मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि ग्रह को दो-दो राशियों का स्वामित्व मिला है। ज्योतिष के अनुसार, अगर किसी व्यक्ति की कुंडली में कोई ग्रह कमजोर या बाधक है तो उसे शांत करने के लिए रत्न पहनने की सलाह दी जाती है, ताकि ग्रह सकारत्मक परिणाम देने लगे। लेकिन अगर कोई व्यक्ति आर्थिक रूप से कमजोर है और रत्न नहीं खरीद पा रहा है तो ज्योतिष में विभिन्न पेड़ों की जड़ पहनने का भी उपाया है। मसलन, मंगल ग्रह के लिए खैर, गुरु के लिए केला, शनि के लिए शमी आदि। इसी प्रकार ज्योतिष में ग्रह को मजबूत करने और उसकी सकारात्मक ऊर्जा पाने के लिए ग्रह एवं राशि के अनुसार पौधे लगाने का भी उपाय है।

हरे-भरे पेड़-पौधे न केवल ऑक्सीजन देते हैं, बल्कि आस-पास की खूबसूरती को भी बढ़ाते हैं। इन्हें देखते ही मन तरोताजा हो जाता है। हम कभी भी कोई भी पौधा लगा सकते है। वे हमें अपनी सकारात्मकता से ही भरते हैं।

लेकिन इनका चुनाव करते वक्त अगर राशि का ध्यान रखा जाए तो परिणाम चौंकाने वाले भी हो सकते हैं। राशि के अनुसार पेड़ लगाने से न केवल वह ग्रह शांत होता है, बल्कि जैसे-जैसे वृक्ष बढ़ता है, व्यक्ति को उतना ही अधिक उसका लाभ मिलता है। वह सफलता के सोपान चढ़ने लगता है। वस्तुतः पेड़ लगाना हमारे जीवन और वातावरण दोनों के लिए आवश्यक है। साथ ही उन्हें अगर राशि के हिसाब से लगाया जाए तो इसके और अच्छे परिणाम आ सकते हैं। ज्योतिष में बताया गया है कि अगर हम राशि के अनुसार पेड़-पौधे लगाएंगे तो हमारी ग्रह-दशा भी सुधरेगी और हमें सुख-समृद्धि भी प्राप्त होगी। इसलिए यह जानना जरूरी है कि किस राशि की महिला को कौन-सा पौधा लगाना चाहिए।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जड़ी बूटियों के सम्बन्ध में अखबारों द्वारा प्रकाशित जानकारी

दैनिक समाचार पत्रों की एक नजर में

सुंदरलाल बहुगुणा की विरासत

उनके पारिस्थितिक दर्शन शास्त्र में सभी संकटों का हल छिपा है। उस संकट का भी, जिसके हल के लिए 2021 में ग्लास्गो में विभिन्न राष्ट्रप्रमुख और वैज्ञानिक दो सप्ताह तक मंथन करते रहे।

10 जनवरी 2022 देनिक जागरण

संयुक्त राष्ट्र ने वर्ष 2022 को 'अक्षय विकास के लिए बुनियादी विज्ञान का अंतरराष्ट्रीय वर्ष' (इंटरनेशनल ईयर ऑफ बेसिक साइंसेज फॉर सस्टेनेबल डेवलपमेंट) घोषित किया है। अक्षय विकास का मूल मंत्र है पारिस्थितिक विकास। जब इसकी बात चलती है, तो पृथ्वी के भविष्य को संवारने की प्रेरणा देते हुए सुंदरलाल बहुगुणा का पारिस्थितिक योग कुर्की व्यक्तित्व हमारे मस्तिष्क पटल पर उभर आता है। यदि जीवन की ऑक्सीजन की नैसर्गिक आपूर्ति करने वाले वनों के इस प्रहरी ने कोरोना की विषैली लहर में ऑक्सीजन की कमी से अपने जीवन की आहुति न दी होती, तो उनका यह अपने जीवन के 95 वसंत पूर्ण कर लेते।

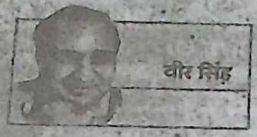

वीर सिंह

सुंदरलाल बहुगुणा एक ऐसे वानिकी हुए, जिन्होंने वनों को दी एक नया आधार दिया है। उनके दर्शन शास्त्र ने पारिस्थितिक विमर्श के शिखर पर बैठे मानव को इसके अस्तित्व के आधार के दर्शन कराए हैं।

पृथ्वी पर जीवन को उसके मूल से जोड़नेवाले बहुगुणा जी ने एक ऐसा दर्शन शास्त्र रचा है, जो सार्थ में वास्तविक सिद्ध होगा। उस दर्शन शास्त्र के पिता मानव को जीवन-रक्षणार्थ अवलंबनी है। इसे प्रकृति के विकास क्रम का रक्षक कहें या पालक अन्य जीव-जंतुओं से [illegible] प्रकृति का अवलोकन कि आज संपूर्ण प्रकृति पर मानव का ही आधिपत्य है। मानव अस्तित्व प्रकृति से है, यह एक सनातन सत्य है। लेकिन इस सत्य पर भारी है एक अर्धसत्य, कि संपूर्ण प्रकृति पर मानव का नियंत्रण है।

सुंदरलाल जी का नाम शर्तिया चिपको आंदोलन से जोड़ा जाता है। यह सत्य है कि अगर चिपको आंदोलन को उनका नेतृत्व न मिलता, तो मांग पूरी होने के साथ आंदोलन मर गया होता। लेकिन चिपको आंदोलन अमर है। बहुगुणा जी ने चिपको आंदोलन को एक दर्शन में रूपांतरित कर दिया। और यह दर्शन संसार में घर कर गया। इसे दर्शन के मूल में वह प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से सूर्यदेव पृथ्वी पर उतर आते हैं अपनी प्रचंड ऊर्जा को जीव ऊर्जा में रूपांतरित करने के लिए, पृथ्वी पर जीवन प्रवाह संचालित करने के लिए। यही प्रकाश संश्लेषण है।

चिपको आंदोलन से विश्व भर के संवेदनशील लोग जुड़ गए, वैज्ञानिकों से लेकर प्रकृति प्रेमियों, योजनाकारों, लेखकों और सामाजिक कार्यकर्ताओं तक ने चिपको आंदोलन को समर्थन दिया और सरकार ने वन कटान पर प्रतिबंध भी लगा दिया। इसके पीछे बहुगुणा जी की ओजस्विता और पर्यावरण प्रतिबद्धता ही थी, जो जनमानस के मन में अंकुरित होने लगी थी। बहुगुणा जी

जयंती पर स्मरण

की सादगी का प्रमाण यह कि उन्होंने कभी चिपको आंदोलन के नेतृत्व का श्रेय नहीं लिया। उन्होंने विनयपूर्वक खुद को चिपको आंदोलन का एक संदेशवाहक बताते हुए कहा कि इस आंदोलन का नेतृत्व तो पहाड़ की महिलाएं कर रही हैं।

बहुगुणा जी के दर्शन से जीवन के यश का झरना फूटता है उनके इस कथन से : 'जीवन की जय, मृत्यु का क्षय।' जीवन की जय में उनका केंद्रबिंदु मानव ही नहीं, बल्कि जैव मंडल के सभी जीव-जंतु हैं। मानव जाति का

[illegible] से लेकर समाज सुधार तक सुंदरलाल बहुगुणा की सक्रियता जीवन के हर क्षेत्र में थी, लेकिन उनका सर्वाधिक उल्लेखनीय योगदान यह है कि उन्होंने उस दौर में पर्यावरण का महत्व पहचाना, जब देश में इसके प्रति कोई बहुत सजगता नहीं थी।

हिमालय के गांधी

श्री सुन्दर लाल जी

[illegible] यह गौरतलब है कि कोरोना महामारी ने जब देश में पर्यावरण संरक्षण के प्रसंग मुख्य और [illegible] के प्रणेता सुंदरलाल बहुगुणा [illegible] किया है। उनकी [illegible] जीवन की तरह ही सादगी रही। [illegible] बहुगुणा ने कई मुद्दों से हुई मुलाकात [illegible] आकर्षित किया कि उनमें [illegible] ने भी चल दिया और देश की अनगिनत [illegible] आंदोलनों में जुड़ गए। जब देश को [illegible] में ले, लेकिन राष्ट्र के बाद उन्होंने [illegible] में रमकर अपना [illegible] बनाया। [illegible] उन्होंने [illegible] पेड़ों को अंकवार [illegible] चिपको आंदोलन [illegible] उन्होंने पहाड़ के गांवों में शराब की दुकानें खोलने के विरोध में महिलाओं को एकजुट कर उन्होंने जिस अभियान की शुरुआत की थी, वह तो जैसे बाद में उत्तराखंड में वन आंदोलन की पहचान ही बन गई। पेड़ों की कटाई का विरोध करने के लिए मार्च, 1974 में तत्कालीन उत्तर प्रदेश के चमोली जिले का रैणी गांव में सुंदरलाल बहुगुणा और गौरा देवी के नेतृत्व में महिलाओं ने ठेकेदारों के सामने पेड़ों से चिपककर ऐतिहासिक चिपको आंदोलन को अंजाम दिया था, जो सिर्फ देश में ही नहीं, बल्कि देश के बाहर भी पर्यावरण संरक्षण के ऐतिहासिक और उल्लेखनीय अहिंसक आंदोलन के रूप में बहुचर्चित हुआ। ऐसे ही आचार्य विनोबा भावे के आह्वान पर उन्होंने पहाड़ के गांवों के गांव-गांव देश के दूरस्थ इलाकों तक की पदयात्रा कर पर्यावरण संरक्षण का संदेश दिया। पहाड़ से होटल, बांध और बेतरतीब पर्यटन के बनकोर विरोधी सुंदरलाल बहुगुणा का आखिरी बड़ा आंदोलन टिहरी बांध के निर्माण के खिलाफ था। इस दौरान उन्होंने एकाधिक बार लंबा अनशन किया, जो सांकेतिक के प्रति उनकी अटूट आस्था के बारे में ही बताता था। जीवन के हर क्षेत्र में सुंदरलाल बहुगुणा का योगदान है, लेकिन उनकी सर्वाधिक उल्लेखनीय भूमिका यह है कि उन्होंने उस दौर में पर्यावरण का महत्व पहचाना, जब देश में इसके प्रति कोई बहुत सजगता नहीं थी।

पेड़ और पहाड़ को समर्पित एक जीवन

पूर्व सलाहाकार [illegible]
जड़ी-बूटी व सगन्ध पादप
उत्तराखण्ड, देहरादून
मो. 09760444425
mrunlyal2@gmail.com

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

The Himachal Times
Published from Dehradun & Shimla ● 72rd year of Publication ● Founded by S.P Pandit
UTTARAKHAND EDITION

University Journal of Phytochemistry, Ayurvedic Heights holds Webinar on Herbal Research

DEHRADUN, JUNE 30 (HTNS): A webinar on, Herbal Research: Opportunities, Challenges and Beyond was organized by Management University Journal of Phytochemistry and Ayurvedic Heights on Saturday.

Dr Ramesh Pokhriyal 'Nishank' Minister HRD Govt of India was the Chief Guest on the occasion. Dr Durgesh Pant Director USERC Dehradun and Dr Ashwani Kumar former Chancellor FRI Deemed University Dehradun were the Guests of Honour. The Webinar commenced by observing one-minute silence to pay tributes to the brave soldiers who sacrificed their lives in the Galwan valley of Ladakh region on 15-16 June.

Dr S Farooq Chief Editor UJPAH and President The Himalayan Drug Company Dehradun briefed about the role of Phytomedicines in general and Immunomodulators in particular in the COVID 19 Pandemic prevailing in the world.

Dr Himmat Singh Associate Editor UJPAH and advisor R&D BPCL Mumbai apprised the audience about the University Journal of Phytochemistry and Ayurvedic Heights (UJPAH) which was started in 2002. The vol 1, no 28 of UJPAH was released by Ramesh Pokhriyal "Nishank" Minister HRD Government of India along with other dignitaries.

Nishank in his address appreciated the efforts of the management of UJPAH towards popularizing herbal research not only in Uttarakhand but in the whole country and abroad also. He emphasized that Uttarakhand being the land of Medicinal Plants, systematic research on these plants needs to be carried out. He also informed about the Sanjeevani Abhiyan which was active in the region.

He also said that the joint efforts of the researchers of Uttarakhand would lead to discovery of herbal drugs for the treatment of patients suffering from COVID 19.

Dr IP Saxena Ex Vice Chancellor HNBGU Srinagar and Convener of the Webinar presented the vote of thanks. Dr Vertha Patcha Professor Department of Chemistry and Pharmaceutical Chemistry Dolphin PG Institute of Biomedical and Natural Sciences was the Dehradun coordinator of the event.

The Webinar was attended by participants from Uttarakhand as well as from other parts of country. To name a few Dolphin PG Institute of Biomedical and Natural sciences, Sai Paramedical, DBS Dehradun, Graphic Era, SBS University, Uttaranchal University Dehradun, GGM Science College Jammu, Sohan University Himachal Pradesh, College of Engineering Greater Noida etc.

Dr Durgesh Pant (Director USERC), Dr RK Singh, Dr BB Rairada, Dr Sanjay Naithani, Dr Mayaram Uniyal, Dr IP Pandey, Dr Shail Kulshreshta, Dr Mohsin Waheed, Dr Shivani Pathak and other advisory and editorial members Of UJPAH were present in the webinar.

Jahangir and team members provided technical support for smooth conduct of the event.

पंजाब केसरी
PUNJAB KESARI CHANDIGARH
Sunday 21 June 2020 | www.punjabkesari.in | youtube.com/punjabkesariv

हर्बल सेक्टर में होगी रोजगार की बारिश : निशंक

देहरादून, 20 जून (स.ह.) : यूनिवर्सिटीज जनल आफ फाइटोकैमिस्ट्री एंड आयुर्वेदिक हाइट्स की तरफ से हर्बल क्षेत्र की संभावना और चुनौतियों विषय पर आयोजित वेबिनार का उद्घाटन केंद्रीय मानव संसाधन मंत्री डा.रमेश पोखरियाल ने किया।

शनिवार को आयोजित इस वेबीनार में डा. रमेश पोखरियाल निशंक ने कहा कि हर्बल क्षेत्र में बहुत कुछ किया जा सकता है। इस सेक्टर में बहुत कुछ होने की संभावना है। शोध के माध्यम से ज्ञान संपदा और तमाम उत्पादों का निर्माण हो सकता है। इसके लिए सभी लोगों को मिलकर काम करना होगा। भारत सरकार हर्बल सेक्टर को ऊंचाई पर पहुंचाने का मन बना चुकी है। कार्यक्रम आयोजक डा. एस फारुख ने कहा कि जड़ी बूटियों को लेकर हममें जागरुकता की कमी है। भारत में अतुलनीय जड़ी बूटियां हैं। यहां पर ज्ञान संपदा भी बहुत है। लेकिन हमें सिस्टेमेटिक तरीके से काम करने की आवश्यकता है। इससे रोजगार के बहुत अधिक मौके भी सृजित होंगे। गरीबी और बेरोजगारी को कम किया जा सकता है।

कोविड 19 से लड़ने की भी जड़ी बूटियां है। इस पर हम लोग बहुत काम कर रहे हैं। एफआरआई के पूर्व कुलपति डा. अश्वनी कुमार ने कहा कि जड़ी बूटी रोजगार व स्वरोजगार का बड़ा जरिया है। इस मौके पर डा. हिम्मत सिंह, डा. दुर्गेश पंत, जहांगीर अहमद, डा. आईपी चौडे, डा. आरके सिंह, डा. बीबी रायराडा, डा. वर्थ, डा. शैल, डा. मोहसिन ने विचार व्यक्त किए। संचालन जहांगीर अहमद ने किया।

संडे राष्ट्रीय सहारा

चिकित्सा व मानवता के लिए आयुर्वेद सुरक्षात्मक संपत्ति

यूकोस्ट व उजपा द्वारा संयुक्त रूप से आयोजित किया कार्यक्रम

आयुर्वेद की महत्ता पर चर्चा, जड़ी-बूटियों के शोषण पर चिंता

देहरादून (एसएनबी)। यूनिवर्सिटीज जर्नल ऑफ फाइटोकेमिस्ट्री एंड आयुर्वेदिक हाइट्स (उजपा) व उत्तराखंड राज्य विज्ञान और प्रौद्योगिकी परिषद (यूकोस्ट) द्वारा शनिवार को संयुक्त रूप से कार्यक्रम आयोजित किया गया। इस दौरान उजपा पत्रिका का विमोचन भी किया गया। उजपा के मुख्य संपादक व शिक्षाविद् डा. एस फारुख ने कार्यक्रम की रूपरेखा पर प्रकाश डाला। सहयोगी संपादक डा. हिम्मत सिंह ने पत्रिका के बारे में विस्तार से जानकारी दी। बताया कि इसका उद्देश्य युवा और उभरते वैज्ञानिकों को उनकी वैज्ञानिक उपलब्धियों को प्रकाशित करने के अवसर देना व प्रोत्साहन प्रदान करना है।

इस अवसर पर उत्तराखंड आयुर्वेद विश्वविद्यालय के कुलपति डा. अरुण कुमार त्रिपाठी ने आयुर्वेद की महत्ता पर प्रकाश डाला। उन्होंने इसे चिकित्सा जगत और मानवता के लिए एक सुरक्षात्मक संपत्ति के रूप में वर्णित किया। केंद्रीय विवि के कुलपति प्रोफेसर राजीव मोहन पंत ने जड़ी-बूटियों के शोषण पर चिंता व्यक्त की। उत्तराखंड तकनीकी विश्वविद्यालय के कुलपति प्रोफेसर ओंकार सिंह ने कृत्रिम बुद्धिमत्ता की भूमिका पर प्रकाश डाला। यूकोस्ट के महानिदेशक प्रोफेसर दुर्गेश पंत ने हिमालय को जड़ी-बूटियों के स्रोत के रूप में वर्णित किया और इस क्षेत्र में कई विश्वविद्यालयों और संस्थानों की ओर इशारा किया। डा. आईपी सक्सेना ने धन्यवाद ज्ञापित किया। कार्यक्रम में विभिन्न कालेजों के छात्र-छात्राएं शोधार्थी मौजूद रहे।

सियासी तक़दीर

यूनिवर्सिटीज जर्नल ऑफ फाइटोकेमिस्ट्री एंड आयुर्वेदिक हाइट्स ने उत्तराखंड राज्य विज्ञान और प्रौद्योगिकी परिषद के साथ एक संयुक्त कार्यक्रम का आयोजन

देहरादून। यूनिवर्सिटीज जर्नल ऑफ फाइटोकेमिस्ट्री एंड आयुर्वेदिक हाइट्स ने उत्तराखंड राज्य विज्ञान और प्रौद्योगिकी परिषद के साथ एक संयुक्त कार्यक्रम का आयोजन किया। कार्यक्रम की शुरुआत UJPAH के मुख्य संपादक डॉ. एस फारुख ने कार्यक्रम की परिचय देकर की। UJPAH के सहयोगी संपादक डॉ. हिम्मत सिंह ने पत्रिका का परिचय दिया और इसके मौलिक, सारगर्भ और शुद्धता के प्रकाशन पर चर्चा की। कार्यक्रम का मुख्य आकर्षण यूनिवर्सिटीज जर्नल ऑफ फाइटोकेमिस्ट्री एंड आयुर्वेदिक हाइट्स के विमोचन का आयोजन था। विमोचन प्रोफेसर शुक्ल और उनके सहयोगियों को उनके वैज्ञानिक उपलब्धियों को प्रकाशित करने के अवसर और प्रोत्साहन प्रदान करना है। उत्तराखंड आयुर्वेद विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. अरुण कुमार त्रिपाठी ने आयुर्वेद का उपयोग कर मानव उपयोगकर्ता पर जोर दिया और प्रौद्योगिकी जगत और मानवता के लिए एक सुरक्षात्मक संपदा के रूप में वर्णित किया।

आगरा विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. राजीव मोहन पंत ने जड़ी-बूटियों के शोषण पर चिंता व्यक्त की और कहा कि परिषद इसके अनुसंधान की व्यवस्था को कार्यान्वित करने प्रौद्योगिकी करेगी। उत्तराखंड तकनीकी विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. ओंकार सिंह ने कृत्रिम बुद्धिमत्ता की भूमिका पर प्रकाश डाला, यह जोड़ कर कहा कि इसके बहुत दुष्परिणाम हो सकते हैं, लेकिन इसे समाप्त नहीं किया जा सकता। यूकोस्ट के महानिदेशक प्रो. दुर्गेश पंत ने हिमालय को जड़ी-बूटियों के स्रोत के रूप में वर्णित किया और इस क्षेत्र में कई विश्वविद्यालयों और संस्थानों की ओर इशारा किया। उन्होंने कहा कि उत्तराखंड विज्ञान और प्रौद्योगिकी का भारत मुख्य केंद्र है, क्योंकि आयुष्य का धर्म और सभी का परिचय के निर्माण का कार्य दी। सभागार द्वारा UJPAH के संपादक डॉ. आई.पी. सक्सेना ने दिया। इस कार्यक्रम में सेमरपुर के विभिन्न कॉलेजों के छात्र, शोधकर्ताओं, विभिन्न वैज्ञानिक संस्थानों के प्रतिनिधि, COST और BSC के अधिकारियों और कर्मचारियों ने भाग लिया।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हिमाचल प्रदेश के रोटांगपास 3500 मीटर की उंचाई पर वैद्य शिरोमिणी पद्मविभूषण बृहस्पति देव त्रिगुणा के साथ डा. मायाराम उनियाल जड़ी बूटियों की पहिचान करते हुये।

www.Jagran.com

चमोली में है एक और फूलों की घाटी

देवेंद्र रावत • चमोली

विश्व धरोहर फूलों की घाटी के अलावा चमोली जिले के सीमांत जोशीमठ विकासखंड में एक और फूलों की घाटी भी मौजूद है। मगर, इसके बारे में बहुत कम लोग जानते हैं। तकरीबन पंद्रह वर्ष किमी के घेरे में फैली इस घाटी में जैव विविधता का खजाना बिखरा हुआ है। इन दिनों यहां सैकड़ों प्रजाति के रंग-बिरंगे फूलों की रंगत देखते ही बन रही है। खासकर देवदुन ब्रह्मकमल की बहारें तो सैलानियों को मंत्रमुग्ध कर रही हैं। यह घाटी जून से लेकर अक्टूबर तक फूलों से लदी रहती है।

जोशीमठ की उर्गम, बैग और खीरों घाटी के बीच हिमालय की गगनचुंबी चोटियों की तलहटी में समुद्रतल से 13 हजार फीट की ऊंचाई पर स्थित चेनाप घाटी को इसके नैसर्गिक सौंदर्य के लिए जाना जाता है। यहां लगभग 250

चमोली, उत्तराखंड : चेनाप घाटी में खिले हिमालयी नीला के फूल • जागरण

प्रजाति के फूल, दुर्लभ जड़ी-बूटी और वन्य जीवों का समृद्ध भंडार बनाते हैं। बावजूद इसके यह घाटी देश-दुनिया की नजरों से ओझल है। वैसे, ट्रैकिंग के शौकीनों की यहां यदा-कदा आमद होती रहती है, लेकिन प्रशासन व वन विभाग की उदासीनता के चलते आज तक इस घाटी को पर्यटन मानचित्र पर जगह नहीं मिल पाई। चेनाप घाटी जाने के लिए विकासखंड मुख्यालय जोशीमठ से दो रास्ते जाते हैं। इनमें एक रास्ते से चेनाप घाटी जाकर दूसरे रास्ते से वापस लौटा जा सकता है। एक रास्ता बिमाणी और दूसरा मेलारी टॉप से होकर जाता है। मेलारी टॉप से हिमालय की दर्जनों पर्वत शृंखलाओं का नजारा देखते ही बनता है। घाटी के निकट फुलाना, चंचाना घट, लोन शिखर, मनकुमर्चा समेत कई अन्य पर्यटन स्थल भी देखने लायक हैं।

बदरीनाथ धाम से बेनाकुली से खिरों व माकपाटा होते हुए भी चेनाप घाटी पहुंचा जा सकता है। यह 40 किमी लंबा ट्रैक है, खासतौर पर बंगाली पर्यटकों की पसंद माना जाता है। 2013 की आपदा में जब फूलों की घाटी जाने वाला रास्ता ध्वस्त हो गया तो प्रकृति प्रेमी यहां पहुंचने लगे। घाटी में ब्रह्मकमल, फेनकमल, ब्रुनोमेन, मार्श, गेंदा, क्रिप्टोटैनिया, फेटिटीला, जिजन, बारका, लिलियम, हिमालयी नीला, गौलाबद्रनाथ, डेलीफिनियम, सतुनकुसल, लोबिलिया सहित 250 प्रजाति के फूल खिलते हैं। जो घाटी के सौंदर्य पर चार चांद लगा देते हैं।

मखमली घास की छटा

हिमशिखरों की तलहटी में ढ़ी लाइन खत्म होने के बाद शुरू होता है मखमली घास के मैदानों का सिलसिला, जिन्हें बुग्याल कहा जाता है। इनका नैसर्गिक सौंदर्य प्रकृतिप्रेमियों को खूब आकर्षित करता है। बिना कोई कष्ट, चोटी से साढ़े तीन किलोमीटर की पैदल चलने पर ही एक ही एक बुग्याल है, नाम है गोरसी। प्राकृतिक सौंदर्य से लबरेज गोरसी बुग्याल तक पहुंचने का रास्ता भी रोमांचक और सुकून देने वाला है। घना जंगल, आसपास बर्फ और सामने घास के मैदानों पर गाहे-बगाहे जाना बर्फ पर पड़ती सूर्य रश्मियां तन-मन को अभिभूत-आलोकित कर देती है।

समुद्र तल से लगभग 3400 मीटर की ऊंचाई पर स्थित गोरसी बुग्याल को फूलों का बुग्याल भी कहते हैं। गर्मी में बर्फ हटने के बाद यहां मखमली घास के साथ ही भांत-भांति के ऐसे फूल भी खिलते हैं, जो अन्य स्थानों पर नहीं मिलते। यदि आपको औली से गोरसी जाना है तो इसके लिए पैदल रास्ता घने जंगल से होकर गुजरता है। नंदा देवी राष्ट्रीय पार्क के अंतर्गत आने वाला यह वन क्षेत्र ट्रैकिंग के दीवानों के लिए बेहतर ट्रैक है। यदि आपने बर्फ की चादरों से भरपूर इस ट्रैक का एक बार दीदार कर लिया तो बार-बार यहां आने का मन करेगा। आखिर यह बुग्याल है ही ऐसा।

सर्दियों में इस बुग्याल में बर्फ में अठखेलियां तो गर्मियों में निखरी धूप के खिंचे घास के हरे मैदानों पर बैठकर हिमालय को निहारना आपके आप में अद्भुत होता है। बुग्याली का गुमते बादलों के साथ ही फूलों की छटा देखनी हो तो मानसून का मौसम सबसे मुफीद है। यूं तो औली में बर्फ कम पड़ती है तो स्कीइंग के शौकीन गोरसी बुग्याल का ही रुख करते हैं। नए स्कीयर्स यहां प्रशिक्षण भी लेते हैं। गोरसी से होते हुए कुंवारी पास तक भी ट्रैकिंग की जा सकती है, लेकिन इसके लिए नंदा देवी राष्ट्रीय पार्क से अनुमति लेनी होती है।

झंगोरे की खीर और मंडुवे की रोटी

मंडुवे की रोटी

झंगोरे की खीर

चारों तरफ बिछी बर्फ की सफेद चादर और बर्फीली हवाओं के बीच पहाड़ी जायके का लुत्फ भी यहां आने वाले सैलानियों को आकर्षित करता है। गर्मागर्म मंडुवे की रोटी और चाकली व फाणू (गहथ या कुल्थ की दाल का पीसकर बनाया जाने वाला व्यंजन) को एक बार चख लें तो यह बिए बिना नहीं रह पाएंगे। उस पर झंगोरे की खीर आपके स्वाद की और बढ़ा देगी। दरअसल, औली में स्वादा खानपान

आस्था के खास आकर्षण

ज्योतिर्मठ

औली से कुछ दूरी पर स्थित जोशीमठ को ज्योतिर्मठ के नाम से भी जाना जाता है। यहां जगद्गुरु आदि शंकराचार्य ने चार पीठों में से एक ज्योतिपीठ की स्थापना की थी। यहां भगवान नृसिंह का मंदिर है।

ध्यान केंद्र तपोवन

जोशीमठ से करीब 15 किमी. दूर स्थित तपोवन का प्राकृतिक सौंदर्य देखते ही बनता है। यहां गर्म पानी का कुंड है, जिसमें आलू, अंडा, दो मिनट में तो पककर तैयार हो जाते हैं। इसके जल को औषधीय महत्व का भी माना जाता है।

कुआंरी पास ट्रैकिंग रूट

औली से कुआंरी पास के लिए ट्रैकिंग रूट है। प्राकृतिक नजारों और रोमांच से भरपूर यह ट्रैक भी ट्रैकिंग के शौकीनों और सैलानियों के लिए आकर्षण का खास केंद्र है।

दैनिक जागरण – उत्तराखण्ड से साभार

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

देहरादून, 10 नवंबर 2009 | देहरादून | www.

नए वैश्विक हालात में वानिकी के सामने चुनौतियां

- एफआरआई में 20 वर्ष बाद आयोजित हो रही चौथी राष्ट्रीय वानिकी कान्फ्रेंस

- एफआरआई विवि में बहुउद्देश्यीय वानिकी पर अंतरराष्ट्रीय सिंपोजियम भी शुरू

देहरादून, जागरण संवाददाता: नए वैश्विक परिस्थितियों में वानिकी के सामने कई बड़ी चुनौतियां हैं। विकास देश की आवश्यकता है तो पर्यावरण संरक्षण के लिए वन जरूरी हैं। ऐसे में संतुलित दृष्टि के साथ वानिकी का समाज की बेहतरी के लिए इस्तेमाल करने की आवश्यकता है।

सोमवार को वन अनुसंधान संस्थान में आयोजित तीन दिवसीय राष्ट्रीय वानिकी कांफ्रेंस और एफआरआई विवि में आयोजित पांच दिवसीय अंतरराष्ट्रीय बहुउद्देश्यीय वानिकी सिंपोजियम का उद्घाटन करते हुए बिहार अध्यक्ष हरबंस कपूर ने कहा कि जलवायु परिवर्तन ने वनों को वैश्विक बहस के केंद्र में ला दिया है। देश के सात प्रतिशत लोग केवल वनों पर निर्भर हैं उनके आर्थिक सुधार और वन संरक्षण में जनता की भागीदारी बढ़ाने के लिए राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना जैसी योजनाओं की मदद ली जा सकती है। उत्तराखंड के प्रमुख मुख्य वन संरक्षक डा. आरबीएस रावत ने कहा कि जलवायु परिवर्तन के इस दौर में वनों की आवश्यकता बढ़ गई है। वनों का सीधा सम्बन्ध जल स्रोतों, संसाधनों से भी है। वन विभाग वन संरक्षण की पुरजोर कोशिश कर रहा है। हिमाचल प्रदेश के प्रमुख मुख्य वन संरक्षक विनय टंडन ने कहा कि समुद्र के बाद वन ही जलवायु पर व्यापक असर डालते हैं। एफआरआई के निदेशक डा.एसएस नेगी ने कहा कि एशिया और प्रशांत क्षेत्र के परिप्रेक्ष्य में वन सामाजिक, आर्थिक विकास और पारिस्थितिकीय तंत्र की सुरक्षा के महत्वपूर्ण संसाधन हैं। मानव जाति के अस्तित्व की रक्षा के लिए वनों का बेहतर संरक्षण और प्रबंधन आवश्यक है।

उन्होंने बताया कि वर्ष 1906 से एफआरआई सिलविकल्चर, वानिकी संगोष्ठियां कराता रहा है, लेकिन राष्ट्रीय वानिकी सम्मेलन की शुरुआत 1952 से हुई। इस मौके पर जर्मनी के प्रोफेसर डा. क्रिस्टोफ वर्नर समेत देश विदेश के जर्मनी वैज्ञानिक, वनाधिकारी और शोधज्ञ मौजूद रहे। उद्घाटन सत्र का संचालन वैज्ञानिक डा.मनीष थपलियाल ने किया। कार्यक्रम के अंत में एफआरआई के मुख्य वन संरक्षक वीआरआर सिंह ने सभी को धन्यवाद दिया।

10 देशों के वैज्ञानिक कर रहे चर्चा

एफआरआई विवि में सोमवार को बहुउद्देश्यीय वानिकी पर अंतर्राष्ट्रीय सिंपोजियम शुरू हो गया। एफआरआई, जर्मनी के गोटिंगन स्थित जोर्ज आगस्ट विवि और डुंस्डेन स्थित तकनीकी विश्वविद्यालय की ओर से आयोजित इस सिंपोजियम में पारिस्थितिकी तंत्र और वनों द्वारा दी जाने वाली सेवाओं पर विचार-विमर्श हो रहा है। जर्मन एल्युमनी फोरस्ट्री नेटवर्क के इस सिंपोजियम में दस देशों के 27 प्रतिनिधि हिस्सा ले रहे हैं।

महामहिम राष्ट्रपति शंकरदयाल शर्मा जी के करकमलों द्वारा डॉ. मायाराम उनियाल की रचना का लोकार्पण करते हुये।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संदर्भ तालिका

1. अभिज्ञान शकुंतलम – राघव भट्ट कृत टीका, कालीदास कृत
2. कुमार संभव – डॉ. सूर्यकांत द्वारा संपादित कालीदास कृत
3. मेघदूत – मोहन देव पंत कृत व्याख्या सहित कालीदास कृत
4. बाल्मीकि रामायण में आयुर्वेद – वैद्य अंबालाल, जोधपुर
5. चरक संहिता आयुर्वेद – दीपिका व्याख्या सहित
6. सुश्रुत संहिता – डल्हण टीका सहित
7. पर्यावरण विशेषांक सचित्र आयुर्वेद पटना – वर्ष 1992
8. संस्कृत साहित्य में पर्यावरण एवं कालिदास की वनस्पतियां – वैद्य मायाराम उनियाल, वर्ष 1994
9. कालिदास की वनस्पतियां – वैद्य मायाराम उनियाल सचित्र आयुर्वेद वर्ष 95-96
10. ऋग्वेद काण्ड 5-4, 11-12, वृददारणयक उपनिषद 3-9-28
11. मुण्डकोपनिषद 2-1-9, महाभारत मोक्ष पर्व 18, 15-17
12. सकन्धपुराण 15-21, रामायण अयोध्या काण्ड 53, 24, 26
13. गीता 15-2 गोमिल गृहय सूत्र 4-7-22, चाणक्य नीति 3-14
14. श्रीमद् भागवत चरक संहिता विमान अ. 8-1
15. उत्तराखंड एक समग्र अध्ययन – लेखक श्री केसरी नंदन त्रिपाठी
    – डॉ. आलोक कुमार, अगस्त 2015
16. हिमालय दर्शन – श्री दिगम्बर दत्त थपलियाल
    विनसर पब्लिशिंग कम्पनी, देहरादून
17. उत्तराखण्ड हिमालयी राज्य औद्योगीकरण पर्वतीय क्षेत्र में – डॉ. नारायण सिंह बिष्ट, गोपेश्वर चमोली
18. पर्यावरण और पारिस्थिकी – डॉ. के. सी. पुरोहित
    विनसर पब्लिशिंग कम्पनी, देहरादून

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आयुर्वेद गौरव वैद्य मायाराम उनियाल द्वारा रचित साहित्य

प्रकाशित कृतियाँ

- उत्तराखण्ड वनौषधि दर्शिका (सचित्र)
- अष्ठांग संग्रह की वनौषधियाँ
- मेडिसिनल फ्लोरा ऑफ गढ़वाल हिमालया
- प्रयोगात्मक अभिनव द्रव्यगुण विज्ञानम् (सचित्र)
- संस्कृत साहित्य में पर्यावरण एवं कालिदास की वनस्पतियाँ (सचित्र)
- लद्दाख की संस्कृति एवं परम्परागत तिब्बती चिकित्सा प्रणाली (सचित्र)
- बिहार के आदिवासी एवं जड़ी-बूटियाँ (सचित्र)
- आयुर्वेद अनुसंधान दर्शिका (सचित्र)
- भारत में जड़ी-बूटियों का कृषिकरण (सचित्र)
- औषधीय पौधों की व्यावसायिक खेती (सचित्र)
- हिमालयी लुप्तप्राय: वन्य जन्तु कस्तूरा मृग एवं महौषधिकस्तूरी (सचित्र)
- कुंमकुम (सैफरोन) का प्रयोगात्मक कृषि
- उत्तराखण्ड हिमालय की जड़ी-बूटियाँ एवं खनिज (सचित्र)
- रसोई घर के उपयोगी मशाले एवं शाक सब्जियों से स्वास्थ्य
- उत्तराखण्ड के हिमशिखरों पर दिव्य संजीवनी औषधियाँ (सचित्र)
- आरोगदायनी आयुर्वेदीय औषधीय पौधों से घरेलू उपचार की मार्गदर्शिका

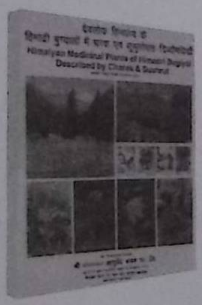

सम्मान

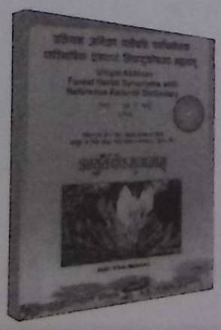

- पर्यावरण मंत्रालय भारत सरकार द्वारा मैग्नम पुरस्कार से सम्मानित।
- वर्ष 1993 में मुम्बई हर्बल एकेडमी अवॉर्ड से सम्मानित।
- जड़ी-बूटियों की खोज के लिए महामहिम राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा पाटिल द्वारा वर्ष 2006 के पं. रामनारायण शर्मा राष्ट्रीय आयुर्वेद पुरस्कार से सम्मानित।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

#Plant4mother | #एक_पेड़_मां_के_नाम

उत्तराखण्ड शासन

एक पेड़ माँ के नाम

पर्यावरण को समर्पित देवभूमि उत्तराखण्ड के लोक पर्व

"हरेला"

की आप सभी को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं

धरती पर हरियाली हो - जीवन में खुशहाली हो

आओ सब मिलकर पेड़ लगाएं

"आप सभी को सांस्कृतिक धरोहर एवं उत्तराखण्ड के लोकपर्व हरेला की हार्दिक शुभकामनाएं। हरेला पर्व सम्पन्नता, हरियाली एवं पर्यावरण को समर्पित है। आइये, इस शुभ अवसर पर माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी के अभियान को आगे बढ़ाते हुए माँ के लिए एक पेड़ अवश्य लगायें, ताकि हमारी भावी पीढ़ी को एक हरा-भरा उत्तराखण्ड मिले।"

पुष्कर सिंह धामी
मुख्यमंत्री, उत्तराखण्ड

मेरे प्यारे देशवासियों,

हम सबके जीवन में 'माँ' का दर्जा सबसे ऊँचा होता है। माँ, हर दुःख सहकर भी अपने बच्चे का पालन-पोषण करती है। माँ के लिए कुछ करने की सोच से इस वर्ष विश्व पर्यावरण दिवस पर एक विशेष अभियान शुरु किया गया है, इस अभियान का नाम है – 'एक पेड़ माँ के नाम'। मैंने भी एक पेड़ अपनी माँ के नाम से लगाया है। मैंने सभी देशवासियों से, दुनिया के सभी देशों के लोगों से ये अपील की है कि अपनी माँ के साथ मिलकर, या उनके नाम पर, एक पेड़ जरुर लगाएं। माँ के नाम पेड़ लगाने के अभियान से अपनी माँ का सम्मान तो होगा ही, साथ ही धरती माँ की भी रक्षा होगी। मुझे यह देखकर बहुत खुशी है कि माँ की स्मृति में या उनके सम्मान में पेड़ लगाने का अभियान तेजी से आगे बढ़ रहा है।"

नरेन्द्र मोदी
प्रधानमंत्री

@DIPR_UK #ExploreUttarakhand

वर्ष 2024-25 में वृक्षारोपण का लक्ष्य

- हरेला पर्व पर वृक्षारोपण का लक्ष्य: **50 लाख**
- पूरे वर्ष वृक्षारोपण का लक्ष्य: **2 करोड़ 50 लाख**
- पूरे वर्ष फलदार वृक्षारोपण का लक्ष्य : **18 लाख 12 हजार**

सूचना एवं लोक सम्पर्क विभाग, उत्तराखण्ड द्वारा जनहित में जारी।

www.uttarainformation.gov.in | uttarakhandDIPR | DIPR_UK | uttarakhand DIPR

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

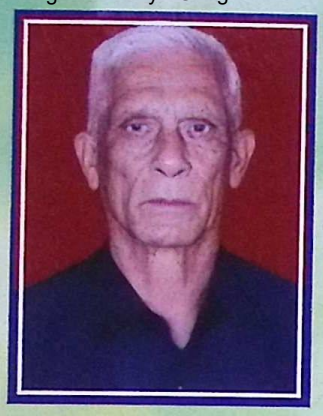

वैद्य (डॉ.) मायाराम उनियाल

जन्म तिथि : 3 मई, 1940

जन्म स्थान : दोणी पट्टी, कोटी फैगूल, टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड।

(से. नि.) निदेशक : भारतीय कार्य चिकित्सा संस्थान पटियाला, आयुष विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली।
पूर्व सलाहकार, जड़ी बूटी एवं सगन्ध पादप, देहरादून, उत्तराखण्ड।
फैलो, राष्ट्रीय आयुर्वेद विद्यापीठ, भारत सरकार, नई दिल्ली।

सदस्य : पूर्व सदस्य राष्ट्रीय पादप बोर्ड, भारत सरकार, नई दिल्ली।
पूर्व सदस्य भारतीय चिकित्सा परिषद, उत्तराखण्ड।
विशेषज्ञ आयुर्वेद फार्मेकोपिया कमेठी आयुष विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली।

मानद उपाधि : वनौषधि विद्यापति (श्रीलंका) आयुर्वेद पुनर्वसु, भारत।

आयुर्वेद गौरव : प्रादेशिक आयुर्वेद महा सम्मेलन, उत्तराखण्ड।

निवास : के-16 बी, शताब्दी एन्कलेव, सेक्टर-49, बरोला, नोएडा, जिला गौतमबुध नगर, उत्तर प्रदेश-201301
: आत्रेय आयुर्वेद सदन, सी-ब्लॉक, सरस्वती विहार (अजबपुर खुर्द), देहरादून, उत्तराखण्ड-248001
मो. : 9953369814

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection